राहुलजी ने इस पुस्तक का अनुवाद करके, नये आजाद देश के नौ-जवानों को अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित और दृढ़ बनाने का साधन दिया है।

इसमें उन्होंने ब्रिटिश राज्य के राजनैतिक संस्थापकों के अलावा धार्मिक संस्थापकों का भी वर्णन किया है।

हर पात्र के जीवन से, उसकी बहादुरी, बुद्धिमत्ता, कुकृत्यों तथा देश की अपनी कमजोरियों से — उन तमाम कारणों पर रोशनी पड़ती है जिनसे हमारा देश इतने लम्बे अर्से तक विदेशियों का गुलाम रहा।

आज की राजनैतिक उथल-पुथल में—पुस्तक—अपना एक खास स्थान रखती है।

भारत में

# ब्रिटिश राज्य के संस्थापक

मू० ले० :—अर्नेस्ट फौस्टर

अनु०—राहुल सांकृत्यायन

करेंट पब्लिशर्स

कानपुर

प्रकाशक :—
करेंट पब्लिशर्स
कानपुर

मूल्य तीन रुपया बारह आना मात्र

मुद्रक :—
साधना प्रेस,
बगिया मनीराम, कानपुर

प्रथम संस्करण
जुलाई १९५६

# क्रम-सूची



## भाग (ख) साम्राज्य स्थापक पादरी

# भूमिका

यह पुस्तक अर्नेस्ट फॉस्टरके अंग्रेजी ग्रंथ (The Heroes of British Empire)(भारतीय साम्राज्य के वीर)—का हिन्दी रूपान्तर है। भारतीय साम्राज्यसे लेखक का अभिप्राय है भारतमें अंग्रेजी साम्राज्यसे। यह उस ग्रंथका शब्दसः अनुवाद नहीं है। बहुत जगहपर मैंने हिन्दी रूप देनेमें कुछ स्वतन्त्रतासे काम लिया है, पर ग्रन्थकारके अभिप्रायसे विरुद्ध नहीं। ग्रंथ में १८५७ ई० के हमारे स्वतन्त्रता-युद्ध को खूनी हाथोंसे दबानेवाले अंग्रेज वीरों तक की कथायें आई हैं, जिनका आरम्भ अंग्रेजी राज्यके संस्थापक क्लाइवसे हुआ है, अर्थात् प्रायः १७५७ ई० से १८५७ ई० तकके एक सौ सालकी बातोंका इसमें उल्लेख है। यद्यपि इसे लेखकने विजय और पराक्रमकी कहानियाँ बतलाया है, पर ये कहानियां केवल व्यक्तिगत कहानियां नहीं है, बल्कि इनके पढ़ने से मालूम होगा, कि भारत किन कारणोंसे और कैसे अंग्रेजोंकी गुलामीमें पड़ा और अंग्रेजोंने किस तरह भारतकी कमजोरियोंसे लाभ उठाकर अपने नहीं, भारतीयोंके ही बल से उन पर अपना लौह-शासन जमाया। लेखक ने इस पुस्तकको १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-युद्ध के चौथाई सदी बाद लिखा था। इसका दूसरा संस्करण १८८८ में छपा। उस समय तक अभी अंग्रेजोंके मनमें इस बातका सन्देह भी नहीं उठा था, कि उनके वंशजोंको आजका भारत देखना पड़ेगा। नग्न साम्राज्यवादिताकी छाप इस पुस्तककी पंक्तियोंमें जगह-जगह मिलेगी। लेखकने हमारे वीरों को बहुत हीन साबित करनेकी कोशिशकी है, और अपनों को दूध का धुला सनातन महावीर। क्लाइव और हेस्टिंग्सका चरित्र कितना नीच था, इसे उनके समकालीन देशवासियोंने साफ बतलाया है। लेकिन भारत में अंग्रेजी राज्य की दृढ़ नींव उन्होंने रक्खी थीं, इसलिए समकालीन प्रतिद्वंद्वियों तथा इस लेखकने भी उनके

मानव्यूत माफ़ीके योग्य समझा। आज ऐसी पंक्तियोंको पढ़कर केवल हम मुस्करा देंगे। इस या दूसरे अंग्रेज लेखकोंके लिखनेसे नाना साहब, कुँवरसिंह, तात्या टोपे जैसे वीरों और लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाओंको श्रद्धाके फूल चढ़ाना नहीं छोड़ सकते। यदि युद्ध के उन घोर दिनोंमें हमारेमेंसे किन्हींने क्रूरताका परिचय दिया, स्त्री-बच्चों तकपर हाथ साफ करनेसे अपनेको नहीं रोका, और परम्परासे स्त्रीघाती और बालघाती को हमारे देशमें अक्षम्य पापी समझे जानेकी धारणा की अवहेलनाकी, तो हम उसका समर्थन नहीं कर सकते। पर, साथ ही गोरोंने उस समय हमारी स्त्रियों और बच्चों, बूढ़ों और निरीहोंके ऊपर कई गुना अधिक अत्याचार करके जो बदला लिया उसे भी हमें इस पुस्तक की उन पंक्तियोंके पढ़ते समय सामने रखना है।

इस पुस्तकके अनुवाद करनेका ख्याल लेखकको नहीं हुआ होता यदि वह आज भी इसकी उपयोगिता न समझता। दुनिया में कोई देश नहीं है, जो अपने इतिहास के किसी न किसी समयमें विदेशियोंका थोड़े या अधिक समयके लिये गुलाम नहीं रहा हो। भारत में हाँ, यह बात अनेक बार दोहराई गई है, उसका मतलब है, कि हमारे लोगोंने इतिहास से शिक्षा लेनेकी कोशिश नहीं की। वह बार-बार वही गलतियां करते रहे, उन्हीं कमजोरियों में फँसते रहे, जिनके कारण उन्हें फिर किसीकी गुलामी के दिन देखने पड़े। ऐतिहासिक कालकी पिछली पचास शताब्दियोंमें हमें कई बार विदेशियों द्वारा पादाक्रान्त होना पड़ा था। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दीमें ग्रीक—बाख्त्री यवन—घोड़ों की टापें पटना और अयोध्या तक सुनाई पड़ीं, और पंजाब तो प्रायः एक शताब्दीके लिये उनके हाथमें चला गया। ईसवी सनके आरम्भ होते शक विजेताओंने यवनोंका अनुसरण किया और उनके राजा कनिष्कने तो प्रायः सारे उत्तरी भारतपर शासन किया। पंजाबको तो बल्कि शकोंके हाथसे इन्हींके भाइयों हेफ्तालों (श्वेत हूणों) ने छीना। इस प्रकार शक हेफ्ताल पांच शताब्दियों से अधिक उत्तरी भारत के काफी बड़े भाग पर शासन करते रहे।

हमारी कमजोरियाँ, हमारी फूट—शासकोंके स्वार्थोंके कारणसे उत्पन्न हुई फूटें ही नहीं, बल्कि जात-पाँत के गोरखधन्धेसे भीषण सामाजिक फूट—देशके ऊपर परदेशी शासन जमानेका कारण हुई। अपनी इस कमजोरीको दूर करनेकी हमने कोशिश नहीं की। छठी शताब्दी तक जितने भी विदेशी विजेता शासक होकर हमारे देशमें रहे, उनकी एक विशेषता यह थी, कि थोड़े ही दिनों बाद वह भाषा, भेस और संस्कृति में भारतीय हो गये, जिसके कारण उनके लगाए हुए घाव ज्यादा दिन तक हरे नहीं रह सके! इसके बाद इस्लामका झण्डा लेकर कितने ही विदेशी भारत विजयके लिये आये। आठवीं सदी के आरम्भमें अरबोंने सिन्ध मुल्तानपर अधिकार कर लिया, और वह सदा के लिये शेष भारतसे पृथक शासित देश हो गया। महमूद गजनवी ने लूट-खसूट और मार-धाड़ यद्यपि बनारस और सोमनाथ तक की, किन्तु अपना शासन वह पंजाब ही भर जमा सका। लाहौर तब तक महमूद गजनवी और दूसरे तुर्कों का शासन-गढ़ रहा, जब तक कि १२वीं शताब्दीके अन्तमें कन्नौजकी शक्तिको ध्वंस करते गोरीने दिल्लीमें अपनी राजधानी कायम नहीं कर दी। गोरी-वंश चिड़िया रैन बसेराकी तरह भारत में ही नहीं, बल्कि अपने देशमें भी आया और जल्दी ही चला गया। तुर्कोंका स्थान गोरी जातिने लिया था, और फिर तुर्कोंके हाथमें वह चला गया। गुलाम, खल्जी, तुगलक तीनों ही तुर्क थे। ये विजेता पहलेके विदेशी विजेताओंसे भिन्नता रखते थे। पहलेके विजेताओंका अपना कोई विशेष सांस्कृतिक या धार्मिक ध्वज नहीं था, वह राजनीतिक शक्ति चाहते थे। इसलिये, उन्हें भारतीय संस्कृति और धर्मको अच्छा लगनेपर स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन, अरब और तुर्क विजेता इस्लामका झण्डा लेकर आये थे, और अपनेसे भिन्न धर्म माननेवालोंको काफिर और अत्यन्त घृणाका पात्र समझते थे। यदि वह हिन्दुओं के लिये इस तरहकी धारणा रखते थे, तो हिन्दू भी उन्हें म्लेच्छ कह कर ही संतोष नहीं करते थे, बल्कि उनके हाथका छुआ पानी भी पीनेके लिये तैयार नहीं थे। शायद पहले विजेताओंके समय इस तरहकी छुआछूत भारतीयोंमें नहीं थी। तभी

तो इतनी आसानीसे थोड़े ही समयके भीतर यवन-पल्लव-शक श्वेत हूण सभी भारतीयोंमें घुल-मिल ही नहीं गये, बल्कि आजके बहुत से राजपूत कुलीनवंश इन्हीं की सन्तानें हैं।

चाहे दोनों तरफ की धार्मिक कट्टरताके कारण भारतमें आकर बस गये थे, विदेशी उतने घुले-मिले नहीं, तो भी वह वही नहीं रह गये, जैसे कि वह भारतमें आते वक्त थे। सौभाग्य समझिये या दुर्भाग्य, १२वीं शताब्दीके अन्तमें जिस समय तुर्क भारतमें एक विशाल राज्य कायम करनेमें सफल हुये, उसी समय उनकी जन्मभूमि काफिर चंगेजखाँके मंगोलोंके हाथ में चली गई। चंगेज स्वयं ही काफिर नहीं था, बल्कि उनके वंशज अपने सारे वैभवके दिनोंमें इस्लामी प्रजापर शासन करते हुये भी मध्य-एसिया, ईरान और रूसमें बौद्ध-धर्मके अनुयायी थे, और इस्लामको बड़ी हीन दृष्टि से देखा करते थे। काफिरोंके हाथमें गई तुर्कोंकी जन्मभूमि अब इस्लामाबाद नहीं, काफिरिस्तान थी, जिसके कारण उधर उनका कोई आकर्षण नहीं हो सकता था, और अब वह एकान्त मनसे भारतके हो गये थे। वह समझते थे, कि भारतके सभी लोगोंकी भलाईमें हमारी भलाई है, और सभीकी बुराईमें हमारी बुराई। धर्मके बिलगाव को छोड़कर वह बहुत सी बातोंमें अब भारतीय से होते गये। दरबार और बादशाही हरमोंकी भाषा फारसी जरूर रही, लेकिन यहाँकी भाषाकी भी कदर उनके यहाँ भी होती थी, जैसे हिन्दू-दरबारोंमें। बल्कि हम एक कदम और आगे बढ़कर कह सकते हैं, कि हमारी भाषा-की इतनी कदर पहले भी नहीं हुई थी, कुतबन, मंझन, जायसी, गोस्वामी तुलसीदासकी काव्य-गुरु-परम्परामें है, लेकिन उनको देनेका सौभाग्य किसी हिन्दू-दरबार को प्राप्त नहीं था, बल्कि जौनपुरके शरकी बादशाहोंकी दरबार को था। जौनपुरके इन मुसल-मान शासकोंने कविताका ही संरक्षण नहीं किया, बल्कि उनके भारतीय संगीत का प्रेम हमारी एक रागिनी जौनपुरी आसावरी है। धर्म यद्यपि दोनोंको अलग रखनेमें सफल रहा, पर अकबर के समय उसकी दीवारोंको भी तोड़ने-की कोशिश की गई थी। समयसे पहले यह काम हो रहा था, इसलिये

उसमें सफलता नहीं हुई, यह कहकर हम संतोष कर सकते हैं। जो भी हो विदेशीपनकी काफी छाप रहते भी तुर्क पठान या मुगलके रूपमें जो विदेशी शासक हमारे यहां आये, वह फिर हमारे बन गये।

लेकिन अन्तिम विदेशी आक्रान्ता अंग्रेज हमारे देश के पुराने विजेताओं की तरह नहीं थे। अंग्रेज भारतीय बनने के लिए नहीं आये। उनका काम था भारत को अधिकसे अधिक दुहना और अपने देश को समृद्ध करना। पहले के विदेशी शासक सामन्तवादी काल के थे, जबकि अंग्रेज पूँजीवादके, भाण्डाबरदार होकर आये थे। इनका शासन बनियोंका शासन था, जिसमें "लाभ-शुभ" आदर्श वाक्य था। इस पुस्तककी पंक्तियोंमें यद्यपि इस बातको खोलकर कहीं नहीं कहा गया है, पर यह नग्न सत्य है, कि अंग्रेज शासन इसलिए कर रहे थे, कि उनके बनियापनका एकच्छत्र राज्य उसीके द्वारा भारतपर कायम हो सकता था। १८५७ ई० में भारतके एक बड़े भागने भारी कुर्बानियाँ करके स्वतन्त्र होने की कोशिश की। उसमें हम असफल रहे, पर हम उस स्वतन्त्रता युद्ध को भुला नहीं सके। सौ वर्ष बाद १९५७ ई० में उसकी शताब्दी मनानेके लिए हमारे देश में अभी से तैयारी होने लगी है। १८५७ ई० तक तो भारतमें अभीभी शासनको कम्पनीका राज्य कहा जाताथा। कम्पनी अर्थात् बनियों की चौकड़ी। कुछ थोड़े से बनियोंकी चौकड़ीको मजा लूटनेके लिये इंगलैंड के दूसरे बनिये छोड़ नहीं सकते थे, इसीलिए १८५७ ई० के बाद कम्पनीका नाम हटाकर उसकी जगह विक्टोरिया रानीका नाम रक्खा गया। हमारे लोगोंकी अज्ञानकी बातका क्या कहना है? वह समझने लगे कि कम्पनीका ही दूसरा नाम विक्टोरिया रानी है। उनके इस भ्रमको मजबूत करनेके लिए जगह-जगह और भी कितनी ही बातें हुईं। जहाँ पहले किसी नगर में कोई सार्वजनिक पार्क—उद्यान—कायम कियाजाता, तो उसे कम्पनी पार्क कहा जाता, अब विक्टोरिया पार्क कहा जाने लगा। फिर अंग्रेजीसे अपरिचित जनसाधारण क्यों न कम्पनी पार्क और विक्टोरिया पार्क के नाम से भ्रम में पड़ते।

यवन, शक, हेफ्ताल, तुर्क, मुगल वंशोंकी तरह अंग्रेज अपना एक राजवंश कायम करनेके लिए भारत में नहीं आये, यद्यपि पंचम जार्जकी दिल्लीमें भी अभिषेक कराके उन्होंने यह धारणा भारतीयोंके मनमें बैठानेकी कोशिश की, और उससे पहले १८७७ ई० में १ जनवरी १८७७ ई० में रानी विक्टोरिया ने कैसर हिन्द—भारत साम्राज्ञी—की पदवी उपाधि धारण करके उसकी पहल की गई थी।

हमारेमेंसे अधिकांशके लिए अभी वह कालरात्रि बीते देर नहीं हुई है। अंग्रेज-शासनकी ऐसी कालरात्रि, जिसे हमारे बहुत से अग्रज समझते थे, कि उसका कभी अन्त नहीं होगा। वह अपनी समझदारी दिखलाते हुए आजादीके दीवानोंको बतलाते थे, कि तुम क्यों पत्थरकी दीवारसे सर टकरा रहे हो। लेकिन आजादीके दीवाने ऐसे सत्-परामर्शको माननेके लिए तैयार नहीं थे। तरुण लेनिनको पकड़कर ले जाने वाले सैनिकने भी समझानेकी कोशिश की, कि तुम क्यों पत्थरकी दीवारसे सर टकरा रहे हो? लेनिनका उत्तर था, जिसे तुम पत्थरकी दीवार समझते हो, वह दरअसल उतनी मजबूत नहीं है, छूने भरकी देर है, और वह दीवार लड़खड़ाकर गिर पड़ेगी। लेनिनको मालूम था, कि यह दीवार ईंटोंकी बनी है। अगर वह ठोस ईंटें ही जड़ न बनकर चेतना दिखलाने लगें, तो सचमुच ही इस दीवारको ढहते देर नहीं लगेगी। भारत में अंग्रेज पशु-बलसे शासन करते थे, मखमली गिलाफ ऊपरसे सिर्फ देखने के लिए था, उसके भीतर फौलादी पंजा था। किसी भी विदेशी शासकने कभी भारतीयों को हथियारोंसे वंचित नहीं किया था। उस समय जो भी शिकार या प्रतिरक्षाके लिए आवश्यक हथियार थे, उन्हें अपनी सामर्थ्यके अनुसार लोग रख सकते थे। लेकिन, अंग्रेजोंने १८५७ ई०के बाद अधिक लम्बी छुरीको भी खतरनाक समझकर उसके खिलाफ हथियार-कानून बना दिया। जब नये हथियारोंके सामने तलवारकी कोई कीमत नहीं रह गई, तब प्रथम महायुद्धके बाद उन्होंने तलवार को कानून-मुक्त किया। लेकिन, किसी तरहके बारूदी हथियारको उन्होंने अपनी इच्छाके बिना हमारे हाथमें आनेसे रोक दिया।

आजके हमारे शासक भी शायद हमारी जनताको उसी तरहकी शंकाकी दृष्टिसे देखते हैं, तभी तो बालिग मात्रको वोट देने का अधिकार है, पर आत्म रक्षाके लिए वह टोपीवाली बन्दूक भी बिना पुलिसकी सहमती और हाकिमोंकी आज्ञाके नहीं रख सकते, चाहे हथियारबन्द डाकुओंके गिरोह उन्हें निहत्था पाकर धन-प्राण लेने के लिए तैयार हों ।

दो महायुद्धोंको देखनेसे पहले अंग्रेज कैसे समझ सकते थे, कि हमारे इतने छन्द-बन्द के साथ आधुनिकतम भीषण हथियारोंसे सज्जित सेनाके रहते भारत कभी आजादी का मुंह देख सकता है। यही बनियोंके स्वार्थ थे, जिन्होंने आपसी युद्ध को दो भीषण महायुद्धोंका रूप दिया। प्रथम महायुद्धमें उनको यह जानकर अफसोस हुआ, कि भारतका इतना जनबल हाथमें रहते भी हम जर्मनीके खिलाफ उसको इस्तेमाल करने में काफी समर्थ नहीं रहे। उस समय उन्होंने भारतीय सैनिकोंकी संख्या और अस्त्र शिक्षामें कुछ उदारता दिखलाई। संसारमें साम्राज्यवाद और पूँजीवादको चुनौती देनेवाली एक बड़ी शक्ति रूसी सोवियत राज्य कायम हो गया। साम्राज्यवादियोंके अपने देशमें अब उनके विरोधी पैदा हो गए। भीतरी बाहरी ऐसे खतरे पैदा हो गये,जिनके कारण भारतमें अंग्रेजोंको मुट्ठी ढीली करनी पड़ी। हमारे बूढ़े-सयाने हाथ जोड़कर उससे टपकती बूंदोंको चाट कर संतुष्ट थे, और देशको भी सन्तुष्ट रखना चाहते थे। पर, देश वहाँ नहीं था, जहाँ कि इन बूढ़ोंका दिमाग अब भी था। हैरत यह है, कि अंग्रेज शासकोंके बूट चाटने वाले इन बूढ़ोंके नामोंको अमर करने के लिए आजके शासक सबसे अधिक प्रयत्नशील हैं। बूढ़ोंकी चलती होती, तो भारत जहाँ का तहाँ रहता। देश में ज्ञान और असन्तोषके रूपमें जो नई शक्ति प्रथम महायुद्ध के अन्त तक पैदा हो गई थी, उसमें पंजाबने सैकड़ों हुतात्माओं को फांसी पर चढ़नेका साहस प्रदान किया। उसीके कारण जलियांवाला बागमें खूनकी होली खेलकर देशकी बढ़ती हुई शक्तिको अंग्रेजोंने दबाना चाहा। हमारे देशका सौभाग्य था, कि हमें इस समय गांधी जैसे महान् नेता मिले। उन्होंने जिन ईंटों से अंग्रेजी शासनकी दीवारें मजबूत

थीं, उनमें चेतना पैदा की। वह सचेतन हो गतिशील हुई। अंग्रेजोंके लिए अब दीवारको बनाये रखना मुश्किल हुआ। उन्होंने पुराने हथियारोंको नये ढंगसे कई बार चलानेकी कोशिश की, लेकिन प्रवाहको रोक नहीं सके। इसी बीच बनियों—साम्राज्यवादियों—के स्वार्थ ने दूसरे महायुद्धका मुँह दिखलाया, जिसमें अंग्रेजोंका सचमुच ही दिवाला निकल गया। अब उनके पास वह शक्ति नहीं थी जिससे कि वह देशको हथियारोंसे दबाकर काबू रखनेमें सफल होते। देशकी शक्ति भी बहुत बढ़ गई। अब हमारे लोग साधारण सिपाही ही नहीं बल्कि अफसर भी हो गये थे। विश्वकी सभी विद्याओंका दरवाजा उनके लिए खोल दिया गया। अंग्रेजोंने यह सब उपकारकी बुद्धिसे नहीं किया था, बल्कि गाढ़के समय उसकी उन्हें आवश्यकता थी। देशके जनसाधारण का क्या भाव है, यह असहयोग, नमक-सत्याग्रह और दूसरे आंदोलनोंसे मालूम हो गया था। भारतीय सैन्यबल क्या चाहता है, इसे उन्होंने नाविकोंके विद्रोहमें देख लिया। यद्यपि अपने एक प्रतिद्वन्दी जर्मनीको चारखाने चित्त होते अंग्रेजों ने देखा था, लेकिन अब वह दूसरे महान् प्रतिद्वन्दी अमेरिकाको देख रहे थे, जिसके हाथ में वह छोटीसी गुठलीसे बढ़कर नहीं दिखाई पड़ते थे। अमेरिका कब चाहने लगा, कि भारतका शोषण पहले ही की तरह इङ्गलैण्ड फिर करता रहे। दूसरी शक्तियाँ भी जो विजयमें सबसे अधिक सहायक रहीं, इसे पसन्द नहीं करती थीं। भारतकी अपनी स्थिति इंगलैण्डकी कमजोरी, अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियाँ इन सबने मिलकर अंग्रेजोंको भारत छोड़नेके लिए मजबूर किया। इसके लिए हमें अंग्रेजोंका कृतज्ञ बननेकी कोई आवश्यकता नहीं।

पर, सवाल यह है, कि क्या हम हालमें जिस गुलामीसे निकले हैं, उस गुलामीमें शिक्षा लेनेके लिए तैयार हैं। मुझे विश्वास है हम तैयार हैं। यदि हमारे बूढ़े उसमें कुछ असावधानी रखना चाहते हैं, तो तरुणोंके मजबूत कन्धे अपनी जिम्मेवारीको उठानेके लिये सन्नद्ध हैं। हमारे

देशको फिर कभी किसीका गुलाम नहीं बनना है। हमें उन सब कमजोरियों के अन्तिम अवशेषको भी अपने बीचमें नहीं रहने देना है। इन कमजोरियों का कारण है अशिक्षा, असंस्कृति, अनाजीविका और जात पांतका भेद भाव। इन चारों चीजोंको सदाके लिए अपने यहाँसे निकाल कर ही हम अपनी पांतीको ठोस बना सकेंगे, अपने दुर्ग को अजेय कर सकेंगे।

मसूरी, —राहुल सांकृत्यायन

## १—क्लाइव

"रोब क्लाइव गिर्जे की फुनगी पर।"

दो सौ वर्ष पहले एक दिन यह खबर ड्रेटोन मार्केट (हाट) के चारों तरफ फैली हुई थी।

श्रोपशायरके छोटे से कस्बेके भले मानुस यह सुनकर चकित हो गये, कि यह कहना मुश्किल से सच होगा। लेकिन उनमेंसे कितनेही घबरा गये। यह इसी से मालूम होगा, कि उनमें से कितने ही स्थानीय गिर्जेकी ओर उसकी सचाईको जानने के लिये दौड़ पड़े। और बात सच्ची थी। वहाँ गिर्जेके ऊँचे शिखरकी फुनगीके पास निकले हुये एक पत्थर पर एक छोटे से लड़के को उन्होंने देखा, जिसे कि सारे कस्बेके लोग हर तरहकी गड़बड़ी करनेवालोंका सरगना और सैकड़ों बार हाथसे निकल जानेवाले वीर की तरह जानते थे।

किसलिये वह शिखरके ऊपर चढ़ गया, यह मालूम नहीं है। यद्यपि कोई-कोई कहते हैं, कि वहाँ पर रक्खे किसी चिकने पत्थरको लेनेके लिये वह वहाँ गया था। चाहे उद्देश्य कोई भी हो, वह वहाँ था, और उसे इसका पता नहीं था, कि मेरी स्थिति खतरनाक है। अथवा वहाँ नीचे जमा हुये लोगोंके दिलमें मैं चिन्ता पैदा कर रहा हूँ। उसने अपने व्यवहारसे बतला दिया, कि उसे कोई परवाह नहीं है। अपने पैरोंको आगे पीछे हिलाते हुये उसने कुछ समय तक नीचे उतरने का कोई भी प्रयत्न करनेसे इन्कार ही नहीं किया, बल्कि उस स्थितिका पूरी तौरसे आनन्द ले रहा था।

इस साहसपूर्ण घटनामें हम देख रहे हैं। लड़कपनमें भी राबर्ट क्लाइव किस तरहके साहसिक कार्य करता था। और हम इसमें उस बेपरवाही और निर्भरताके मनोभावकी झांकी पाते हैं, जो कि उसके सारे

आरम्भिक जीवनमें एक विशेषता दिखलाती है। परिवारका सबसे बड़ा लड़का क्लाइव राबर्ट २९ सितम्बर १७२५ ई० को स्टाइच नामक एक छोटी सी जमींदारीकी हवेलीमें, ड्रेटोन बाजार—जहाँ उसका बाप वकालत करता था—से चन्द मील दूर, पैदा हुआ था। बचपन में राबर्ट ने अपने भावी प्रसिद्धिकी बहुत कम सम्भावना प्रकाशित की। नटखट, बेपरवा, किताबों और पढ़नेका उपेक्षक भारी क्रोधी वह था। केवल जंगली और झगड़ालू स्वभाव ही उसका स्पष्ट जान पड़ता था। घरके कुछ कारणोंसे जब वह तीन वर्षका था, उसे मानचेस्टरके पास होपहाल नामक स्थानमें मिस्टर बेलीके पास भेज दिया गया था। बेली राबर्ट का फूफा था। बेली अपनी छोटी उमरमें ही इतने छोटे बच्चेके लिये बड़ा स्नेह और प्रेम रखता था। बेली बच्चेके स्वभावको देखकर कुछ आशंकित हो गया था। यह आश्चर्य नहीं है, कि बहुत समय नहीं बीता, उसने निराश हो बच्चेको उसके मां-बापके पास भेज दिया।

इसके बाद राबर्ट दूसरे स्कूलोंमें भेजा गया—चीशायरके लोस्टाक, ड्रेटन बाजार, लन्दन में मरचेन्ट टेलरके पास और अन्तमें हर्टफोर्डशायद हेमेल हेम्स्टेडमें। किन्तु किसी में भी उसने पढ़ाई में प्रगति नहीं की। सभी में उसकी ख्याति आलसी, नटखट और मनमौजी बच्चेके तौर पर हुई। जब वह बाजार ड्रेटनके स्कूल में था, उसी समय गिर्जेके शिखर पर चढ़नेकी घटना हुई थी। इसी समय वह और भी कई हिम्मतवाली कार्रवाइयों में लगा था। उदाहरणार्थ कहा जाता है, कि उसका एक प्रिय मनोविनोद था शहरके जितने भी लाखैरे लड़के मिल जायें, उनको इकट्ठा करके एक ब्रिगेड बना लेना। उनका मुखिया स्वयं बनकर राबर्ट इस छोटी सेनाके साथ भिन्न-भिन्न दूकानोंकी ओर कूच करता और उनसे पैसे, सेब या कोई और अपेक्षित बेचनेकी चीज उगाहता, यह वचन देकर कि उनके जंगलों-को हम नहीं तोड़ेंगे।

एक बार अपनी धमकीके जवाबमें साफ इन्कार पाकर वह और उसके गुटके लड़के सड़कके पास बहते हुए एक गंदे नालेको उस दूकानदार-

की दूकानकी ओर फेरने में लग पड़े। वह करीब-करीब अपने प्रयत्न में सफल हो गये थे, जबकि पानीके रोकनेके लिये खड़ा किया हुआ मिट्टी-का टीला खसक पड़ा। लेकिन, 'बॉब' उसके लिए तैयार था। वह छाती-के बल पड़ गया, और अपने शरीरसे उस छेदको मूँद दिया, जिससे पानी निकलना शुरू हुआ था। वह तब तक उसी तरह पड़ा रहा, जब तक कि उसके साथियोंने उसको ठीक नहीं कर दिया।

राबर्ट क्लाइवके आरम्भिक दिन इस तरह बीते। जैसे साल बीतते गये, यह लड़का जिनको लेकर अपनी नटखटी दिखलाता था, केवल उन्हीं-के लिये सिरदर्दका कारण नहीं था, बल्कि अपने माता-पिता और स्कूल-के अध्यापकों को भी निराश और चिन्तित करता रहा। कहा जाता है, उसके सभी अध्यापकोंमें केवल लोस्टाकके डा० ईस्टन एकमात्र ऐसे थे, जिन्होंने कि उनके जंगली और अनियंत्रित स्वभावके भीतर उन गुणोंके चिन्ह पाये, जिन्हें आगेके जीवनमें उसने इतनी प्रधानताके साथ प्रदर्शित किया। डाक्टरने भविष्यद्-वाणी की थी, यदि इन गुणोंके व्यवहारके लिए उचित अवसर मिला, तो देखा जायेगा, कि लड़केमें वह प्रतिभा है, "जिससे कि" वह ऐसा नाम पायेगा, जैसा इतिहासमें बहुत कमको मिला है।"

किस कारण यह राय कायम की गई, इसे नहीं बतलाया जा सकता। लेकिन, निश्चय ही यह केवल अकेली ऐसी राय थी। जिस समय स्कूल छोड़ते वक्त लड़का सत्रह वर्षका हो गया, तो माँ-बाप यह आशा छोड़ने लगे, कि किसी भी वास्तविक योग्यताके काममें वह लगाने लायक हो सकेगा। उनकी सदा यही इच्छा रही, कि घरका सबसे बड़ा लड़का होनेसे वह भी कानूनका अध्ययन करेगा और पीछे बाजार ड्रेटनमें अपने बापके साथ वकालत करेगा। लड़का स्वयं इस व्यवसायमें जानेके सख्त खिलाफ था। माँ-बापने अपने विचारोंको यह सोचकर छोड़ दिया, कि ऐसे अन-होनहार लड़केको वकील बनाना बिल्कुल असम्भव है। लेकिन राबर्टको बेकार घरमें पड़े रहने देना भी सम्भव नहीं था, इसलिए यह अत्यन्त

आवश्यक हो पड़ा, कि उसके भावी जीवनके बारेमें कोई रास्ता निकालना ढूँढ़ना चाहिये।

परिणाम यह हुआ, कि रावर्टके स्वभावके विरुद्ध किसी स्थायी शांतिपूर्ण व्यवसायको अब अनुपयुक्त समझकर उन्होंने लड़केके लिए साहसपूर्ण जीवनके लिये अवसर देनेका निश्चय किया। जब रावर्ट १८ वर्षका हो गया, तो घरवालोंने ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी नौकरीमें लेखक या क्लर्क के तौरपर उसकी नियुक्ति करा दी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी किस तरह स्थापना हुई थी, इसको जान लेना दिलचस्पी से खाली नहीं है, और साथ ही इसके जाने बिना भारत में ब्रिटिश शासनके संस्थापकोंके कार्योंको ठीक तरह से समझा नहीं जा सकता।

साढ़े चार सौ वर्ष पहले—१४६८ ई० में—पोर्तुगीज गवेषक वास्को द गामा गुडहोप अन्तरीपके चारों ओरकी परिक्रमा करते सीधे यूरोपसे एसिया जानेके व्यापारिक समुद्र-पथको स्थापित करने में सफल हुआ। उस समय तक प्राच्य देशोंके साथ व्यापार मुख्यतः वेनिश और मिस्रके व्यापारियोंके हाथमें था, जो कि अपने मालको लालसागरके रास्ते द्वारा यूरोप पहुँचाते थे। भारत सीधे पहुँचनेके रास्तेका पता लगानेके बाद पोर्तुगीजोंने तुरन्त इसके महत्वको समझ लिया, और बहुत साल नहीं बीतने पाये, कि उनके व्यापारियोंने अपनी फेक्टरियाँ भारत में स्थापित कीं। ये फेक्टरियाँ माल बनानेके कारखाने नहीं थे, बल्कि गोदाम थे। उन्होंने भारतके व्यापारके बहुत लाभवाले अंशोंको अपने हाथमें कर लिया, और अपनी शक्तिशाली नौसेनाके बलपर करीब-करीब एक शताब्दी तक इस व्यापारकी इजारेदारी अपने हाथमें रक्खी।

१६वीं सदीके अन्तमें पोर्तुगीजोंके धन और प्रभावकी ईर्ष्या करते हुये दूसरे देशोंने भी उनसे प्रतियोगिता करनेका निश्चय किया। परिणाम-स्वरूप अंग्रेज, डच, ओलन्द और फ्रेंच जहाज भारतके समुद्रतटकी यात्रायें

करने लगे। और अन्तमें पोर्तुगीज अपनी इजारेदारी छोड़नेके लिए मजबूर हुये।

विशाल भारतीय बादशाहत, उसके भव्य नगरों और उसके शासक शक्तिशाली मुगल सम्राट तथा दिल्लीमें उसके दरबारके धन और वैभवकी कितनी ही कहानियाँ इंगलैंडमें पहुँच गईं। दिल्ली उस समय दुनियाँकी सबसे बड़ी और सबसे सुन्दर राजधानियोंमेंसे एक थी। अंग्रेज यात्रियोंने यह भी सूचना दी, कि उस देशके लोग उतनी ही प्रसन्नतासे अंग्रेजोंसे व्यापार करनेके लिये तैयार हैं, जितना पोर्तुगीजोंके साथ। यह स्वाभाविक ही है, कि अंग्रेजोंने निश्चय किया, कि भारतके व्यापारको निष्कंटकरूपसे पोर्तुगीजोंके हाथमें नहीं रहने देना चाहिए। अंग्रेज व्यापारियोंने दो असफल जहाजी अभियान भेजे थे। इसके बाद २२ सितम्बर १५९९ ई० को लन्दनके व्यापारियोंने एकत्रित हो पूर्वी देशोंसे व्यापार करनेके लिये एक सभा बनाई। अगले साल रानी एलिजाबेथने ईस्ट इण्डिया कम्पनीके नामसे उन्हें एक अधिकारपत्र दिया, जिसके अनुसार उन्हें गुडहोप अन्तरीप और मागेलन जलडमरूमध्यके बीचके देशोंके साथ व्यापार करनेका इजारा मिला।

१६०१ ई० के शुरु में पाँच हथियारबन्द जहाज सौदे और पैसेसे लादकर पूर्वकी ओर भेजे गये। इस अल्पारम्भसे व्यापारियोंकी सभाने अपना वह काम आरम्भ किया, जो आगे चलकर एक महान् सैनिक और व्यापारिक शक्ति बनकर भारतीय साम्राज्यका स्वामी बननेमें सफल हुआ।

लेकिन, जल्दी ही यह बात स्पष्ट हो गई, कि अंग्रेज जिस व्यवसायमें प्रविष्ट हुये हैं, उसमें उन्हें कम विरोधका सामना नहीं करना पड़ेगा, क्योंकि इस समय तक पोर्तुगीजोंके अतिरिक्त डच भी अपने लिये व्यापारका क्षेत्र बनाने की कोशिश करने लगे थे। इन दोनों राष्ट्रोंने भारतीय समुद्रतटके किनारे-किनारे अपने किले और फैक्टरियां स्थापित करनेमें कामयाब हुये थे। वह दूसरे किसी भी दखल देनेवालेको अपने हथियारबन्द जहाजों द्वारा आक्रमण करके भीतर नहीं आने देना चाहते

थे। परिणामस्वरूप डचों और पोर्तुगीजोंने कुछ अंग्रेजी जहाजोंको नष्ट कर दिया। ईस्ट इन्डिया कम्पनीने और बड़े तथा बेहतर ढंगसे हथियारबन्द जहाज हिन्द महासागर की ओर भेजे। जब १६१२ ई० में उनके बेड़ेको सूरत से कुछ दूर पर कहीं अधिक शक्तिशाली विरोधी बेड़ेका मुकाबला करना पड़ा, तो अंग्रेजी कमाण्डरने निश्चयात्मक रूपसे, इतनी जबर्दस्त हार पोर्तुगीजोंको दी, कि अंग्रेज अपने सौदेको केवल उतारनेमें ही सफल नहीं हुये, बल्कि उस समय भारतके अधिकांश भागके शासक मुगल-सम्राट् जहांगीरपर अंग्रेजोंकी इस विजयका इतना प्रभाव पड़ा, कि उन्हें सूरत तथा कुछ और शहरों में अपनी फेक्टरियां कायम करनेकी आज्ञा दी, जहां उन्होंने अपनी सबसे पहली बस्तियां बसाईं। उसके बाद इंगलैंडमें जेम्स प्रथम राजा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अनुरोधपर उसने दिल्ली दरबारमें विशेष राजदूत बनाकर सर टामसरोको भेजा। जिसके प्रयत्नसे अंग्रेजोंकी कम्पनीको और भी रियायतें मिलीं।

बहुत दिन नहीं बीते, इसके बाद एक और भी मामूली सी बात हुई, और जैसा कि अकसर देखा जाता है, छोटी छोटी बातसे भी बड़े काम उठ खड़े होते हैं। सूरतमें कम्पनीकी फेक्टरीमें बौटन नामक एक अंग्रेज डाक्टर लगा हुआ था। वह आगरा गया हुआ था, जहां शाहजहां उस समय ठहरा था। शाहजहांकी प्रिय पुत्री जहांआरा खतरनाक बीमारीमें पड़ी हुई थी। डाक्टर बौटन बुलाये गये। उसकी चिकित्सासे बेगम स्वस्थ हो गई। बाप इससे इतना प्रसन्न हुआ, कि उसने डाक्टरको अपने मुंहसे इनाम मांगनेके लिये कहा।

"हमारा देश आपके देशसे व्यापार करने पावे।" डाक्टरका यही उत्तर था। बादशाहने इसकी आज्ञा दी, जिसमें बंगालमें बौटन को फेक्टरियां, व्यापारिक केन्द्र स्थापित करना भी सम्मिलित था। अपने इस अधिकारको डा० बौटनने ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बेंच दिया, जिसने उस स्थानसे करीब २५ मीलपर हुगलीमें अपनी एक फैक्टरी खोली, जहांपर कि पचास वर्ष बाद १६८६ ई० में वह बस्ती बसाई गई, जो समय पाकर

एक समय ब्रिटिश भारतकी राजधानी तथा भव्य नगरी कलकत्ताके रूपमें परिणित हो गई।

दूसरा कदम अंग्रेजोंने १६३६ ई० में उठाया, जबकि उन्होंने मुगल सल्तनतके एक दूसरे भागमें फैक्टरी स्थापित करनेका अधिकार प्राप्त किया। यहां उन्होंने फैक्टरी और सेंट जार्ज का किला बनाया। सेंट जार्ज इंगलैंडके अधिस्ठाता सन्त हैं। इस बस्तीके आसपास मदरासका महत्वपूर्ण नगर तैयार हुआ। इसके बीस वर्षसे कुछ अधिक बाद अंग्रेज राजा चार्लस द्वितीयने पोर्तुगालके राजाकी लड़कीसे ब्याह किया, जिसने लड़कीके दहेजमें बम्बईका बढ़िया बन्दरगाह प्रदान किया। बहुत दिन नहीं हुये इस बन्दरगाहको राजाने ईस्ट इण्डिया कम्पनीको दे दिया। इस प्रकार भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें अंग्रेजोंने अपने मजबूत कदम जमा लिये, और फिर बड़ी तेजीसे वह शक्ति और सम्पत्ति दोनोंमें बढ़ चले। लेकिन वह इससे सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि वह देखते थे, कि देशी शासक एक दूसरेके खिलाफ जो खूनी लड़ाइयां लड़ते रहते थे, उससे उनके व्यापारमें बाधा होती थी। लेकिन, वह काफी तीखी नजर रखते थे, और उन्हें यह समझनेमें देर नहीं हुई, कि यद्यपि ये झगड़े हमारे व्यापारमें बाधा डालते हैं, किन्तु इसका परिणाम यह भी होगा, कि सल्तनतकी ताकत धीरे-धीरे कमजोर हो जायेगी। वह उनके लिये एक बड़ी आशाकी चीज थी। अपने भीतरी फूटों और झगड़ोंके कारण उत्पन्न होनेवाली भारतकी कमजोरी वस्तुतः कम्पनीके लिये आगे बढ़नेका एक अवसर था। और ऐसा ही हुआ भी। केवल सफल बनिया बननेकी आकांक्षाने एक नई महत्वाकांक्षाका रूप लिया। राजा चार्लसने अंग्रेज बनियोंको युद्ध और शांति स्वयं करनेकी विशेष रियायत दे दी थी। इससे बनियोंको दिखाई देने लगा, कि भारतके सारे व्यापारके इजारेदार ही नहीं, बल्कि शक्तिशाली साम्राज्यके कितने ही भागोंको जीतनेका भी अवसर उनके हाथमें आ रहा। मुगलोंका शक्तिशाली विशाल साम्राज्य बड़ी तेजीसे छिन्न-भिन्न होने लगा। (हैदराबाद, मुर्शिदाबाद, लखनऊ, और बंगश तथा रुहेले पठानोंने

देशको बाँट लिया था, और दक्षिणमें मराठोंकी एक जबर्दस्त ताकत कायम हो गई थी।)

अब ईस्ड इंडिया कम्पनीका नाम "पूर्व भारतव्यापारकी इंगलैण्ड व्यापारी संयुक्त कम्पनी" हो गया था। लन्दनमें और भी कई व्यापारियोंके संघ इस उद्देश्यसे कायम हो गये थे, जिनको मिलाकर मिलानेपर कम्पनी-को यह नया नाम मिला था। धीरे-धीरे दृढ़तापूर्वक इस कम्पनीने भारत-वर्षके भिन्न-भिन्न भागोंमें बहुत सी फैक्टरियाँ और किले कायम किये। अपनी सेना, नौसेना और पुलिस संगठित की। हिन्दुस्तानमें रहनेवाले अपने देशवासियोंके ऊपर सर्वोच्च नियन्त्रण रखनेका अधिकार अंग्रेज राजासे प्राप्त किया। यह ऐसा जबर्दस्त संगठन था, जिसके अधिकार क्षेत्र की सीमा असीम थी।

यह सफलता आसानीसे नहीं प्राप्त की जा सकती, क्योंकि हरेक अगले कदमके लिये विरोधका सामना करना पड़ता था, जिसमें कभी-कभी कम्पनीको अस्थायी तौरसे हार भी खानी पड़ती थी। लेकिन बनियोंने अपने लक्ष्यसे कदम हटानेके लिये कभी सोचा भी नहीं। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ते गये, साल-ब-साल उनका फंदा हिन्दुस्तानके ऊपर और मजबूत होता गया, और मुगल सल्तनतके छिन्न भिन्न होनेसे बादशाहको उन्होंने दिन-पर-दिन कमजोर होते देखा। भीतरी युद्धोंका यह परिणाम होना ही था। १७३९ ई० में जब ईरानी नादिरशाहने सल्तनतकी कमजोरियोंको देखा तो सेना ले ईरानसे दिल्ली आ बादशाहकी सेनाको नष्ट कर दिया और वैभवशाली राजधानी दिल्लीको जलाया और लूटा। अब ईस्ट इंडिया कम्पनीको मालूम हो गया, कि मुगल शासनके दिन खतम होनेको आये हैं। उन्होंने यह भी देखा कि देशके शासकोंमें अबसे और भी अधिक भयंकर संघर्ष होने जा रहे हैं। अंग्रेज व्यापारियोंने अनुभव किया, कि अब समय आ रहा है, जबकि वह अपनी महत्वाकांक्षाको पूरा कर सकते हैं।

यहां आकर अब जराहम राबर्ट क्लाइवकी कहानीके सूत्रको फिरसे हाथमें लें। इससे हमें यह भी मालूम होगा, कि अंग्रेज व्यापारियोंकी महत्वाकांक्षायें कैसे पूरी हुईं। कैसे इस पुरुषकी प्रतिभा द्वारा कम्पनीकी सेनाने विजयपर विजय प्राप्त की, और किस तरह सल्तनतके ध्वंसके बीचसे बादशाही शासनदण्ड अंग्रेजोंके हाथमें चला गया।

इङ्गलैण्ड छोड़नेके बाद राबर्ट क्लाइव मद्रास आया, जो कि कम्पनी की एक महत्वपूर्ण बस्ती थी। शुरूमें शायद दृश्य बदलनेके कारण जान पड़ा, कि वह अपने नये जीवनमें अब स्थिर हो जायेगा। लेकिन यह बात देर तक नहीं रही, और उसे कुछ ही दिनों बाद अपनी स्थिति संतोषजनक नहीं मालूम हुई। उसे आफिसका काम अत्यन्त अरुचिकर मालूम होने लगा। वेतन इतना कम था, कि उसके ऊपर कर्जका बोझा पड़ गया। जिस स्थानमें वह रहता था, वह असुखकर था। भारतमें पहुँचने पर जिस भद्रपुरुषके लिए वह परिचय-पत्र लाया था, वह उसके यहाँ पहुँचनेसे पहले ही देशसे चला गया था। यह आश्चर्यकी बात नहीं है, कि उसे इस नये देशमें उतरनेके बाद असंतोष और दुःख मालूमहोने लगा। जैसा स्कूलके समय उसने अपने-प्रति अपने भाव दिखलाये थे, वही अब यहाँ प्रकटहोने लगे। यद्यपि वह आवारा तबीयतका आदमी था, लेकिन जान पड़ता है घर छोड़े अपने सम्बन्धियों, विशेषकर माँके लिये उसके दिलमें बड़ी मोहब्बत थी। अपने पहलेके पत्रोंमेंसे एकमें उसने लिखा था—'जबसे मैंने अपनी जन्मभूमिको छोड़ा, तबसे एक भी सुखका दिन मैंने नहीं देखा। ...मैं इसे स्वीकार करनेके लिये मजबूर हूँ। बीच-बीचमें जब मैं अपनी प्रिय जन्मभूमि इंङ्गलैंडके बारेमें सोचता हूँ, तो इसका मेरे ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है।...यदि मैंनेफिर अपने देशको देखनेका सौभाग्य प्राप्त किया...तो जो आशा और अकांक्षा मेरीहोगी वह सब एक दर्शनमें मेरे सामने उप-स्थितहो जायेगी।

नये कामकी कठिनाइयों पर भुनभुनाते हुये उसके पहले जीवनकी अधीरता और और असंयम फिर प्रकट होने लगा। एक दिन किसी कर्तव्यके पालन

करनेमें वह इतना चिड़चिड़ा हो गया, कि उसने अपने ऊपरके अफसरोंको बुरी तौरसे अपमानित किया। इसपर बस्तीके राज्यपालने क्षमा मांगनेके लिये हुक्म दिया। मजबूर होकर उसने बड़ी हिचकिचाहटसे साथ दिया। लेकिन, इस अपमानको उसने अपने मनसे भुलाया नहीं। इसके भुलवानेके ख्यालसे अपमानित अफसरने कुछ दिनों बाद तरुण क्लाइवको भोजनपर बुलाया, तो उसे उसकी ओरसे साफ इन्कार मिला—"नहीं साहब, राज्य-पालने मुझे क्षमा माँगनेके लिये कहा था, सो मैंने किया। लेकिन उसने आपके साथ खाने का हुक्म नहीं दिया।

इसी समय दो बार राबर्ट क्लाइवने आत्म-हत्या करनेकी कोशिशकी, लेकिन दोनों बार जिस पिस्तौलको उसने अपने सिरपर रक्खा था, वह न चली। कहा जाता है, कि दूसरी बार जब हथियारको न चलते देखा, तो उसे विश्वास हुआ, कि दैवने इस पागलपनके कामको होनेसे रोका है और मुझे जीवनमें कोई महत्वपूर्ण काम करना है।

इस तरहकी निराशापूर्ण स्थितिमें उसका ध्यान अब अध्ययनकी ओर खिंचा। मद्रासके राज्यपालके पास पुस्तकोंका एक अच्छा पुस्तकालय था। क्लाइवको उसके इस्तेमालकी आज्ञा मिल गई और उसने अपने अवकाशके समयको गहरे अध्ययनमें लगा दिया। इस प्रकार उसे किताबोंका बहुतअच्छा ज्ञान—जो एकमात्र ज्ञान—था, और भारतकी भाषाओंका परिचय प्राप्त हुआ।

इस तरह दो वर्ष बीतनेके बाद एक ऐसी घटना घटी, जिसने राबर्ट क्लाइव केलिये प्रसिद्धि प्राप्त करनेका रास्ता खोल दिया। कई सालों पहलेसे फ्रांसीसी भारतमें अपना पैर जमानेकी जबर्दस्त कोशिश कर रहे थे, और अब तक उनको इतनी सफलता प्राप्त हो चुकी थी, कि उनकी ईस्ट इण्डिया कम्पनी—जिसने पांडिचरीमें अपनी एक महत्वपूर्ण बस्ती कायम की थी—को अंग्रेज अपना भारी प्रतिपक्षी मानने लगे थे। अब तक दोनों जातियाँ आपसमें शान्तिपूर्वक रहती थीं, और वह अपनी शक्तिको अपना व्यापार बढ़ानेमें लगाती रही थी।। १७४६ ई० में दोनों कम्पनि-योंकी नीतिमें भारी परिवर्तन था। दोनोंने एक दूसरेके बढ़ते हुये प्रभाव

और समृद्धिको फूटी आँखों न देखकर भारतमें स्वयं सर्वोच्च बननेका निश्चय कर लिया था। इसी समय इंगलैण्ड यूरोपमें फ्रांससे लड़ रहा था, जिससे उन्हें भारतमें भी संघर्ष करनेका बहाना मिल गया था। इस प्रकार युद्ध यूरोपसे भारत तक पहुँच गया, और जल्दी ही अंग्रेज और फ्रेंच जहाजी बेड़े हिन्द महासागरमें एक दूसरेसे भिड़ गये। कम्पनीकी बस्तियोंकी रक्षाके लिये इस समय नया अंग्रेजी बेड़ा भेजा गया था। अंग्रेजी जंगी बेड़ा फ्रेंच बेड़ेसे आधी भी शक्ति नहीं रखता था, लेकिन इसके सैनिक अच्छे थे, और कमाण्डर बहुत योग्य था। शायद इसने शत्रुको मार भगानेमें सफलता पाई हुई थी। लेकिन दोनों बेड़ोंमें भिड़न्त होनेसे पहले ही अंग्रेज नौसेना-ध्यक्ष अपने एक खराब हुये जहाज के बहानेसे एकाएक निकल चला। फ्रेंच कमाण्डर लाबूर्दोनेके लिये रास्ता खुला था। वह तेजीके साथ मद्रास पहुँचा, और उसने शहर और सेंट जार्जके किलेको आत्म समर्पण करनेकी माँग की।

इस वक्त पहली बार राबर्ट क्लाइवको वास्तविक लड़ाईमें शामिल होनेका मौका मिला। मद्रास यद्यपि एक महत्वपूर्ण अंग्रेजी वस्ती थी, लेकिन यह इतना बड़ा स्थान नहीं था, कि जिससे प्रतिरक्षा में बहुत सहायता मिल सकती थी? वहाँ की सैनिक टुकड़ीमें कुल मिलाकर दो सौ सैनिक थे। अभी तक कम्पनीने देशी सिपाहियोंकी भरती करना नहीं शुरू किया था, इसलिये फ्रेंच कमाण्डरके साथ बात करते जब अंग्रेज राज्यपालको मालुम हुआ, कि उसके पास ११ जंगी जहाज और ३७०० सैनिक हैं, तो शत्रुके प्रहार होते ही गोलाबारीके भयंकर काण्डसे बचनेके लिये आत्म-समर्पण कर लेना ही बुद्धिमानीका काम है। इस प्रकार बस्तीके लोग तथा छावनी के सैनिक युद्धके बन्दी बन गये। उन्होंने बचन दिया, कि हम निकल भागनेकी कोशिश नहीं करेंगे। इसपर फ्रेंच कमाण्डरने उन्हें मुक्त कर दिया, और उसने यह भी बचन दिया, कि हम मद्रासको कम्पनीके थाहमें दे देंगे, यदि वह एक निश्चित रकम दे दें।

लेकिन, बीचमें कठनाई उठ खड़ी हुई। फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनीका राज्यपाल डुप्ले, जो पांडिचेरीकी फ्रेंच-उपनिवेशका अध्यक्ष था, यह निश्चय कर चुका था, कि अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान से निकाल बाहर किया जाये। उसने यह बहाना बनाया, कि जब तक अंग्रेज मद्रासके स्वामी हैं, तब तक पांडिचरी आगे नहीं बढ़ सकती। उसने फ्रेंच कमाण्डरकी अंग्रेजोंको दी हुई शर्तों के माननेसे इन्कार कर दिया। उसने घोषित किया, कि कमाण्डरने अपने अधिकार से बाहर पैर रक्खा है। मैं पांडिचेरीके राज्य-पालके तौर पर भारतमें फ्रेंच सेनाका सर्वोच्च कमाण्डर हूं। उसने घोषित किया, कि अंग्रेजों के साथ की हुई सन्धि तोड़ दी गई, और हुकुम दिया, कि मद्रासको नष्ट कर दिया जाये।

अंग्रेजोंने डुप्लेके इस व्यवहारको भारी विश्वासघात समझा, लेकिन उसके बदलनेमें वह बिल्कुल असमर्थ थे। लबूर्दोने के साथ जो समझौता हुआ था, अब वह उसके माननेके लिए बाध्य नहीं थे, और वह भाग निकलनेके लिए स्वतन्त्र थे। राबर्ट क्लाइव भारतीयका भेस बनाकर रात-को मद्रासके अधीन एक छोटी सी अंग्रेजी बस्ती सेंट डेविडके किलेमें भाग गया। उसके कितने ही साथी इतने सौभाग्यशाली नहीं थे। अंग्रेज राज्य-पाल और बहुत से मुख्य अंग्रेज डुप्लेके हुकुमसे कैदी बनाकर बड़ी तड़क-भड़कके साथ पांडिचरी ले जाये गये, और हजारों देशियोंकी भीड़के सामने उन्हें प्रदर्शित किया गया।

सेंट डेविडके किलेमें पहुँचकर राबर्ट क्लाइवने कलमको तलवारसे बदला। उस समय वह २१ सालका था, और उसे बिना कमीशनके अफ-सरका पद मिला। अब उसने उस जीवनमें प्रवेश किया, जिसके लिए कि वह उपयुक्त था। मद्रासमें आनेके बाद जिस अनुशासनकी पाबन्दी उसे करनी पड़ी थी, उसका अब उसे अच्छा फल मिला। आज्ञाकारिता, सैनिक-कर्तव्यपालनमें सावधानी और बड़ोंका मानये बातें इन दिनोंमें उस-ने अपना ली थीं, जिसके कारण उसके ऊपरके अधिकारी उसकी तुरन्त अधिक कदर करने लगे। उसने व्यक्तिगत साहसका भी परिचय दिया,

जिसके लिये कि वह हमेशा तैयार रहता रहा। एक समय वह अफसरोंके छोटे दलमें ताश खेल रहा था, जिनमेंसे दोने धोखा देकर दूसरोंके पैसे जीते। जीतनेवाले द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिए मशहूर थे। हारनेवालोंमें क्लाइवको छोड़कर सबने बिना विरोध किये पैसा दे दिया। क्लाइवने पैसा देनेसे इन्कार करते हुए कहा, कि तुमने छल किया है। इसपर उनमेंसे एकने द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारा। स्थान और समयका निश्चय हो गया। क्लाइवको पहले पिस्तौल चलानी थी, वह चूक गया। उसके प्रतिद्वन्द्वीने उसके ऊपर चढ़कर अपने पिस्तौलको उसके सिरपर रखते हुए जीवनदान माँगनेके लिये कहा। क्लाइवने वैसा ही किया, लेकिन प्रतिद्वन्द्वीने हारे हुए पैसेको देने तथा छल करनेके इल्जामको वापस लेनेके लिए कहा।

"और यदि मैं इन्कार कर दूँ ?"—क्लाइवने पूछा।

"तो मैं गोली मारूँगा ?"

"गोली मार और मर जा ?"—यह उसका जवाब था।—"मैं कहता हूँ, तूने छल किया, मैं तुझे कभी पैसा नहीं दूँगा।"

दुष्टको क्लाइवकी निर्भीकतापर आश्चर्य हुआ। उसने उसे पागल कहा और अपने पिस्तौलको फेंक दिया।

मद्रासपर अधिकार करके अंग्रेजोंको देशसे बाहर निकालनेकी अपनी योजनाको पूरा करनेके लिये डुप्लेने सेंट डेविड किलेके खिलाफ एक मुहिम भेजी। अब यहाँ कम्पनीका मुख्य बस्ती बन गया था। फ्रेंच सैनिकोंने बड़ी कोशिश की, लेकिन उसका कुछ फल नहीं निकला। यहाँकी छोटी सी टुकड़ीने बड़ी बहादुरीके साथ आक्रमणको विफल कर दिया। क्लाइव उसमेंसे एक था। दूसरी बार एक स्थानीय राजाका सहयोग प्राप्त करनेके बाद भी फ्रेंच असफल रहे। तीसरी बार भी उन्होंने कोशिश की, लेकिन अंग्रेजोंके सौभाग्यसे इसी समय समुद्रतटके बाहर एक अंग्रेजी बेड़ा आ पहुँचा। कुमकके लिए एक बड़ी सेना तटपर उतरी। फ्रेंच हटनेके लिए मजबूर हुये। बदला लेनेके लिये अंग्रेज अब पांडिचरीको घेरनेकी तैयारी करने लगे। पांडिचरीपर अधिकार प्राप्त करनेका प्रयत्न निष्फल होने हीको

था, जिसका मुख्य कारण अंग्रेज नौसैनिक कमाण्डर एडमिरल बोस्केवेनकी हठधर्मी थी, जो सैनिक दाँव-पेच बहुत कम जानता था, तो भी जोर दे रहा था, कि आक्रमणका संचालन मैं स्वयं करूँगा। यह बड़ी वीरता-पूर्ण कार्यवाई थी। सबसे खास बात यह है, कि राबर्ट क्लाइवको यहीं पहलेपहल अपने कौशलके दिखलानेका अवसर मिला। अंग्रेजी सेनामें चार हजारके करीब सैनिक थे। हिन्दुस्तानमें किसी जगह इतने अधिक युरोपियन सैनिक अभी तक एकत्रित नहीं हुये थे। राबर्ट क्लाइव एक अधीन अफसरके रूपमें ही था, पर उसके ऊपरके अधिकारियों, विशेषकर उसके मुखिया मेजर स्ट्रिंगर लारेंस की प्रशंसाका वह पात्र बना।

तरुण क्लाइव अभी हाल हीमें नागरिक जीवनसे निकलकर सेनामें आया था। उसके सैनिक साथियोंमें कुछ उसको छोटी निगाहसे देख रहे थे, लेकिन ऐसा थोड़े ही समय तक हो सका। जब विराबेका युद्ध बड़ा गर्मागरम जारी था, उसी समय जिस तोपके साथ क्लाइवकी ड्यूटी थी, उसका गोला-बारूद चुकने लगा। और गोला-बारूद लानेके लिये अपने मातहत किसी सर्जन या कारपोरलको भेजनेकी जगह वह स्वयं दौड़ गया। इस स्थितिसे फायदा उठाकर उसके साथी अफसरने उसपर छींटा कसने की कोशिश की, कि साहस नहीं भयके कारण उसने इस वक्त अपनी जगह को छोड़ा। यह टिप्पणी क्लाइवके सामने दोहराई गई। क्लाइव सीधे उस आदमीके पास गया और कहा, कि या तो तुम इस इल्जाम को स्वीकार करो या इन्कार। इल्जामको हटानेके लिए कुछ कोशिश की गई, लेकिन क्लाइव उससे संतुष्ट नहीं हुआ। इसपर उसने द्वन्दयुद्धके लिए ललकारा। जब वह फैसला करने जा रहे थे, तो किसी बातसे चिढ़ कर विरोधीने क्लाइव पर हाथ छोड़ दिया। इसपर क्लाइवने अपनी तलवार म्यानसे निकाल ली और विरोधीको दण्ड दिये बिना न रहता, यदि वहाँ उपस्थित दूसरे लोगोंने दोनोंको अलग न कर दिया होता। सैनिक अदालतने जांच की, और उसने उस उक्त अफसरको क्लाइवसे अपनी बटालियनके सामने क्षमा माँगनेका हुक्म दिया। अदालतने क्लाइवके ऊपर हाथ छोड़-

नेके अपराधका ख्याल नहीं किया। क्लाइवने उस अपमानके लिये भी दण्ड देनेकी माँग की, लेकिन उसने इन्कार किया। इसपर क्लाइवने अपने बेंतको अपने विरोधीके सिरके ऊपर घुमाकर सबके सामने कहा, कि वह इतना घृणास्पद कायर है, जो पीटनेके भी लायक नहीं। अगले दिन विरोधीने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया।

पांडिचेरीका घिरावा पचास दिन तक चला। सफलताकी कोई आशा न देख उसे हटानेका निश्चय किया गया। एडमिरल बोस्केवेनने भूलोंपर भूलें कीं। और एक हजारके करीब आदमी काम आये। जितने ही दिन बीतते जा रहे थे, उतने ही कब्जा करनेकी सम्भावना दूर हटती जाती थी। जंगी बेड़ा वहां से दूर हट चला, और नाकामयाब स्थल सेना सेंट डेविड किलेकी ओर लौटी। मामूली स्थितिमें इस असफलताका परिणाम बहुत बुरा हुआ होता, क्योंकि फ्रेंच अब अपने उपनिवेश में अकंटक स्वामी थे। जल्दी ही अंग्रेजोंके पीछे हटनेकी खबर सारे देशमें फैल गई। उनकी इस सफलतासे देशी राजाओंमेंसे कुछ उनकी तरफ हो जाते, और इस प्रकार भारतमें उनका सितारा ऊँचा हो जाता। सौभाग्यसे इसी समय खबर मिली, कि युरोपमें इङ्गलैंड और फ्रांसके बीच युद्ध बन्द हो गया। दोनों देशोंकी सरकारोंने तय किया कि समुद्रपार जिन भी बस्तियों को एक दूसरेने जीता है, उन्हें लौटा दिया जायेगा। डुप्लेकी महत्वाकांक्षा पर पानी पड़ गया, जब कि मद्रासको अंग्रेज कम्पनीके हाथ में लौटा दिया गया। फ्रांसीसी प्रभावका आगे बढ़ना अब रुक गया।

इस प्रकार की सुलह हो जानेके बाद पहले मालूम हुआ, कि शायद क्लाइवके लिये अब सैनिक जीवन समाप्त हो गया। थोड़े समयके लिये वह फिर कलम घिसनेके लिये लौट गया, लेकि जल्दी ही युद्ध-क्षेत्रमें उसकी आवश्यकता पड़ी। फ्रेंच और ईस्ट इंडिया कम्पनीमें नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ। दोनों प्रतिद्वंद्वी भारतीय राजाओंसे एक दूसरेका पक्ष करके अपना काम बनाना चाहते थे, जिसके कारण उनके भीतर मनमुटाव होना आवश्यक था। कुछ महीनों तक फ्रेंच अपने प्रयत्नमें सफल हुये।

उनकी सेना जिसकी पीठपर रहती, उसे सफलता प्राप्त होती रही। डुप्लेने देशी शासकोंसे अपनी सहायता या विजयके बदले वह रियासतें और अधिकार प्राप्त किये, जिनके कारण वह दक्षिण भारतका वास्तविक स्वामी बन सकता था। इस बीच अंग्रेजोंकी हालत बदतर होती गई। उन्होंने व्यर्थ ही फ्रैंचोंके बढ़ावको रोकनेकी कोशिश की। इसके लिये उन्होंने जो भी कदम उठाये, उसमें उनकी निर्बलता ही सिद्ध हुई। इससे डुप्लेका काम बनता गया। अंग्रेजोंकी इन असफलताओंको देखकर अब देशी लोग भी उनको तुच्छ निगाहसे देखने लगे।

ऐसी भयंकर स्थिति अंग्रेजोंके लिये पैदा हो गई थी, जिसमें उनका प्रभाव अब बिल्कुल ध्वस्त सा होने लगा था। ऐसी भयंकर स्थितिमें अंग्रेज ईस्ट इंडिया कम्पनीके अफसरोंमें सिर्फ एक पचीस वर्षका "अजनबी अंग्रेज तरुण" इस योग्य साबित हुआ, जो कि बढ़ते हुये खतरेको रोक सकता था। यह था राबर्ट क्लाइव। फ्रैंचों ने चन्दासाहबको कर्नाटकका नवाब बननेमे सहायता दी थी। उसके साथ मिलकर फ्रैंच दक्षिणके महत्वपूर्ण नगरोंमे एकमात्र बचे हुये त्रिचिनापली नगरके घिरावेमें लगे हुये थे। त्रिचिनापली चन्दासाहबके प्रतिद्वंद्वी महमदअलीके हाथमें थी। अंग्रेज महमद अलीकी पीठपर थे। घिरावा बहुत जबर्दस्त था। अंग्रेजोंने महमद अलीकी मददके लिये एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी भेजी। साफ मालूम हो रहा था, कि नगर बहुत दिनों तक प्रतिरोध नहीं कर सकता। यदि त्रिचिनापली भी हाथसे निकल गई, तो फ्रैंच अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे निकाल बाहर करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं था।

राबर्ट क्लाइवने इस सर्वनासी स्थितिको अच्छी तरह अनुभव किया और अपनी स्वाभाविक सैनिक प्रतिभासे वह उसे रोकनेके लिये तैयार था अंग्रेजोंकी छोटी सैनिक टुकड़ीके साथ क्लाइव भी त्रिचिनापली गया था उसने वहां की सारी हालत देखकर मद्रासमें लौट अपने ऊपर के अधिकारि से तुरन्त कहा, कि कोई एकाएक तथा साहसपूर्ण प्रहार से ही भयंक स्थितिपर काबू पाया जा सकता है। उसने प्रस्ताव किया, कि एक सैनि

मुहिम चन्दा साहबकी राजधानी अरकाट—एक लाख आदमियोंका शहर—पर भेजा जाये। इसके कारण नवाबको अपनी कुछ सेना त्रिचिनापलीसे हटानी पड़ेगी। मद्रासके अंग्रेज अधिकारी इस तरुण अफसरकी योग्यतासे अब खूब परिचित हो चुके थे। उन्होंने क्लाइवकी योजना को मान लिया, और इस कामका भार उसके ऊपर दिया। क्लाइवको केवल पांच सौ आदमियों के साथ इस कामको पूरा करना था।

रावर्ट क्लाइव कप्तानके पदपर था, जब कि अपने पांच सौ सैनिकोंके साथ अगस्त १७५१ ई० में वह अरकाटसे दस मीलपर पहुँच गया। उस समय एक भयंकर तूफान उठा था—"कड़क बिजली और वर्षा, जैसे कि आम तौरसे भारतमें होती है, उससे कहीं अधिक भयंकर हो रही थी। आगे बढ़ना बिल्कुल असंभव सा मालूम होता था।" लेकिन उस सैनिक टुकड़ीने जरा भी हिम्मत नहीं हारी, और वह आगे बढ़ती गई। फिर शहरकी सड़कों के भीतर कूच करती हजारों आश्चर्यचकित देशियों केदेखते बिना किसी विरोधके वह किलेमें दाखिल हो गये।

यद्यपि किलेके भीतरके पन्द्रह सौकी सेनाने क्लाइवको भीतर घुसकर उसपर इतनी आसानीसे कब्जा करने का मौका दिया था, लेकिन यह साफ ही था, कि वह देर तक शान्तिके साथ नहीं रह सकता। क्लाइव ने प्रतिरक्षाकी तैयारी की। थोड़े ही समयमें किलेसे भागे हुये सैनिक अपने और बहुत से दूसरे साथियोंको लेकर लौटे, और अंग्रेजों की इस कार्रवाईकी खबरचन्दासाहबके पास त्रिचिनापली पहुँची। क्लाइवने इसे पहले ही सोच रक्खा था। चन्दासाहबने अपने लड़केके नेतृत्वमें एक भारी सेना अपनी राजधानीको मुक्त करनेके लिये भेजी। फ्रांसीसियोंने भी सहायता दी। बहुत दिन नहीं बीते, कि अरकाटके किलेको दस हजार सैनिकोंने घेर लिया। पचास दिनों तक यह घिराव बना रहा। शहरमें रसद का दिन-पर-दिन भारी अभाव होता गया। इस सारे समय क्लाइवने बड़ी मजबूती, तत्परता और योग्यताके साथ प्रतिरक्षाको कायम रक्खा। इतना अच्छा,

जितना कि योरोपके किसी भी वृद्धतम मार्शलके लिये सम्मानका काम हो सकता था। "मैकालेने जैसाकि इसके बारेमें कहा है।"

घेरा डालनेवाली सेनाके कमाण्डरने जब किलेको लेनेमें असफलता देखी, तो क्लाइवको भारी रिश्वत पेश की, जिसे उसने घृणाके साथ अस्वीकृत कर दिया। इसपर चन्दासाहबके कमाण्डरने आग बबूला होकर संदेश भेजा, कि यदि मेरा प्रस्ताव नहीं माना गया, तो मैं इसी क्षण किलेपर धावा बोल दूँगा, और एक-एक आदमीको तलवार के घाट उतारूँगा। क्लाइवने इसका मुंहतोड़ जवाब देते हुये कहा—"तुम्हारी सेना रेवड़ है। अंग्रेज सैनिकों द्वारा प्रतिरक्षित किसी भी जगहमें उन्हें भेजनेसे पहले खूब सोच लेना।"

अन्तमें विरोधी सेनापतिने धमकीको कार्यरूपमें परिणत किया, और उसकी सेनाने आक्रमण करना शुरू कर दिया। अठारह घंटे तक संघर्ष चलता रहा, जिसमें क्लाइव हर वक्त अपने आदमियोंका संचालन करते मौजूद रहा। आक्रमणकारी सेनाको इतनी भारी क्षति उठाकर पीछे हटना, पड़ा, कि उसने नगर को छोड़ दिया। उसके बहुत से सैनिक-हथियार पीछे रह गये।

इस भव्य विजयकी खबर जब मद्रास पहुँची, तो वहां बड़ा आनन्द मनाया गया। सब दिशाओंमें तितर-बितर हुये अपने विरोधियोंका पीछा करते हुये अब तक क्लाइव भी मद्रास पहुँच गया था। तरुण सेनापतिकी प्रसिद्धि जल्दी ही सारी सल्तनतमें फैल गई। उसकी वीरता और सैनिक प्रतिभाने उसे "साबत जंग" (युद्धदृढ़) की उपाधि प्राप्त कराई। सबसे बड़ा परिणाम इसका यह हुआ, कि अंग्रेजों का डूबता सितारा फिर मध्य आसमानपर चढ़ गया। अभी कुछ ही समय पहले उन्हें देशमें तुच्छ दृष्टि से देखा जाता था, पर अरकाट में क्लाइवने जो कुछ किया, उसके कारण अब अंग्रेजोंको सम्मान और आदर के साथ देखा जाने लगा। देशी शासक, जो अभी तक सिर्फ तमाशबीन बने हुये थे, और देखना चाहते थे, कि ऊँट किस करवट बैठता है। अब वह अपनी सेनाओंके साथ अंग्रेजोंसे मिलनेके

लिए आगे बढ़े। इस प्रकार अपने पासके तीस हजार सैनिकोंके साथ मद्रासके अंग्रेज अधिकारी क्लाइवकी सफलताओं से लाभ उठानेमें समर्थ हुये। अब एक अभियान त्रिचिनापलीके खिलाफ भेजा गया, जिसकी कमान मेजर स्ट्रिंगर लारेंसके हाथमें थी, और क्लाइव द्वितीय कमाण्डरके तौरपर उसके साथ था। त्रिचिनापलीमें चन्दासाहबकी बची-खुची सेना और उसके फ्रेंच सहायकोंको मार भगानेमें कठिनाई नहीं हुई। चन्दासाहबने वहीं अपने प्राण गंवाये। शहरपर कब्जा करनेके बाद अंग्रेजोंकी विजयनी सेना पासके इलाकोंमें अपने बलका प्रदर्शन करती हुई फ्रांसीसियों और देशियों दोनोंके ऊपर विजय-पर-विजय प्राप्त करती हुई वह मद्रास लौटी। अब वीरोंभियोंका प्रभाव करीब-करीब सारा नष्ट हो गया था, और अंग्रेजोंकी जड़ जम गई थी।

इसके थोड़े ही समय बाद १७५३ ई० में प्रतिकूल आबोहवाके कारण स्वास्थ्य खराब हो जानेसे क्लाइव छुट्टी लेकर देश लौटा। उसके अपने लोगों और सारी अंग्रेज जातिने हार्दिक स्वागत किया। उसने पूर्वी देशोंमें अंग्रेजोंके नामको उजागर किया था, इसका पारितोषिक मिलना ही चाहिये था।

इंगलैण्डके राजा जार्ज द्वितीयने भी विशेष तौरसे उसका स्वागत किया। देशके भिन्न-भिन्न जगहोंमें उसका सार्वजनिक सम्मान किया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरोंने उसपर उपाधियों और ईनामोंकी वर्षा की। कम्पनीने उसकी सेवाओंके लिये हीरा जड़ी मुट्ठीवाली एक तलवारको भेंट करना चाहा, लेकिन क्लाइवने उसे धन्यावादपूर्वक लेनेसे यह कहकर इनकार कर दिया, कि जब तक उसके पुराने मुखिया मेजर लारेंसको भी ऐसा ही ईनाम न दिया जाये, मैं इसे स्वीकार न करूँगा।

कहा जाता है, उसके माता-पिताकी यह बिल्कुल समझमें न आया, कि कैसे हमारा "नटखट आवारा बोबी" इतना प्रसिद्ध हो गया। खास करके उसका बाप इस बातपर विश्वास करनेके लिये तैयार नहीं था, जब तक उसके कामोंकी सूचना हिंदुस्तानसे आने लगी। धीरे-धीरे उसको

विश्वास हो चला—"जो भी हो, बोबीमें कुछ अक्कल तो थी।" अन्त में तो वह अपने लड़केके लिए अभिमान करने लगा।

क्लाइव १७५५ ई० तक इङ्गलैण्डमें रहा। इसके बाद कम्पनीने उसे सेंट डेविड किलेका राज्यपाल नियुक्त किया, और राजाने उसे लेफ्टनेंट कर्नलका पद दिया। वह हिंदुस्तान लौटा, लेकिन यहाँ पहुँचनेके दो महीने के भीतर ही उसकी पुकार फिर युद्धक्षेत्रमें हुई।

एक तरुण किन्तु क्रूर शाहजादा सिराजुद्दौला उस वक्त बंगालका नवाब था। वह अंग्रेजोंसे घृणा करता था, और उसके विद्रोही शरणार्थीको शरण देनेकी बात सुनकर वह उनपर आग बबूला हो गया, और उनकी कलकत्ता की बस्तीपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया। उसने कलकत्ता ही पर अधिकार नहीं कर लिया, बल्कि करीब डेढ़ सौ अंग्रेज उसके हाथमें पड़े। इन अभागों पर जो आततायितापूर्ण क्रूरता की गई, उसका बयान करना भी भयंकर है। (सिराजुद्दौलाकी ब्लेक होलकी कथा बिल्कुल जाली है, यह साबित हो चुका है।) कहा जाता है, कि अंग्रेज बन्दी नवाब के सामने लाये गए और फिर उन्हें उसके सिपाहियोंकी दयापर छोड़ दिया गया, जिन्होंने उन्हें कालकोठरी नामक एक गारद कोठरीमें रातको बन्द कर दिया। यह कोठरी केवल २४ वर्गफीट की थी, जिसमें एक आदमीको रखना भी क्रूरता ही होती, तो भी तलवारके बलपर नवाबके सिपाहियों ने १४६ आदमियों को ढकेल दिया और दरवाजेको तुरन्त बन्द कर दिया। जब दूसरे दिन इस भयंकर कोठरीको खोला गया, तो कैदियों मेंसे सिर्फ २३ जिंदा पाये गये, बाकी दम घुटकर मर गये। जीवितों को छोड़ दिया गया। इस प्रकार नवाबने बंगालसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर कर दिया।

इस रोमांचकारी घटनाकी खबर तुरन्त फैल गई, और अंग्रेज बदला लेनेके लिये अधीर हो उठे। थोड़े ही समय बाद २५०० सैनिक दिये गये, जिनको लेकर राबर्ट क्लाइव बंगालकी ओर चला। वहांके शासकोंको यह ख्याल नहीं था, कि इतनी जल्दी हमारे देशपर

अंग्रेज आक्रमण करेंगे। कहा जाता है, नवाब बाहरकी बातोंमें इतना अनजान था, कि वह समझता था, कि सारे यूरोपमें दस हजार से अधिक पुरुष नहीं रहते। बड़ा आश्चर्य हुआ, उसको जब सुना कि अंग्रेजोंने कलकत्ता ही नहीं ले लिया, बल्कि अपनी अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक सेनाके साथ मुझसे लड़ने के लिये पूरी तौरसे तैयार हैं।

क्लाइवका डेरा कलकत्ताके पास पड़ा हुआ था। यह खबर सुनकर नवाब ४० हजारकी सेना लेकर उनके ऊपर चढ़ दौड़ा। क्लाइवके सामने सफलतायें हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। इतनी भारी शत्रु सेनाको भी उसने हटा दिया, जिससे कम्पनी को कुछ सांस लेनेका मौका मिला। क्लाइवने देखा, कि नवाब फ्रांसीसियोंकी सहायताकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस समय तक इंगलैण्ड और फ्रांसमें फिर लड़ाई शुरू हो गई थी। वह नवाब-को ऐसा अवसर देनेके लिये क्यों तैयार होता। उसने फ्रांसकी महत्वपूर्ण बस्ती चन्द्रनगरपर आक्रमण करके उसे ले लिया। इस नगरके लेनेके बाद क्लाइवने कहा—"हम यहां थम नहीं सकते।" और उसकी भविष्यवाणी ठीक साबित हुई। वहां न थम अंग्रेज प्रायः दो शताब्दियों के लिये सारे भारतके भाग्यविधाता बन गये।

यद्यपि कलकत्ता और चन्द्रनगर की विजय असाधारण थी, लेकिन जिस विजयको अब उसे प्राप्त करना था, वह और भी अधिक चमत्कारी थी। कलकत्ता की विजय के बाद नवाबने सुलह कर ली थी, लेकिन सुलहनामेके तोड़े जानेके लक्षण दिखाई देने लगे। वह चाहता था, कि एकाएक क्लाइवके ऊपर अपनी सारी सेनाके साथ टूट पड़े। इसी बीच अपने स्वामीके अत्याचार और दुस्सासनसे असंतुष्ट नवाबके कुछ अपने अफसरोंने उसे गद्दीसे उतारनेका षड्यंत्र किया। क्लाइवको आश्चर्य हुआ, जब नवाबकी सेनाके मुख्य सेनाध्यक्ष मीर जाफरका इस विषयका गुप्त पत्र मिला, कि यदि मुझे बंगालका शासक बनानेका अवसर दिया जाये, तो मैं नवाबको छोड़कर अंग्रेजोंसे मिल जाऊंगा। इस पत्रमें मीर जाफरने लिखा था, कि नवाब अंग्रेजोंपर आक्रमण करनेका इरादा रखता

है। मेरी राय है, कि जब तक लड़ाई शुरू नहीं होती तब तक प्रीतक्षा करनी होगी। और नवाबकी सेनाके संचालनका बहाना करके कमसे कम आधी फौजको लेकर मैं एकाएक क्लाइवसे मिल जाऊंगा।

क्लाइवने ऐसे भारी खतरेके प्रस्तावकी शर्तोंको बिना रायके ही यह कहकर स्वीकार कर लिया—"जब तक यह शैतान नवाब जिन्दा है, तब तक न शान्ति मिल सकती है न सुलह।" षड्यंत्रियोंमें कलकत्ताका एक शक्तिशाली महाजन अमिचन्द भी था भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका पूर्वज। उसे इस बातकी ईर्ष्या हुई, कि मीर जाफरको इतना बड़ा पारितोषिकके मिलनेका वचन दिया गया है। उसने धमकी दी, कि मेरी सहायता और रहस्यको गुप्त रखनेके बदले तीन लाख पौंडकी रकम नहीं दी गई, तो मैं सारा षड्यंत्र नवाबके सामने प्रकट कर दूँगा। दूसरे षड्यंत्रकारी घबरा गए, जब उन्होंने अमिचन्दकी यह मांग देखी। लेकिन क्लाइव उससे जरा भी विचलित नहीं हुआ। वह जानता था, कि ऐसी स्थितिमें कैसे मुकाबिला किया जा सकता है। उसने यह घोषित करते हुए "ऐसे पतितकी योजनाओंको विफल करनेके लिए चतुराई और राजनीतिका बरतना आवश्यक है" और उसने जालका मुकाबिला जालसे करने का निश्चय किया। क्लाइवने एडमिरल वाट्सनकी जाली दस्तखत की, क्योंकि दस्तावेजके लिए उसकी आवश्यकता थी। एक लाल कागज पर एक कल्पित सुलहनामा लिखा गया, जिसमें अमिचन्दकी मांगोंको स्वीकार किया गया। असली सुलहनामा एक सफेद कागज पर लिखा गया था, जिसपर दोनों पक्षोंके आदमियों की मुहरें लगी थीं। जब शर्तों के पूरा करनेका समय आया, तो इसी सफेद कागजके दस्तावेजको पेश किया गया, जिसमें अमिचन्दके साथ हुई करारका कोई जिक्र नहीं था।

लड़ाईकी सारी तैयारी हो गई। जून १७५७ ई० में क्लाइव चन्द्रनगरसे रवाना हुआ, जहाँ कि वह उसपर कब्जा करनेके बाद ठहरा हुआ था। उसकी सेनामें सिर्फ तीस सौ सैनिक थे, जिनमें भी २१०० देशी सिपाही थे। वह पलासीकी ओर चला, जिसके पास सिराजुद्दौला ५०

हजार सेनाके साथ डेरा डाले पड़ा था। क्लाइव और उसके बहादुर अनुचर अपनेको बड़ी भयंकर स्थितिमें डाल रहे थे। नबाबकी सेनाके सामने उसकी सेना कुछ भी नहीं थी, और उसको यह भी सन्देह था, कि शायद मीर जाफर मुझे धोखा न दे। युद्ध क्षेत्रके पास पहुँचनेके समय अरकाटके वीरका वज्रहृदय भी सकपक करने लगा। लेकिन, यह हिचकिचाहट कुछ क्षणों तक ही रही। वह आपेसे बाहर हो गया, जब कि युद्ध-परिषद्‌में उसके अधिकांश सहायकोंने बढ़ावके रोकनेका निश्चय किया। क्लाइबने कुछ सोचनेके बाद तुरन्त ही उक्त निर्णयको उलट दिया, और उसकी छोटी सी सेनाने २२ जूनकी शामको नबाबके डेरेसे अतिदूर पलासीके पास एक आमोंके बागमें जगह पकड़ी। कहा जाता है, "नबाबके भारी केम्पसे नगाड़ों और नरसिंहोंकी आवाज इतनी जोरकी आ रही थी, कि सारी रात क्लाइव सोनेमें असमर्थ रहा। सिराजुद्दौलाकी भी मानसिक स्थिति उससे बेहतर नहीं थी। उसका मन निर्बल था, जिसमें तरह-तरह की भयंकर चिन्तायें उठकर तूफान मचाये हुयी थी। भयंकर स्थितिके बिल्कुल सिरपर आ जानेसे उसका मानसिक संतुलन इतना बिगड़ गया था कि वह अपने अफसरोंपर भी विश्वास नहीं करता था, और किसीके भी पास आनेमें भय खाता था, और अकेले रहना चाहता था। वह चिन्तापूर्ण हृदयके साथ अपने तम्बूमें बैठा हुआ था।

जैसे ही दोनों सेनाओंकी भिड़न्त पलासीके मैदानमें हुई, उसी समय सूर्योदय हुआ। अंग्रेज राजनीतिज्ञ पिटने जिसे "दिव्य सेनापति" कहा था, उसके नेतृत्वमें अंग्रेज अपनेसे बीस गुना अधिक शत्रुसे गुथ पड़े थे। अभी तक मीर जाफरका कहीं पता नहीं था। लेकिन, क्लाइवने इतना जबर्दस्त मुकाबिला किया, और उसके तोपखाने और संगीनोंसे शत्रुका इतना भारी नुकसान हुआ था, कि दोपहर तक नबाबके सारे केम्पों की हालत अस्त-व्यस्त हो गई। कुछ ही घंटोंके भीतर बदहवास हो सिराजुद्दौला ऊँटोंके गिरोहके साथ मैदान छोड़कर भागा। इसी समय मीरजाफर अपनी सेना को लेकर आ मिला, और विजेताओंने तुरन्त चारों तरफ तितर-बितर हुई शत्रु सेनाको पीछा करके मारना शुरू किया।

कुछ ही दिनोंमें सबने सिराजुद्दौलाका साथ छोड़ दिया, और असहाय हो घूमते उसकी हत्या कर दी गई। अपने वचनको पूरा करते हुये क्लाइवने उसके मालिकके सिंहासनपर मीर जाफरको बैठाया। अमिचन्दको अब मालूम हुआ, कि किस तरह उसे चकमा दिया गया है। इस प्रकार उस अत्याचारीके तख्तको उलटा गया, जो अंग्रेजोंसे घृणा करता था, और जो कदम-कदमपर उनका विरोध करता था। (अर्थात् जो अपने देशके लिये भावी खतरेका तन-मनसे मुकाबिला कर रहा था।) इस प्रकार राबर्ट क्लाइवने बंगालके नवावको अपने अधीन बनाकर अपने देशको फायदा पहुँचाया।

मीर जाफरने कृतज्ञता प्रकट करते हुये ईस्ट इण्डिया कम्पनी और क्लाइवको भारी धन प्रदान किया। कम्पनीके लिए आठ लाख पौण्डकी रकम कलकत्ता भेजी। क्लाइवको १ लाख ६० हजार पौंड ही नहीं मिला, बल्कि बंगालकी राजधानी मुर्शीदाबादका राजकोष उसकी लूटके लिये वहाँ खुला हुआ था। उसे दोसे तीन लाख पौंडके बीच धन मिला। कुछ सालों बाद जब क्लाइवके कुकृत्योंके लिए ब्रिटिश पार्लियामेंटमें उसके भ्रष्टाचारोंके लिये अभियोग लगाया गया, तो उसने जवाब दिया—"मैं जब याद करता हूँ खजानेमें प्रवेश करनेकी बातको, तो वहाँ मेरे दाहिने और बायें सोने और चाँदीका ढेर लगा हुआ था, जिनके ऊपर जवाहिर रक्खे हुए थे। मैं इसके लिए आश्चर्य करता हूँ, कि मैंने कैसे संकोचसे काम लिया।"

१७५८ ई० में क्लाइवको बंगालके अपने सारे भूभागका ईस्ट इंडिया कम्पनीने प्रथम राज्यपाल नियुक्त किया। कहा जाता है, उसका अधिकार असीम और उससे कहीं अधिक था, जो कि दक्षिणी भारतमें डुप्लेके हाथमें था। नया नवाब मीर जाफर क्लाइवसे थर-थर काँपता उसका गुलाम बननेके लिये तैयार था। युरोपियन और देशी सभी एक तरहसे उसके चरणोंमें नतमस्तक रहते थे।

लेकिन, उस समय अभी शांति और विश्रामके लिए अवसर कहाँ था। घटनायें बड़ी तेजीसे एकके बाद एक घट रहीं थीं। एक नई कठिनाई पैदा

हुई, जिसको हल करनेके लिये क्लाइवको आगे बढ़ना पड़ा। मुगल बादशाहत कबकी अपने वास्तविक अधिकारको खो चुकी थी। लेकिन, दिल्लीमें अब भी एक मुगल बादशाह तख्तपर था, जिसके लड़के शाह आलमने मीर जाफरके कारनामोंको सुनकर और उसे बंगालमें सर्वप्रभुत्व सम्पन्न बनता देखना पसन्द नहीं किया। उसने कितने ही प्रभावशाली राजा-नवाबों, विशेषकर अवधके नवाब, की सहायता ले ४० हजार सेनाके साथ बंगालकी ओर कूच किया। मीर जाफरके दिलमें धुकधुकी पैदा हो गई, और उसने शाह आलमको भारी रकम देकर पिण्ड छुड़ाना चाहा, लेकिन क्लाइवने इस प्रस्तावको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखते हुये कहा—"अगर तुम ऐसा करते हो, तो नवाब-अवध, मराठा और बहुत से दूसरे देशके भिन्न-भिन्न भागोंसे तुम्हारे राज्यमें आयेंगे, और वह धमकाकर इतना पैसा लेने लगेंगे, कि तुम्हारे खजानेमें कुछ भी नहीं रह जायेगा। मैं तुमसे निवेदन करना चाहता हूं, कि तुम अंग्रेजोंकी इमानदारी और उस सेनापर विश्वास करो, जो तुम्हारे साथ है।"

मीर जाफरने क्लाइवकी सलाह मानी। बंगाल वस्तुतः बिहार में आनेके बाद शाह आलमने देखा, कि अंग्रेज भयानक मुकाबिलों के लिये तैयार हैं। यद्यपि सारे प्रदेशमें उनकी सेना मुश्किलसे तीन हजारकी थी। वह और उसके सहायक अंग्रेजोंके नामको सुनकर ही हट गये। क्लाइवकी इस सेवाके लिये मीर जाफरने जागीर दी, जिसकी वार्षिक आमदनी ३० हजार पौंड (३ लाख रुपया) था।

मीर जाफर जब अपने स्वामीसे विश्वासघात कर चुका था, तो दूसरों के प्रति वैसा करनेसे वह कैसे बाज आ सकता था? उसने उस आदमीके खिलाफ भी षड्यन्त्र शुरू किया, जिसकी सहायतासे उसे राज्य मिला था, और जिसके ऊपर उसका अस्तित्व निर्भर करता था। उसने देखा, क्लाइव और ईस्ट इण्डिया कम्पनीका प्रभाव मुझसे भी अधिक है, तो उसने उसको कम करने के लिए फ्रांसीसियोंसे नहीं, बल्कि डचोंसे सहायता लेनी चाही। जावा उस समय डचोंके हाथमें था, जहाँका गवर्नर भारतमें अंग्रेजोंको इतनी

तेजीसे बढ़ते देख नहीं सकता था। वह सहायताके लिए तैयार था। उसने मीर जाफरकी सहायताके लिए एक मुहिम भेजी। इंग्लैण्ड और हालैण्ड के बीच उस समय यूरोपमें सुलह थी। क्लाइवने परिणामकी पेचीदगीकी कोई परवा नहीं की, और उसने निश्चय किया, कि डच सेनाको रोकना और उसका मुकाबिला करना होगा। इस कामके लिए उसने अपने योग्यतम अफसर कर्नल फोर्डको नियुक्त किया।

आक्रमणकारियोंसे लड़ाई लड़नेके एक दिन पहले एक मित्रराष्ट्रकी सेना पर आक्रमण करनेमें हिचकिचाहट दिखलाते क्लाइवके पास तुरन्त एक दूत भेजकर फोर्डने लिखित आज्ञा देनेकी प्रार्थना की। क्लाइव उस वक्त ताश खेलनेमें लगा हुआ था; मेजको बिना छोड़े ही उसने एक पेन्सिल उठा कर एक ताशकी पीठपर बिना जरा भी आनाकानीके लिख दिया—"प्रिय फोर्ड, तुरन्त इनसे लड़ो। मैं परिषद्की आज्ञा कल तुम्हारे पास भेजूंगा। इसके बाद फिर उसने ताजा ताशसे अपना खेल जारी रक्खा।

इस आज्ञा के परिणामस्वरूप रातके वक्त डचोंके ऊपर तुरन्त आक्रमण किया गया, और उनकी पूरी तरह हार हुई। अभी यह लड़ाई मुश्किल से खतम हुई थी, कि मीर जाफरकी सेना सामने दिखाई पड़ी। तब पता लगा, कि कृतघ्न नवाब अपने मित्रोंकी सहायता करनेके बदले सिर्फ संघर्ष के परिणामकी प्रतीक्षा इस ख्यालसे कर रहा था, कि मेरे शामिल होनेसे पहले वह विजयी हो जायँ।

इसके थोड़े ही समय बाद क्लाइवका स्वास्थ्य फिर खराब हो गया, और १७६० ई० के आरम्भमें वह इङ्गलैण्ड चला गया। पहली बारसे भी अधिक सम्मान उसके देशवासियोंने किया। कई उपाधियाँ उसे मिलीं, जिनमें एक आइरिश लार्डकी उपाधि भी थी, जिसके कारण वह प्लासीका लार्ड क्लाइव कहा जाने लगा।

पाँच सालकी अनुपस्थितिके बाद फिर हिन्दुस्तानमें उसकी जरूरत पड़ी। इस बीचमें कम्पनी के कारबारमें बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई थी। नीचेसे ऊपर तक सारे नौकर बेईमानी और भ्रष्टाचारपर उतर आये थे।

इस गड़बड़ीको दूर करनेकी क्षमता क्लाइवमें ही समझी गई। गड़बड़ी क्यों पैदा हुई थी? १७६० ई० में क्लाइव हिन्दुस्तान छोड़ कर इंगलैंड गया, वैसे ही कम्पनीके नौकरोंने जैसे भी हो अपना पेट भरनेका निश्चय कर लिया। उन्होंने इसका आरम्भ नवाब-बंगालको गद्दीसे उतारकर उसकी जगह उसके दामादको बिठाकर आरम्भ किया, जिसके लिये नए नवाबने उन्हें बीस लाख रुपये (दो लाख पौंड)के साथसाथ तीन बढ़िया जिले दिये। नए नवाब मीर कासिम ने गद्दीपर बैठते ही अंग्रेजोंके हाथसे निकलनेके प्रयत्नमें एक बड़ी सेना संगठित की, और नवाब-अवध तथा नामके दिल्लीके बादशाहकी सहायता ले युद्ध शुरू कर दिया। शत्रु की सम्मिलित सेनाको अंग्रेजोंने बुरी तरहसे हराया, और इसके परिणामस्वरूप नवाब-अवधने अपने राज्यका एक भारी भूभाग अंग्रेजोंको दे दिया। बंगालके अतिरिक्त भारतका एक और भी भाग कम्पनी के हाथमें आया। बादशाह ने अंग्रेजी कैम्पमें आकर शरणकी प्रार्थना की। इसी बीच मीर जाफरको फिर गद्दीपर बिठाया गया, जिसके बदले कम्पनीके अफसरोंको भारी रकम मिली। १७६५ ई० में मीर जाफरके बाद उन्होंने उसके लड़केको इस शर्तपर नवाब बनाया, कि वह २० लाख रुपया दे।

यह स्थिति थी, जबकि लार्ड क्लाइव कलकत्ता पहुँचा। कहा जाता है, उसने घोषित किया—"कम्पनीके नौकरोंमें पांच भी ईमानदार आदमी नहीं पाये जा सकते।" इस अत्याचार और लूट-खसूटके कारण इंगलैण्डका नाम सारे देशमें घृणाका पात्र हो गया था। उसने तुरन्त भांप लिया, कि यदि यह स्थिति रही, तो वह सारी इमारत ढह पड़ेगी, जिसके खड़ा करनेमें उसका भी हाथ था। उसने निश्चय किया "चाहे तो इस बढ़ती हुई बुराईको नष्ट करूँगा, या वैसा प्रयत्न करनेमें स्वयं नष्ट हो जाऊँगा।"

उसने अपने वचनको पूरा किया। भ्रष्टाचारी अफसर उसका विरोध, उसके खिलाफ षड्यंत्र करते रहे। वह किसी तरह भी अपने लाभ के रास्तेको छोड़नेके लिये तैयार नहीं थे। पर क्लाइव ने दृढ़तापूर्वक

स्थितिमें सुधार करना शुरू किया, और तब तक अपने रास्तेसे जरा भी विचलित नहीं हुआ, जब तक कि उसके सारे विरोधियोंने उसकी इच्छा के सामने सिर नहीं झुकाया।

अब इस महान् वीरके जीवनकी सर्वोपरी सफलता सामने आई। ऐसी सफलता, जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीको भारतके एक विशाल भूभागका आधिपत्य हाथमें आया। कलकत्तामें जब क्लाइवने पूरी तौर से अपनेको मजबूत कर लिया, तब उसने दिल्लीके बादशाहके सामने सुझाव रक्खा, कि वह बंगाल, बिहार और उड़ीसाके तीन महत्वपूर्ण सूबोंको बाकायदा ईस्ट इंडिया कम्पनीके हाथमें दे दे। इसके बदले उसने इन सूबोंकी मालगुजारीसे सालाना एक बड़ी रकम बादशाह हीको नहीं, बल्कि नवाबको भी देना स्वीकार किया। नवाबको अब भी अपनी पद-मर्यादा रखनेका अधिकार था। दिल्लीका बादशाह यद्यपि अब भी नामका बादशाह था, लेकिन वह अंग्रेजोंका शरणार्थी तथा उनके संरक्षण में था। वह क्लाइवकी बातको इन्कार कैसे कर सकता था? लाचार हो उसने भवितव्यताके सामने सिर झुकाया।

१२ अगस्त सन् १७६५ ई० में बनारस शहरमें क्लाइवने इस सौदे को पूरा किया। तख्त की जगह खानेकी दो मेजों को जोड़कर तम्बूके भीतर एक तख्त बनाया गया, जिसके ऊपर एक कुर्सी रक्खी गई। सबको जरदोजीके पर्देसे ढांक दिया गया। यहींपर महाप्रतापी मुगल बादशाहों की संतान और उत्तराधिकारी बैठा। उसने ढाई करोड़ आदमियोंका राज्य तीन करोड़ वार्षिक (प्रायः ३० लाख पौंड) के बदले ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रतिनिधि लार्ड क्लाइवके हाथमें दे दिया।

इस प्रकार (१२ अगस्त १७६५ ई० को) बनारसकी पुण्य नगरीमें अंग्रेजोंको भारतका आधिपत्य मिला, जोकि अदूर भविष्यमें पूर्वसे पश्चिम और उत्तरसे दक्षिण भारतमें सब जगह फैल जानेवाला था।

लार्ड क्लाइवके जीवनका वास्तविक काम अब पूरा हो गया था। २१ महीने भारतमें रहनेके बाद स्वास्थ्यके खराब हो जानेके कारण १७६७

ई० में वह अपनी जन्मभूमि लौटा। उसने इतनी सफलता प्राप्त की थी, अपनी पिछली सेवाके समय उसने कम्पनीकी नौकरियोंमें सुधार किये, और भयंकर स्थितिमें भी वह जरा भी विचलित नहीं हुआ। यह सब होते हुये भी अबकी बार इङ्गलैण्डमें उसका दूसरी ही तरह स्वागत किया गया। उसने जो सैनिक सफलता प्राप्त की थी, उससे ईर्ष्या करनेवाले कितने ही शत्रु पैदा हो गये थे। जिन अफसरोंके जुल्म और भ्रष्टाचारको भारतमें उसने दबाया था, उनके सम्बन्धी भी खार खाये बैठे थे। ये और कितने ही दूसरे भी क्लाइवके खिलाफ एक हो गये। इनका प्रभाव कम नहीं था, यह इसीसे मालूम होगा, कि कुछ ही सालोंमें पार्लियामेंटको इस बातके लिए उन्होंने तैयार कर लिया, कि क्लाइवने भारतमें अपने अधिकारोंका जो दुरुपयोग किया है, उसकी जाँच की जाये। जाँच की गई। भारतमें जो कुछ भी लार्ड क्लाइवने किया था, उस सबकी पड़ताल हुई। यद्यपि मीर जाफरके साथ सुलहनामा और अमिचन्दके साथ क्लाइव ने धोखाबाजीकी थी, अनुचित समझा गया; तो भी पार्लियामेंटने उसे दोषी ठहरानेसे इंकार कर दिया, और उसकी देशकी महान् और उत्तम सेवाओंके समर्थनमें प्रस्ताव पास किये।

इस तरहकी जाँच भी उस महान् सिपाहीके लिए असह्य बात थी। उसने सोचा, कि मैंने अपने देशके लिये जो कुछ किया, उसके लिये मेरे प्रति अकृतज्ञतापूर्ण ही नहीं, बल्कि अन्यायपूर्ण बर्ताव किया गया। यद्यपि वह सम्मानपूर्वक अभियोगसे मुक्त कर दिया गया था, लेकिन तब भी अपमान तो हुआ ही। यह सोचकर २२ नवम्बर १७७४ ई० को उसने अपने हाथों अपने जीवनका अन्त कर दिया।

## २—वारन हेस्टिंग्स् (१७३२-१८१८ ई०)

जिस समय राबर्ट क्लाइव अपनी पुस्तकोंकी पढ़ाईकी उपेक्षा करते हुये नटखट और आवारा लड़कोंकी तरह प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा था, उसी समय उससे सात साल छोटा एक छोटा सा लड़का आक्सफोर्डशायरके चर्चिल गाँवके स्कूलमें पढ़ता, यथासंभव हर तरहके ज्ञानको तत्परतासे संचित कर रहा था। उसके पुराने लंगोटिया यार कहा करते थे—"वह पढ़ना पसन्द करता है।" इसके सिवा लड़केमें न भेसमें, न शकलमें कोई ऐसी बात थी, जिससे कहा जा सके, कि वह गाँवके साधारण गंवार लड़कों-से कोई भेद रखता था। यद्यपि स्कूलमें उसके सहाध्यायी और खेलके साथी गंवार लड़के ही थे, लेकिन वह किसी तरह भी उनमेंसे एक नहीं था। यही नहीं, वह एक भद्र कुलका बालक था, योग्यता और कितने ही दूसरे गुणों-में भी बहुत अन्तर रखता था। सचमुच ही यह बड़े दुर्भाग्यकी बात थी, कि उसे उन लड़कोंमें स्थान मिला था।

यह छोटा बालक था वारन हेस्टिंग्स, जो ६ दिसम्बर १७३२ ई० में पैदा हुआ। पैदा होनेके चन्द ही दिनों बाद उसकी माँ मर गई। उसका बाप जल्दी ही समुद्रपार जाते इस शिशु और उसकी बहिनको उनके दादा-नानाके हाथमें सौंप दिया, जो डेलसफोर्डका एक गरीब पादरी था, और मुकदमेबाजीके कारण जो इस समय बरबाद हो चुका था। दादा थोड़े ही दिनोंमें डेलसफोर्डमें रहनेमें असमर्थ हो उसे छोड़कर चर्चिल गांवमें गिर्जेकी दूसरी नौकरी कर ली। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितिमें वारन हेस्टिंग्सने जीवनमें प्रवेश किया।

वारन एक अतिप्राचीन और यशस्वी कुलमें पैदा हुआ था। इङ्गलैंडके पुराने राजा अलफ्रेडके समय तक उसके कुलका पता लगता है। उसके पूर्वजोंने बहुत से संघर्षोंमें वीरता दिखलाके प्रसिद्धि पाई थी। १७वीं सदी

के मध्यमें इङ्गलैंडके गृह-युद्धमें हेस्टिंग-परिवार बहुत धनी और सम्माननीय माना जाता था। इस कुलके मुखियाने राजभक्तिमें दृढ़ता दिखलाई, जिसके कारण उसकी जमींदारी नष्ट हो गई। उस समय जान हेस्टिंग एक बहादुर सवार था। उसने चार्लस प्रथमकी युद्धमें सहायता की। और अपने खेतों और चाँदी-सोनेके प्लेटोंको बेचकर राजाके लिए धन जमा किया। इसके बाद डेलसफोर्डके स्वामी अपने पुराने दिनोंको नहीं लौटा पाये। ऐसा समय आया, जब कि वह इतने गरीब हो गए, कि जमींदारी हाथमें न रख सकनेके कारण उसे लन्दनके एक बनियेके हाथमें बेच दिया। अब उसके पास सिर्फ पारिश इलाके के रेक्टर-पादरीका दर्जा भर हाथमें रह गया, जिसे डेलसफोर्डके अन्तिम हेस्टिंगने वारनके दादा अपने पुत्रके हाथमें सौंप दिया।

तरुण वारन अपने आरम्भिक जीवन में बड़े-बड़े स्वप्न देखा करता था, जैसे स्वप्ने बहुत कम ही लड़कोंके दिमागमें आते हैं। अपने दादा से वह हेस्टिंग-परिवारकी बीती कीर्तिको सुनने लगा। अपने पूर्वजोंके धन, राजभक्ति और बहादुरीकी कहानियाँ उसे सुनने को मिलीं। इसी समय उसने देखा, कि यह सब अतीत की बात है, और डेलसफोर्डका जो कुछ बचा-खुचा उसके पास था, वह भी अजनबियोंके हाथमें चला गया। इन बातोंका प्रभाव उस लड़के पर बड़ा जबर्दस्त पड़ा। वह अक्सर चर्चिल गाँवके पासकी छोटी नदीके किनारे चला जाता, और वहाँ लेटा-लेटा बीते दिनोंको मानस-नेत्रोंके सामने चित्रित करने लगता। गर्मीका मौसम था, जब कि एक दिन इस सात वर्षके लड़केने एक योजना बनाई, जिसके बारेमें मेकालेका कहना है—"उसने अपने सारे घटनापूर्ण जीवनमें उसे कभी नहीं छोड़ा।" उसने तय किया, कि मैं उस जमींदारीको फिर प्राप्त करूँगा, जो मेरे पूर्वजोंकी थी। "जब वह जलती धूपमें पांच करोड़ एशियायियोंपर शासन कर रहा था। युद्ध, वित्त और कानूनकी सारी चिन्ताओंके भीतर भी उसकी आशा डेलसफोर्डपर लगी हुई थी। जब भली-बुरी कीर्ति अप-

कीर्तिसे भरा उसका जीवन अन्तमें हमेशाके लिये खतम हुआ, तो वह मरनेके लिये डेल्सफोर्डमें लौटा।

वारन जब आठ वर्षका था, तो यह खबर पाकर उसको बड़ी खुशी हुई, कि मेरा चाचा हावर्ड हेस्टिंग— लन्दनमें एक सरकारी अफसर— अच्छी तरह शिक्षा पानेके लिये मुझे अपने संरक्षणमें लेना चाहता है। यह बिल्कुल स्वाभाविक था, कि लड़केने बड़ी खुशीसे राजधानी की ओर मुँह किया। वहाँ पहुँचनेपर उसे नेविंगटनके एक स्कूलमें भर्ती कर दिया गया, जहाँ वह दो साल तक रहा। यद्यपि उसकी पढ़ाई अच्छी हो रही थी, लेकिन वहाँ उसे भूखा सा रहना पड़ता था। पीछे वह ख्याल करता था, कि मेरे नाटेपन का कारण इस समयके भोजनका अभाव था। इसके बाद अच्छे दिन आये। उसका चचा अब इस स्थितिमें था, कि भतीजेको दस वर्षकी उमरमें प्रसिद्ध वेस्टमिनिस्टर स्कूलमें दाखिल करे। वहाँ डा० निकलससे पढ़ते हुये वारनने एक तेज विद्यार्थीके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त करनेकी सम्भावना प्रदर्शित की। जल्दी ही व्यायाममें भी उसने विशेषता प्राप्त की, खास करके नाव चलाने और तैरनेमें। उसके साथी उसे बहुत पसन्द करते थे। इस समय जो मित्रता उसने प्राप्त की थी, वह सारे जीवन तक अटल रही।

अब बुरी तौरसे उसे निराशाका सामना करना पड़ा। वह वेस्टमिनिस्टरमें छ साल तक बहुत ही आनन्दके साथ पढ़ता रहा। अपनी योग्यता और परिश्रमसे उसे राजछात्रकी सूचीमें प्रथम स्थान मिला, और वह आक्सफोर्ड युनिवर्सिटीमें प्रवेश करनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। इसी समय उसका कृपालु चाचा मर गया, और उसके सारे जीवनका मार्ग बदल गया। वारन तुरन्त उसके एक दूरके रिस्तेदार चिसविकके संरक्षणमें चला गया। इस भद्रपुरुषका लड़केके प्रति कोई सद्भाव नहीं था, बल्कि वह इसके लिये उत्सुक था, कि कैसे इससे पिण्ड छूटे। उसने निश्चय किया, कि वारनको वेस्टमिनिस्टर छोड़ना चाहिये। डा० निकलसने बहुत समझाया, कि यह होशियार विद्यार्थी अपने अध्ययनको जारी रखे। उसने

आक्सफोर्डमें पढ़ाईके खर्च को भी स्वयं बर्दाश्त करनेके लिये कहा, लेकिन इसका कोई फल नहीं हुआ। चिसविककी ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें कुछ पहुँच थी। उसने देखा, कि अगर वारन कम्पनीकी नौकरीमें चला जाये तो मेरा पिण्ड छूटे। वारन हेस्टिंगको वेस्टमिनिस्टर स्कूलसे हटा दिया गया। कुछ समय तक वही खाताकी शिक्षा एक प्राइवेट अध्यापक रखकर दिलाई गई। फिर राबर्ट क्लाइवकी तरह क्लर्क राइटर बनकर जहाजसे भारतके लिए जनवरी १७५० ई० में रवाना हुआ। अर्थात् पलासी की युद्धमें क्लाइवके विजय प्राप्त करनेसे सात वर्ष पहले।

वारन हेस्टिंगसको सबसे पहले कम्पनीके कलकत्ता केन्द्रमें सेक्रेटरीके आफिसमें काम करनेका मौका मिला। उस समयके उसके जीवनका बहुत पता नहीं है, सिवाय इसके कि कम तनखा रहने और अपने आसपासके प्रलोभनोंके रहते भी वह तरुण अपनी क्षमता और नैतिकतामें बहुत ऊँचा था। फुर्सतके समय तो वह देशी भाषाओंके सीखनेमें लगाता था। दो साल नौकरी करनेके बाद उसे मुर्शीदाबादके पास कासिम बाजारमें स्थित कम्पनीकी फेक्टरीमें भेज दिया गया, जहां उसका काम था इंगलैंडके बाजारके लिए रेशम और दूसरे मालके निर्यात करनेका निरीक्षण करना। वहां वह कुछ सालों रहा, और अपने कामको इतनी अच्छी तरह करता था, कि ऊपरके अधिकारी उससे बहुत संतुष्ट थे। वहीं ऐसी घटनायें घटीं, जिसने उसके सारे भविष्यको प्रभावित किया।

इस समय बंगालकी गद्दी नवाब सिराजुद्दौलाके हाथमें आई थी। सिराजुद्दौलाने कम्पनीकी बस्ती कलकत्तापर आक्रमण करने और (तथा० कथित) कालकोठरीके भयंकर काण्डके बाद सारे बंगालमें अंग्रेजी फेक्टरियोंको नष्ट करने में लगा। कासिमबाजारकी फेक्टरीको नष्टकर लेनेपर हेस्टिंगस कैदी बना लिया गया। वह शायद इसी स्थितिमें कितने ही समय तक रहता, लेकिन एक पड़ोसी डच फेक्टर-गुमाश्ता के प्रभावके कारण उसे मुक्ति मिल गई। थोड़े समयके लिये हुगली नदीके एक द्वीपमें वह भाग गया, जहांपर कि कलकत्तासे भी कुछ अंग्रेज शरणार्थी पहुँच

गये थे। जब वह वहाँ था, उसी समय काल कोठरीके हत्याकाण्डका बदला लेनेके लिये राबर्ट क्लाइवके नेतृत्वमें एक अंग्रेजी सेना पहुँची। हेस्टिंस्ने तुरन्त अपनी सेवायें अर्पित कीं। और उसके बाद ही कलकत्तापर जो आक्रमण हुआ था, उसमें बन्दूक लेकर वह लड़नेवालों की पंक्ति में था।

लेकिन, उसने एक सैनिकके तौरपर विशेषता नहीं प्राप्त की। सेनापतिने सिराजुद्दौलाके साथ होती हुई कुछ बातचीतोंमें उसको भेजा था और हेस्टिंग्स अपनी कूटनीतिक चातुरीका परिचय दे चुका था। क्लाइवने बहुत जल्दी समझ लिया, कि वह असैनिक सेवाके लिये अधिक योग्य साबित हो सकता है। १७५७ ई० में पलासीकी लड़ाईके बाद सिराजुद्दौलाकी जगहपर जब मीरजाफरको गद्दीपर बिठाया गया तो वारन हेस्टिंग्सको कम्पनीके रजिडेन्ट एजेन्टके तौरपर नये नावबके दरबारमें नियुक्त किया गया।

हेस्टिंग्स इस पदपर रहकर १७६१ ई० तक काम करता रहा। इस समयमें यद्यपि अपनी स्थितिके दूसरे कम्पनीके अफसरोंकी तरह उसे भी धन बटोरनेका काफी अवसर था, लेकिन अपनी ईमानदारीके लिए उसकी भारी प्रसिद्ध हो गई, और वह कलकत्तामें कौंसिल परिषद् का सदस्य बनाया गया। इस समय बंगाल, मद्रास और बम्बई तीनों प्रेसीडेंसियोंमें अपने-अपने गवर्नर थे, जिनकी सहायता के लिए एक-एक परिषद् थी। हेस्टिंग्स उस समय महत्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित हुआ, जब कि क्लाइव इङ्गलैंड गया हुआ था। जिस समय कि कुछ अफसरोंने अपने अधिकारका दुरुपयोग करके हर तरहसे धन बटोरनेका प्रयत्न किया था, और ऐसे काम किये थे, जिन्हें "पीस देने वाला अत्याचार" कहा गया, और जिसे "हमारे भारत के इतिहासका अत्यन्त घृणित पृष्ठ" कहा जाता है।

इसका हेस्टिंग्सने बहुत जबर्दस्त विरोध किया, लेकिन अनेकोंके सामने वह अकेला था। यद्यपि वह बराबर प्रयत्न करता रहा, लेकिन अत्याचारके रोकनेमें वह बेकार साबित हुआ, और तब तक वही रफ्तार चलती रही, जब तक कि क्लाइव लौटा नहीं।

इस प्रकार तीन साल बीते। फिर हेस्टिंग्स इङ्गलैंड लौटा और वहाँ प्राच्यसाहित्यके अध्ययनके लिये खास तौरसे और दूसरे कामोंमें लग गया। उसके पास बहुत थोड़ा सा धन था, जिसमेंसे अपने सम्बन्धियों और हानि उठानेवाले व्यवसायोंमें भी उसने कुछ लगाया। इस प्रकार जो पैसा था, वह भी धीरे-धीरे उसने खो दिया। चारसाल देशमें रहनेके बाद फिर उसका ख्याल भारतकी ओर गया। ईस्ट इंडिया कम्पनीके डायरेक्टरोंने बड़ी खुशी से उसके काम पानेकी इच्छाको स्वीकार करके मद्रासकी कौंसिलका द्वितीय सदस्य बना दिया।

अपने पदको संभालते जल्दी ही उसने दिखला दिया, कि पहलेकी तरह ही वह बड़ी तत्परताके साथ अपने कामको करना चाहता है। भारतीय नौकरियोंके एक महत्वपूर्ण वित्तीय विभागमें सुधारकी भारी आवश्यकता देखकर उसने उसके करने का निश्चय किया, वह उसमें जुट गया, और इतनी अच्छी तरह कामको पूरा किया, कि उसके ऊपरके अधिकारी बहुत खुश हुए, और उन्होंने १७७२ ई० में उसे बंगालके गवर्नरका उत्तरदायी पद प्रदान किया।

हेस्टिंग्सका रास्ता फूलों का नहीं था, और जैसा कि घटनाओंने सिद्ध किया, कि उसके सामनेजो कठिनाइयाँआई थीं, यदि वह उसे पहले मालूम होतीं, तो इस पदको स्वीकार न करता। इस समयसे पांच साल पहले १७६७ ई० में क्लाइव भारत छोड़कर चला गया। उसके बाद हीसे देश का प्रशासन क्रमशः भयंकर अस्त व्यस्त अवस्थामें पहुँच गया। इसके साथ ही एक भीषण अकाल बंगालमें पड़ा, जिसने वहाँकी एक-तिहाई जनताको नष्ट कर दिया। बादशाहके अपने अधिकारको स्थानांतरित करनेके समय क्लाइवने जैसी शासन-व्यवस्था कायम की थी, उसमें उसके देशसे जानेके बाद अधिकारका बहुत दुरुपयोग किया गया था। यह मुख्यतः नवाबके कारण हुआ था, जिसे बाहरी दिखावेका अधिकार अपने हाथमें रखने दिया गया था। और एक देशी अफसरने भी इसमें हाथ बंटाया था, जिसे राजधानी मुर्शीदाबाद दरबारमें रहकर अंग्रेजोंके लिये मालगुजारी

उगाहनेका नियंत्रण करनेकी स्वीकृति दी गई थी। इस व्यवस्थाके कारण कलेक्टरों मालगुजारी संग्राहकोंके हाथों जनताको भारी अत्याचार का सामना करना पड़ा। उन्होंने "गुड़िया नवाब" के नामसे ही नहीं लोगोंको लूटा-खसूटा, बल्कि कम्पनीके मालगुजारीको भी रोक रक्खा। इस प्रकार एक ओर कम्पनी अपनी आमदनीसे वंचित की गई थी, दूसरी तरफ लोगोंके साथ इस तरहका जुल्म हो रहा था, जिससे उनमें असन्तोष पैदा होकर कम्पनी का शासन निर्बल हो रहा है।

कम्पनीके डायरेक्टरोंने पक्का कर लिया, कि इस स्थितिको खतम करना होगा। इस कामका जिम्मा उन्होंने हेस्टिंग्सको दिया। उसका पहला काम था देशी वजीर मुहम्मद रजाखांको उसके पदसे हटाकर मालगुजारी जमा करनेका काम कम्पनीके जवाबदेह अफसरोंके हाथमें दे देना। इसी समय उसने बंगालकी राजधानीको मुर्शीदाबादसे कलकत्तामें बदल दिया। १७७२ ई० में इस परिवर्तनके बादसे लेकर १९१२ ई० तक कलकत्ता ही भारतकी राजधानी रहा, जब कि उसे दिल्लीमें परिवर्तित किया गया।

और भी परिवर्तन किये गये। न्यायालय आरम्भ किये गये, जिनमें सर्वोच्च अधिकार देशियोंके हाथमें नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके हाथमें था। इस प्रकार नवाबका जो कुछ अधिकार बचा रह गया था, उससे भी वंचित करके हेस्टिंग्सने क्लाइवके स्थापित किये हुये दो अमली शासनको खतम कर दिया। नवाब पहले लिखे अनुसार अब भी प्रतिवर्ष वार्षिक भारी रकम पाता रहा।

—यह याद रखनेकी बात है, कि मुर्शीदाबादके इसी नवाबके खानदानमें पाकिस्तानके नये गवर्नर-जेनरल आस्कन्दर मिर्जा पैदा हुये—। दो अमली शासनकी जगहपर अब बंगालका वास्तविक आधिपत्य कम्पनीके हाथमें चला आया।

इस प्रकार प्रदेशका शासन एक दृढ़ नींवपर रख दिया गया, और व्यवस्था पुनः स्थापित कर दी गई। लेकिन, बंगालकी सीमासे बाहर नई

कालीघटायें जमा हो रही थीं। बहुत समय नहीं बीता, कि ऐसी घटनायें घटीं, जिन्होंने उनकी परिस्थितिको हलका करनेकी कोशिश करनेपर भी हेस्टिंग्सकी कीर्तिमें बट्टा लगाया।

सच बात यह है, कि गवर्नर इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था। अनेक कारणोंसे उसका खजाना खाली था। यद्यपि नई शासन-व्यवस्थासे भविष्यमें अच्छे वित्तीय फल पैदा होनेकी सम्भावना थी, लेकिन तत्काल कम्पनी कर्जमें फँसी हुई थी। इंग्लैंण्डसे चिट्ठियोंपर चिट्ठियाँ आ रही थीं, डायरेक्टर रुपया माँगनेकी नई-नई मांगें कर रहे थे। रुपया कहाँसे पाया जाये। दो अमली शासनके खतम होनेके समय इंग्लैण्डसे आये आदेशोंके अनुसार हेस्टिंग्सने नवाबके लिये क्लाइव द्वारा वचन दी हुई पेंशनको आधा कर दिया—यह भारी प्रतिज्ञा-भंग थी। उसने अब एक कदम और आगे जानेका निश्चय किया। बादशाहने बंगाल, बिहार और उड़िसाके प्रदेशको कम्पनीके हाथोंमें जब दिया था, तो कम्पनीने तीन लाख पौंडके करीब रकम को देना स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त बादशाह को कोड़ा और इलाहाबादके जिले भी दे दिये गये थे। पश्चिमी मध्य-भारतके पहाड़ी लड़ाकू मराठोंके साथ कुछ साल पहले बादशाहने कोई कार्रवाई की थी। मराठे अंग्रेजोंके खिलाफ थे। इसका बहाना करके हेस्टिंग्सने घोषित किया, कि अब बादशाहको कोई नजराना नहीं मिलेगा। इसके साथ-साथ उसने कोड़ा और इलाहाबादके जिलोंपर कब्जा करनेके लिये सेना भेज दी। उनपर कब्जा करनेका मतलब सिर्फ यही था, कि उन्हें अच्छे दामपर बेच दिया जाए। वह जानता था, कि जिले ऐसे स्थानमें हैं, जहाँ नवाब-अवध उनके लिए भारी कीमत दे सकता है। हेस्टिंग्सने नवाबसे बातचीत की, और इस जबर्दस्ती छीने हुए भूभागके लिए पाँच लाख पौंड लेकर उसे कम्पनीके खजानेमें जमा कर दिया।

हेस्टिंग्सकी दुराचारपूर्ण कार्रवाइयां इतने हीसे खतम नहीं हुई। अब नवाब अवध से उसने एक और भी लज्जाजनक सांठ-गांठ की। पश्चिमोत्तर हिन्दुस्तानके रुहेलखण्डका उर्वर भूभाग है। नवाब-अवध उसकी और

लोभकी नजरसे देख रहा था। नवाबका कहना था कि वहाँके निवासी—(निवासी नहीं शासक गुट)—रुहेले हमारे साढ़े चार लाख पौंडकी रकम-को देनेसे इन्कार करते हैं। जिन्हें कि हमने उनके देशकी रक्षामें सहायता-के लिए स्वीकार किया था। यदि कम्पनी अपनी सेनासे रुहेलखण्डपर अधिकार प्राप्त करनेके लिए हमारी सहायता करे, तो उतनी रकम हम उसे देंगे। यह घृणित प्रस्ताव हेस्टिंग्सने स्वीकार कर लिया। कम्पनीके खजाने-को भरने और नवाबके लोभको पूरा करनेके लिए बहादुर और मेहनती रुहेलोंके भाग्यका विनाश निश्चित हो गया।

कहा जाता है, जब रुहेलोंको नवाबके साथ अंग्रेजोंकी सन्धि का पता लगा, तो उनके बहादुर सरदारने प्रार्थना की, कि हमारे देशको बचा दिया जाये, हम नवाबके रुपयेको दे देंगे। लेकिन नवाब लड़ाई करनेके लिए उतारू था, उसने पहली रकमसे पाँच गुनाकी माँग की। इसपर रुहेलोंने एक-एक आदमीके तौरपर घोषित किया "हम उससे ही पहले मर जानेके लिए तैयार हैं,बजाय इसके कि ऐसी लूटकी मांगको स्वीकार करें।" इसपर नवाब और कम्पनीकी सेनायें आगे बढ़ीं, और बहुत देर नहीं हुई सारा रुहेलखण्ड आग और तलवारकी मारसे कराहने लगा। जिस समय निर्णा-यक युद्ध लड़ी जा रही थी, यह उल्लेख किया गया है, नवाब खतरेके स्थानसे बहुत दूर पड़ा रहा। लेकिन, जैसे ही उसने देखा, कि अभागे रुहेले पिट चुके, उसने अपनी सेनाको उनके डेरोंको लूटनेके लिये भेजा। अंग्रेज कमाण्डरने भले ही कहा था—"हमें उस दिन विजयका सम्मान मिला, लेकिन उसका लाभ यह डाकुगन था।" ईस्ट इंडिया कम्पनी हिंदु-स्तानमें अधिक और अधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही थी। पहले क्लाइव-के द्वारा, और फिर हेस्टिंग्सके द्वारा। कम्पनीकी इस प्रगतिको इङ्गलैंडके लोग बड़ी सावधानीसे देख रहे थे। पार्लियामेन्टमें इसपर बहस हुई, और १७७३ ई० में उसने निर्णय किया कि सरकारके तरीकेमें काफी परिवर्तन करना चाहिये। इस पर एक कानून पास किया गया, जिसे "रेगुलेटिंग

एक्ट" नियामक विधि कहा जाता है, जिसके अनुसार इङ्गलैंडसे राजा द्वारा नियुक्त चार आदमियोंकी एक नई परिषद् हिन्दुस्तान भेजी जाये, और वह बंगालके गवर्नरके साथ एक होकर हिन्दुस्तानके सभी अंग्रेज-अधिकृत प्रदेशोंके शासनका अधिकार रक्खें। अब तक जिसे बंगाल का गवर्नर कहते थे, उसे अबसे भारतका गवर्नर-जनरल ( महाराज्य पाल ) बना दिया गया। इसी समय न्यायका एक सर्वोच्च न्यायालय कलकत्तामें स्थापित किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन दूसरे जज रक्खे गये, जिनको सारे अंग्रेजी हिन्दुस्तानके लिये न्याय करनेका अधिकार मिला। इस भारी परिवर्तनका उद्देश्य यही था, कि कम्पनीने जो असीम अधिकार प्राप्त कर लिए थे, उसको कम किया जाये, और उसको ऐसी कार्यवाइयोंके करनेसे रोका जाये, जो ब्रिटिश सरकार के अनुकूल नहीं थी।

वारन हेस्टिंग्सने इन अंग्रेज अफसरोंके आनेको अच्छी निगाहसे नहीं देखा। खास करके जो पारिषद् कौंसिलर चुने गये थे, उनके बारेमें, वह उसकी नजरमें कुछ जचते नहीं थे। साथ ही वह यह भी जानता था, कि उनमेंसे अधिकांश हरेक बातमें कम्पनीके काममें रोड़ा अटकानेके लिए उतारू हैं। बड़ी जल्दी ही गवर्नर-जेनरल और नवागत कौंसिलरोंमें खुली लड़ाई छिड़ गयी।

अक्टूबर १७७४ ई० में चारों कौंसिलर कलकत्ता पहुँचे। आनेके दिन हीसे उन्होंने हेस्टिंग्सके खिलाफ शिकायतका मौका पाया। गवर्नर-जेनरल को २१ तोपोंकी सलामी दागी जाती थी, कौंसिलर भी अपनेको उसका पात्र समझते थे, लेकिन केवल १७ तोपोंकी सलामी दी गयी। उन्हें पहले ही पता लग गया था, कि हेस्टिंग्स हमें बाधक समझता था। अब इस सलामीको लेकर उनके दिलमें मलाल पैदा हो गया। वह प्रतीक्षा कर रहे थे, कि सम्मानके लिये गारद वहाँ तैयार मिलेगी, जिसका वहाँ पता तक नहीं था। इससे वह और भी जल-भुन गये। इन सबके ऊपर एक कौंसिलर फिलिप फ्रांसिस हेस्टिंग्सके उस पोशाकसे असन्तुष्ट हुआ,

जिसको पहनकर हेस्टिंग्स उनसे मिलने आया था। उसी समय अपने मित्रके लिये लिखे गये एक पत्रमें फ्रांसिसने अपने भावों को प्रकट करते हुये लिखा था—"सचमुच, मिस्टर हेस्टिंग्स एक रफलवाली कमीज पहन करके मिले होते तो बेहतर होता। भारतकी स्थितिका कितना जबर्दस्त अज्ञान इन नवागतोंको था। इसके बारेमें अंग्रेज इतिहासकार लिखता है, कि किसी समय, जब कि अंग्रेज जज जहाजसे तटपर उतरे, तो उनमेंसे एकने हिन्दुस्तानियोंको नंगी टांग और नंगे पैर देखकर कहा—"भाई, हमारा न्यायालय सचमुच समयसे पहले स्थापित नहीं किया गया। मुझे विश्वास है, कि इस देसमें रहते छ महीने भी न बीतते-बीतते इन अत्याचार पीड़ित आदमियोंको आराम दे जूता और मोजेका इन्तजाम कर दिया जायेगा।" १७७४ ई० में अंग्रेज जजने हिन्दुस्तानियोंको जूता-मोजा पहना देनेका संकल्प किया था, जो आज पौने दो सौ वर्ष बाद अंग्रेजों के हिन्दुस्तान छोड़कर चले जानेके आठ वर्ष बाद भी पूरा नहीं हो सका।

अंग्रेजों के हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाने के आठ वर्ष बाद कौंसिलरोंके यह बर्ताव गवर्नर-जेनरल और उनके बीचके भावी सम्बंध कटु होनेकी भविश्यवाणी कर रहे थे। बहुत समय नहीं बीता, कि उनमें और हेस्टिंग्ससमें भारी मनमुटाव हो गया, और उन्होंने अपने अधिकारको कार्यरूपमें परिणित करना शुरू किया। आनेके दूसरे दिन उनकी बैठक इस कामके लिये हुई, कि उनको जो अधिकार मिले हैं, उसको पढ़ा जाये। कुछ दिनों बाद वह फिर इसलिए एकत्रित हुये, कि हेस्टिंग्स बंगालमें अपने गवर्नर रहनेके समयकी सारी कर्यवाइयोंका एक वक्तव्य उनके सामने रक्खे। यह साफ था, कि एक भयंकर तूफान उठनेवाला था।

जैसे ही गवर्नर-जेनरलने नवाब-अवध और रुहेलोंकी लड़ाईकी बातका जिक्र किया, वैसे ही उसे कहा गया, कि तुम्हारे और नवाबके बीच जो कुछ भी लिखा-पढ़ी हुई हो, उसे उपस्थित करो। इसका मतलब यही था, कि इस कर्रवाईमें उन्होंने हेस्टिंग्सपर सन्देह किया, कि उसने स्वयं अपने भारी लाभके लिये यह सब किया था। यह सन्देह अकारण था। यद्यपि

बिल्कुल कम्पनीके एकमात्र लाभके लिए किया गया था। हेस्टिंग्सने इस माँगको पूरा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा, कि लिखा-पढ़ीमें कितनीही गुप्त बातें हैं। दूसरी चीजोंको दिखलाने के लिये मैं तैयार हूँ, "लेकिन दुनियामें कोई शक्ति नहीं है, जो मुझे स्वयं उन पत्रोंको देनेका हुक्म दे।"

गवर्नर-जेनरलका समर्थन कौंसिलके सिर्फ एक सदस्यने किया। परिणाम यह हुआ, कि बहुमत उसके खिलाफ हो गया, और जिसने उसके हाथसे सभी अधिकार छीननेमें सफलता प्राप्त की। इसके बाद विरोध प्रकट करनेके बाद भी उन्होंने भारतके भिन्न-भिन्न भागोंके कामोंमें दखल देना शुरू किया। यह सुनकर आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं, कि देशके बारेमें बिल्कुल अनजान होनेके कारण उन्होंने बंगाल और दूसरी जगहोंमें बड़ी गड़बड़ी पैदा की। हेस्टिंग्स कौंसिलका मुखिया था, और मुखियाके तौरपर बैठकमें बैठता था। उस समय प्रेसीडेन्ट (अध्यक्ष) के स्वाभिमान पर धक्का पहुँचाने और उसका विरोध करनेके किसी अवसरको कौंसिलर हाथसे जाने नहीं देते थे।

उन्होंने हेस्टिंग्सके खिलाफ जो कार्यवाई कीं, उनमें-रुहेला-युद्धकी जाँच भी थी। जाँचमें हेस्टिंग्सके अपने अफसरोंको उन्होंने उसके खिलाफ गवाही देनेके लिए मजबूर किया। इस प्रकार वह उसका सर्वनाश करना चाहते थे। इसमें असफल होने पर फिर भी वह उसे दण्डित करनेके लिये उतारू थे। इस काममें उन्होंने एक बदनाम हिन्दू भेदिया—जो कि हेस्टिंग्सके साथ जबर्दस्त घृणा रखता था— की सेवाओंको स्वीकार करनेसे भी बाज नहीं आये। मेकाले लिखता है— "भारतीय सरकार केवल किसी आदमीको बरबाद करनेकी इच्छा भर जाने का मौका दे दे, और चौबीस घंटेके भीतर ऐसे प्रमाणों और पारिस्थितिक बातोंके द्वारा समर्थित भारी इल्जाम तैयार हो जायेंगे, कि जिसे एसियायी धूर्तताका पता नहीं है, वह आदमी निर्णायक समझ लेगा।" यह मामला इस वक्त आया, यह स्थिति इस समय थी। पता लग गया था, कि हेस्टिंग्ससे वास्तविक अधिकार छीन लिया गया

है। वह इस योग्य भी नहीं है, कि किसीके ऊपर कोई मूल्यवान् इनाम या संरक्षण दे सके। इसे जान लेनेके बाद देशियोंने अपने स्वाभाविक रुझान का परिचय दिया, और कमजोर की जगह बलवानोंका पक्ष लेते कौंसिलके बहुमत की कृपा प्राप्त करनी चाही। इसके लिए उन्होंने गवर्नर-जेनरलके खिलाफ इल्जाम लगानेवाली कहानियाँ गढ़ीं, जिसे कौंसिलर सुननेके लिये तैयार थे।

इन देशी आदमियोंमें इस समय सबसे आगे था नन्दकुमार। नन्दकुमारका गवर्नर-जेनरलके साथ लम्बे अर्सेका द्वेष था। क्लाइव और हेस्टिंग्स दोनों नन्दकुमारको 'हिन्दुस्तानमें जाने गये आदमियोंमें सबसे बुरा' मानते थे। —अंग्रेजोंके अनुसार—भारी बदमाश था। कुछ साल पहले जब कि हेस्टिंग्सने मुर्शिदाबादके देशी वजीरके पदसे मुहम्मद रजा खांको हटाया था, उस समय नन्दकुमारको पूरी आशा थी, कि मुझे अपने कौशलसे यह खाली पद मिलेगा। लेकिन जब उसने देखा, कि इन कामोंके लिए मुझे नहीं, बल्कि अंग्रेजोंको नियुक्त किया गया है, तो वह आपेसे बाहर हो गया, और उसने कभी हेस्टिंग्स को क्षमा नहीं किया। नये कौंसिलरोंके आनेपर उसे मालूम हो गया, कि वह गवर्नर जेनरलके खिलाफ है। उसने उनसे घुर-खुल होनेका प्रयत्न शुरू किया, जिसमें वह सफल हुआ। फिर उसने हेस्टिंग्स के खिलाफ एक भारी इल्जाम लगाया। उसने कहा, कि मुहम्मद रजा खांको बर्खास्त करनेके सम्बन्धमें ३५ हजार पौंडकी रकम उसने ली थी। कौंसि-लर नन्दकुमारकी बात पर विश्वास करनेके लिये तैयार ही थे। उन्होंने निश्चय किया, कि नन्दकुमार स्वयं सामने उपस्थित होकर इल्जामोंको प्रमाणित करे। इस महान् अपमानको हेस्टिंग्स बर्दाश्त करनेके लिये तैयार नहीं था। उसने घोषित किया, कि कौंसिलरोंके बोर्डको यह अधिकार नहीं है, कि वह मेरे बारेमें फैसला करे। उसने इस बातसे इन्कार कर दिया, कि नन्दकुमार जैसा बदमाश सामने आकर उसकी बेइज्जती करे। और तुरन्त वह कौंसिल भवन छोड़कर चला गया। नन्दकुमारको भीतर बुलाया गया। उसके बयानकी सुनाई नहीं गया, बल्कि प्रमाणके तौरपर उसके बनाये एक

जाली पत्रको स्वीकार किया गया। यह घोषित किया गया, कि इल्जाम साबित हो गये हैं, रकमको हेस्टिंग्सने लिया है। आज्ञा दी गई, कि उस रकमको हेस्टिंग्स तुरन्त कम्पनीके खजानेमें दाखिल करे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि गवर्नर-जेनरलने हुकुमको माननेसे साफ इन्कार कर दिया। लेकिन, अभी और भी भारी इल्जाम उसके खिलाफ इसी तरह प्रमाणित किये जाते रहे। हेस्टिंग्सकी स्थिति उस वक्त बहुत बुरी हो गई।

लेकिन, यह स्थिति थोड़े ही समय तक रही। नन्दकुमार इससे प्रसन्न था, कि उसने खूब बदला लिया, और वह अपने मनको विश्वास दिला रहा था, कि जल्दी ही हेस्टिंग्स अपने पदसे बहुत अपमानित होकर बरखास्त किया जायेगा। कौंसिलरोंमें एक बड़ी आशा थी, कि वह हेस्टिंग्स का स्थान लेगा। वे हेस्टिंग्सको अपराधी साबित करनेमें पूरी तरहसे लगे हुये थे। इसी समय हेस्टिंग्सने एक ऐसी योजना बनाई, जिसमें कौंसिलरोंके सारे मनसूबोंको बेकार कर दिया।

हेस्टिंग्सको मालूम था, कि सर्वोच्च न्यायालय सुप्रीम कोर्ट के नये अंग्रेज जजोंके कितने अधिकार हैं, और यह भी कि वे, कौंसिलरोंकी तरह मुझसे शत्रुता नहीं रखते। उसने अब उनसे काम लेने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप हेस्टिंग्सने नन्दकुमार और दूसरे इल्जाम लगानेवालोंके खिलाफ एक मुकदमा दायर किया। कुछ दिनों तक मुकदमा चलनेके बाद जमानत पर छूटे अपराधियोंको अदालतके सामने लानेका हुकुम दिया गया। इतना ही नहीं, बल्कि एक दिन सबेरे कलकत्ताके लोग यह सुनकर चकित हो गए, कि नन्दकुमारको जाल बनानेके एक नए अपराधमें एकाएक गिरफ्तार कर लिया गया, और उसे सर्वोच्च न्यायालयकी आज्ञासे साधारण अपराधीकी तरह साधारण जेलमें डाल दिया गया। अपराध यह था, कि इससे ६ वर्ष पहले उसने जाली दस्तावेज बनाया था। इल्जाम लगानेवाला एक देशी व्यापारी था, जो इस उपयुक्त अवसर से लाभ उठाकर अपराधी को दण्ड दिलानेके लिये आगे आया।

यह सुनकर कौंसिलरोंका क्रोध चरम सीमापर पहुँच गया। उन्होंने तुरन्त नन्दकुमारको मुक्त करनेकी माँग की, और न्यायाधीशोंको भी डराने की कोशिश की। लेकिन इसका कोई फल नहीं हुआ, और एक लम्बे अर्से तक मुकदमेंकी कार्रवाही होकर अभागे हिन्दूको मौतकी सजा दी गई।

इस घटनासे यद्यपि कौंसिलके बहुमतके कारण जो कठिनाइयाँ पैदा हुई थीं, उनकी समाप्ति नहीं हुई, पर हेस्टिंग्सका प्रभाव फिरसे जमने लगा। जो आदमी उसपर इल्जाम लगानेमें मुखिया था, उसे इस तरह मरना पड़ा, कौंसिलके भीतरके नन्दकुमारके दोस्त भी उसको बचा नहीं सके। इसे देखकर प्रत्येक देशी, जिसने गवर्नर-जनरलके खिलाफ बात निकालनेकी कोशिश की थी, चुप कर दिया गया। अबसे सभी हेस्टिंग्ससे डरने लगे।

विरोधी कौंसिलरों और लन्दनमें कम्पनीके डायरेक्टरोंसे हेस्टिंग्सके रास्तेमें कठिनाइयाँ कितने ही समय तक डाली गईं, किन्तु अन्तमें उसे फिर अधिकार मिल गये। सारे विरोधी दबा दिए गए। इस समय भारतमें अंग्रेजी शासनकी एक भारी परीक्षाका समय आया था, जब कि वारन हेस्टिंग्सने अद्भुत राजनीतिक सूझ-बूझका अपने देशवासियोंके सामने परिचय दिया।

अपनी स्थितिको मजबूत देखकर हेस्टिंग्सने अब अनुभव किया, कि वह समय आ गया है, जब कि कम्पनीने हिन्दुस्तानके ऊपर जो अधिकार प्राप्त किया है, उसे और दृढ़तापूर्वक स्थापित करना और आगे बढ़ाना चाहिए। उसने साफ देखा, कि अंग्रेजोंका राज्य जो हिन्दुस्तानके उत्तरके बड़े भागमें है, उसे या तो बढ़ना होगा, नहीं तो घटना, क्योंकि देशी शासक बहुत दिनों तक उनके खिलाफ उठनेसे बाज नहीं आयेंगे। उसने इसके लिए योजनायें बनानी शुरू कीं।

इस समय भारतमें बहुत से छोटे-छोटे राज्योंके अतिरिक्त तीन बड़े-बड़े भाग थे, जिनपर तीन शक्तिशाली शासक शासन कर रहे थे। जो अंग्रेजों-को दबोचनेके अवसरके प्रतीक्षामें थे।—इनमें एक थे मराठे, जिनका बिखरी हुई रियासतोंका एक मजबूत संघ था; दूसरा था मैसूरका सर्वेसर्वा हैदर

अली और तीसरा था दक्षिण हैदराबादका निजाम महमद अली। हेस्टिंग्स इन शक्तिशाली शासकोंको मात करनेके लिए तरीका निकालनेमें सारी शक्तिसे जुट पड़ा।

पोर्तगालके राजाने अपनी लड़कीके दहेजमें बम्बईको अंग्रेज राजाको दे दिया था, जिसे उसने कम्पनीको सौंप दिया था, यह हम बतला चुके हैं। राघोबा अपने भतीजेको मारकर बम्बई भाग गया था। अंग्रेजोंने उसे शरण दी थी, इसलिए मराठे नाराज थे। इसी समय हेस्टिंग्सको पता लगा, कि फ्रांसीसियोंने कम्पनीके खिलाफ लड़नेके लिए मराठोंके साथ सन्धि की है। उस समय योरोपमें अंग्रेजों और फ्रांसीसियोंके बीच लड़ाई की गई थी। इस नए खतरेको देखकर हेस्टिंग्सने एक जबर्दस्त प्रहार करने-का निश्चय किया। तुरन्त बंगालमें स्थित सारी फ्रेंच फैक्टरियां, व्यापारिक कोठियों को उसने जब्त कर लिया, और मद्राससे कहा, कि पांडिचेरीपर अधिकार कर ले। इसके बाद मराठोंके खिलाफ कूच करती एक सेनाको कलकत्तासे बम्बई जानेका हुकुम दिया गया।

इतनी दूर सेनाको भेजना कठिन काम था। वहाँ न स्थल-मार्गसे ले जानेके लिए काफी साधन थे, और न जंगी जहाज उतने मौजूद थे। हेस्टिंग्सने एक साहसपूर्ण कदम उठाया, जिसका ख्याल हिन्दुस्तानमें किसी अंग्रेजके दिमागमें उससे पहले नहीं आया था। उसने निश्चय किया, कि सेना सीधे देशके भीतरसे जाये। इस प्रकार लक्ष्यकी ही प्राप्ति नहीं होगी, बल्कि देशके भीतर रहनेवाले राजाओंको भी कम्पनीकी शक्तिका पता लगेगा।

इस अभियानमें सात हजार सैनिक और तीस हजार लग्गू-भग्गू शामिल थे। १७७८ ई० में कलकत्तासे ये चले। इसके सेनापतिको कितनी ही बाधाओंका पता न होनेपर भी वह आगे बढ़नेमें सफल हुआ। इस प्रकार "जिस भूभागमें युरोपीय झगड़ा नहीं देखा गया था, वहाँपर अंग्रेजों-की सैनिक ख्याति फैली।" रास्तेकी सभी कठिनाइयोंको पार करते वह समुद्रके तटपर पहुँचे, और थोड़े समय बाद मराठोंकी ४० हजार सेनापर

नवाबके साथ जो लेन-देन हुआ था, वह घृणास्पद था, लेकिन वह निर्णायक विजय प्राप्त की। इस विजयके बाद ही सिन्धियाके एक बहुत ही महत्वपूर्ण किले ग्वालियरपर अंग्रेजोंने अधिकार कर लिया। सिन्धिया मराठोंका एक बड़ा सरदार था। मराठोंके द्वारा खड़ी की गई कठिनाईको इस तरह खतम कर दिया गया।

इसी बीच एक उससे भी बड़ा खतरा पैदा हो गया। तीस वर्ष पहले एक मामूली मुसलमान सिपाही हैदरअलीने दक्षिणी भारतके युद्धोंमें प्रमुख भाग लिया। यद्यपि वह लिखपढ़ भी नहीं सकता था, लेकिन उसमें अद्भुत क्षमता थी, साथ ही सिपाही और राजनीतिज्ञ दोनोंके सारे गुण मौजूद थे।

मुगल साम्राज्यके छिन्न-भिन्न होनेके समय जो स्वतन्त्र राज्य कायम करनेके लिए दौड़ पड़े थे, उनमेंसे हैदर अली सबसे आगे बढ़ा था। वह अपनी योजनाओंको इतनी सफलताके साथ धीरे-धीरे पूरा करता जा रहा था, कि मैसूरमें उसने एक समृद्ध राज्यका निर्माण किया, जिसका वह स्वयं अधिपति बना। इस समय वह बूढ़ा हो चुका था, लेकिन अब भी उसमें शक्ति और साहसकी कमी नहीं थी। उसके चारों ओर एक जबर्दस्त शक्ति वाली सेना थी। उसका दबदबा इतना बड़ा था, कि जिससे पड़ोसियोंको भारी खतरा पैदा हो गया था। अंग्रेजोंके साथ हैदर अलीका सद्भाव नहीं था। दूसरे देशी शासकोंकी तरह वह भी उन्हें बेजा दखल देनेवाला समझता था और हिन्दुस्तानमें उनके बढ़ाव को ईर्ष्या और क्रोधसे देखता था। १७७८ ई० में उसने अंग्रेजोंके खिलाफ फ्रांसके पक्षमें युद्ध-घोषणा की। मद्रासमें कम्पनीके अधिकारियोंने जबर्दस्त बेपरवाही से काम लिया। परिणामके बारेमें कुछ भी न सोच उन्होंने माहीके फ्रेंच बस्तीके खिलाफ मैसूर के रास्ते सेना भेजी, जिससे हैदर अलीने कुपित हो तुरन्त कार्रवाही करनेका निश्चय किया। तैयारी करके और फ्रेंच सैनिक अफसरोंकी सहायता ले जुलाई १७८० ई० में एकाएक वह ६० हजार सेना ले कर्नाटकके भीतर घुस पड़ा, और सारे देशको बरबाद करके मद्रासकी ओर चला।

मद्रासके अयोग्य गवर्नरने हैदरको उत्तेजित करनेकी बेवकूफी पहले ही कर डाली थी। अब उसने एक और जबर्दस्त गलती की। उसके पास दो डिवीजनमें करीब आठ हजार सेना एक दूसरेसे काफी दूरपर उपस्थित थी। पहले लड़ाईमें प्रवेश करनेमें देर की। तब तक वह इसका निश्चय नहीं कर पाया, जब कि मद्रासके लोगोंने रातके वक्त "पूर्वी आकाशको जलते हुए गाँवोंके विशाल अर्धवृत्तसे लाल नहीं देखा" तब तक हैदरके आगे बढ़नेमें बाधा डालनेकी कोशिश नहीं की गई। और उसके बाद दूसरी गलती यह की गई, कि अंग्रेजी सेनाको सर हेक्टर मोनरो और कर्नल बेलीके अधीन दो भागोंमें बाँट दिया गया। परिणाम भयंकर होना ही था। बेली अपनी २५०० सेना लेकर मोनरोकी सेनासे मिलनेके लिए जब कोशिश कर रहा था, उसी समय हैदरके लड़के टिपू साहेबने उसे बीचमें जा रोका। आगे बढ़नेमें असमर्थ हो बेलीने मोनरोसे प्रार्थना की, कि तुम सारी सेना लेकर मुझसे आ मिलो। ऐसा करनेकी जगह केवल ११०० की पल्टन भेजी गई। अभी वह आकर अपने कार्यमें लगने ही वाले थे, कि हैदर अपनी सेना लेकर आ धमका, और अगले दिन रातके अंधियारेमें अपनी सारी सेनासे उसने बेली और उसके सैनिकोंको घेर लिया। यद्यपि वह भयंकर स्थितिमें थे, लेकिन अंग्रेजोंने हिम्मत नहीं हारी। वह सच्चे वीरकी तरह लड़ते रहे, जब तक कि उनकी संख्या ३०० नहीं रह गई। तब भी उन्होंने मांग की, कि एक बार फिर शत्रुके सामने हमें ले जाया जाय। लेकिन उनकी बहादुरीसे कोई लाभ नहीं हुआ। उनके जीवनका बलिदान देनेके लिए न तैयार हो कर्नल बेली शरण मांगनेके लिए आगे गया। इसी समय हैदरके सिपाही उनके ऊपर पिल पड़े, और उस छोटी सी सेनाके आधे आदमी तलवारके घाट उतार दिये गये, बाकीको बन्दी बना कितने ही सालोंके लिए असहनीय जीवन बितानेके लिए मजबूर किया।

हैदरकी क्रूरताके शिकार जो अभागे उस दिन हुए थे, उनमेंसे एक बहादुर तरुण अफसर जो पीछे अंग्रेजी भारतके इतिहासमें सर डेविडके नामसे प्रसिद्ध हुआ था। उसे भी दूसरों के साथ बन्दी बनाया गया था।

लड़ाईमें वह बुरी तरह घायल हुआ था, तो भी अपने साथियोंके साथ उसे एक कोठरीमें डाल दिया गया। एक दिन सवेरे साढ़े चार सेर भारी कई बेड़ियाँ लेकर बन्दियोंको सुरक्षित तौरसे बांधनेके लिए लाया गया। अभागे अंग्रेज बन्दी बिलकुल असहाय थे, सो एक-एक करके उन्होंने भाग्यके सामने सिर झुकाया। जब बेर्ड की बारी आई, और देखा गया, कि अपने घावसे वह कितना बीमार है, तो उसके एक साथी लफटनेन्ट लूकसने प्रार्थना की, कि उसे छोड़ दिया जाये। जेलरने जवाब दिया, कि मुझे हुक्म दिया गया है, कि हरेक कैदीको बेड़ी पहना दी जाये। इसपर लूकसने कहा— "तो कैप्टन बेर्ड को छोड़ दो, मेरे पैरोंमें दो बेड़ी पहना दो।" जेलर इस असहनीय दृश्यसे परिचित था। उसपर तरुण लूकसकी बातका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने उच्च अधिकारियोंके पास इस बातको कहा, जिसके परिणामस्वरूप कप्तान बेर्ड को बेड़ी नहीं पहननी पड़ी।

जिस समय कर्नल बेलीकी सेना इस तरह नष्ट की जा रही थी, उस समय सर हेक्टर मोनरो, जो वहाँसे दो ही मील दूर तोपके गोलेके मारके भीतर था, ने अपनी तोपोंको एक बड़े तालाब या झील में फेंक दिया, युद्ध सामग्री को नष्ट कर दिया और भयके मारे मद्रास भाग गया।

युद्धके आरम्भ होनेके तीन सप्ताहके भीतर ही यह आफत सिरपर गुजरी जिसके कारण दक्षिणी भारतमें अंग्रेजी राज्य सत्यानाशके पास पहुँच गया यहाँ बहुत थोड़ेसे दुर्गबद्ध स्थान कम्पनीके हाथमें रह गए। कम्पनी की धाक खतम हो गई। इसी समय और भी एक बुरी खबर लगी, कि हैदर-अलीके सहयोग से पांडिचरी पर फिरसे अधिकार प्राप्त करनेके लिए एक भारी फ्रेंच अभियान समुद्रतटपर पहुँच रहा है।

मेकाले लिखता है—"इसी समय हेस्टिंग्सकी एक उर्वर प्रतिभा और अविचल हिम्मतने अत्यन्त महान सफलता प्राप्त की। एक तेज जहाज दक्षिण-पश्चिमी मानसूनसे पहले दौड़ता हुआ इस बुरी खबरको कुछ दिनों में कलकत्ता पहुँचानेमें सफल हुआ। चौबीस घन्टेके भीतर गवर्नर जनरल ने बदली हुई परिस्थितिके लिए एक पूरी योजनाको काममें लगाया। हैदरके

साथ संघर्ष, जीवन और मृत्युका संघर्ष था।" गवर्नर-जेनरलने पहला कदम यह उठाया, कि मद्रासके कामको एक योग्य व्यक्तिके हाथमें दिया। इसके लिए उसने सर आयरकूटको नियुक्त किया, जिसने चौबीस साल पहले पलासीके युद्धमें अपनी योग्यताका परिचय दिया था। उसको निर्देश किया कि उसे अयोग्य गवर्नरका स्थान ले, हैदरके खिलाफ भेजे जानेवाले सैनिक अभियानका संचालन भी अपने हाथमें लेना होगा। इसके बाद हेस्टिंग्सने अपने पुराने दुश्मन मराठोंसे मित्रता की, जिसके द्वारा हैदरको अपने राज्यके एक भागको खतरा पैदा हो गया। इसके बाद बंगालसे हटा देने लायक हरेक सिपाही को मद्रास भेजा गया। बहुत थोड़े समयमें यह तैयारी हो गई। कूटने युद्धके मैदानमें पैर रक्खा, और इस प्रकार कर्नल बेलीको जिस सर्वनाश का सामना करना पड़ा था, उसके बदला लेनेका काम शुरू हुआ।

हैदर अलीके पास इस समय ८० हजारके करीब सेना थी। जिस समय कूटने काम शुरू किया, उस समय हैदरकी सेनायें ब्रिटिश अफसरों द्वारा रक्षा की जाती अनेक छावनियोंको घेरनेमें लगी हुई थीं। इन जगहों मेंसे एकका नाम था वाराडवाश। कूट पहले इसके खिलाफ चला। वहाँ पर एक तरुण अफसरने जबर्दस्त साहसका परिचय दिया। सर आयरकूटके कूच करनेसे कुछ थोड़े ही समय पहले यह मालूम हो गया, कि उक्त अफसरकी छावनी हैदर अलीके सामने आत्म-समर्पण करने जा रही है। उसे देशी अफसरके ऊपर सन्देह था, कि उसने धोखा दिया है? इसपर लेफ्टनेन्ट फिलन्टको सौ अफसरोंके साथ छावनीपर अधिकार करनेके लिए भेजा गया। पास जानेपर उसे खबरदार किया गया, कि यदि वह पीछे नहीं हटता, तो किलेकी तोपें उसकी तरफ कर दी जायेंगी। इसके बावजूद भी वह फाटक तक यह कहते गया, कि मेरे पास नवाबका एक पत्र है, जिसे मुझे किलेके कमाण्डेण्डके हाथमें स्वयं देना है। इसके लिए उसने कुछ आदमियोंके साथ भीतर दाखिल होनेकी प्रार्थना की। इसे इन्कार कर दिया गया। लेकिन उक्त अफसरने फाटक और भीतरी बाड़के बीच चिट्ठी

लेना स्वीकार किया। फ्लिंट केवल चार सिपाहियोंके साथ भीतर गया और वहाँ कमाण्डेण्टको ३० तलवारबन्द अपने वैयक्तिक शरीर-रक्षकों तथा १०६ खड़े सैनिकोंके साथ देखा। वहाँ पहुँचनेके बाद फ्लिंटने तुरन्त कहा कि मेरे पास नवाबका कोई पत्र नहीं है। इसकी जगह मुझे सर आयरकूट की आज्ञा है किलेपर कब्जा करने की। इसपर उक्त अफसरने घृणापूर्वक फ्लिंटसे कहा, कि बिना देर किये तुम चले जाओ। इसपर 'फ्लिन्टने उसका गला पकड़कर यदि बचावके लिए जरा भी प्रयत्न किया, तो तुरन्त मार डालनेकी धमकी दी, बाकी उसके साथके चारों सिपाहियोंने उस अफसरकी छातीकी ओर अपने हथियारोंको लगा दिया। इसी समय बाकी सैनिक भीतर घुस आये, और जिस दिन हैदरको आत्मसमर्पण करना था, उसी दिन वण्डवाश अंग्रेजोंका हो गया। इस दृढ़ तरुण अंग्रेजके जबर्दस्त साहससे प्रभावित होनवाबके सैनिकोंने फ्लिन्टके अधीन काम करना स्वीकार किया, और उसने तुरन्त किलेकी रक्षाके सारे उपाय किये।" दो सप्ताहसे ज्यादा यह गेरिसन बहादुरीके साथ अपनी प्रतिरक्षा करती रही। जब शत्रु किलेके भीतर घुसनेकी कोशिश कर रहे थे, उस समय फ्लिन्ट छापा मार कर उन्हें भगाता रहा। इसके बाद कूटके आनेकी खबर सुनकर उन्होंने मुहासिरे को छोड़ दिया, और उस समय तक फ्लिन्टकी अन्तिम गोला बारूद खतम हो चुकी थी।

इस प्रकार वह स्थान सुरक्षित अंग्रेजोंके हाथमें रह गया, और इसपर अधिकार करने और प्रतिरक्षा करनेमें जो कुछ किया गया था, उसका हैदर पर इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, कि उसने अपनी सेना पास पड़ोससे हटा ली। कूटने तो भी उसका पीछा किया, और काफी देरके बाद कडलूरके पास पोर्टोनोवोमें दोनों सेनायें एक दूसरेसे भिड़ीं। हैदरकी सेना दस गुनी अधिक थी। यह बड़े खतरेका कदम था, लेकिन अंग्रेज अपने अधिक शक्तिशाली हथियारों और सुप्रशिक्षित सेनापर विश्वास कर सकते थे। उस दिन सबेरे "अपने ८०० आदमियों के साथ मैसूरकी असंख्य सेनासे ऐसे कौशल और दृढ़ साहसके साथ तजर्बेकार आग्नेय बहादुरने मुकाबिला

शुरु किया, कि उसके सामने कोई ठहर न सका। कई घंटेकी सख्त लड़ाईके बाद अपने दस हजार अनुयायियोंको खोकर हैदरअली युद्धक्षेत्र से भागा। कूटको केवल तीन सौका नुकसान उठाना पड़ा था।

इस दिनकी एक घटना बड़ी दिलचस्पीकी है। जब लड़ाई हो रही थी, उसी समय बहादुर ७३ हाइलैंडर प्रथम पंक्तिके दाहिने पक्षमें स्थित थे, जिस पांति ने सारे आक्रमणकी अगुवाई की थी। इस समय कूटका ध्यान एक बाजा बजानेवालेकी ओर विशेष तौरसे आकर्षित हुआ, जब पथरकला छूटनेकी आवाज असाधारण होती थी, तो वह बराबर एक ऊंचे टोन में बजाता था। कूट उस आदमी के साहस से इतना प्रसन्न हुआ, कि वह घोड़ा दौड़ाते उसके पास जा बोला—"बहुत अच्छा, मेरे बहादुर। तुम्हें इसकी जगह चांदीका पाइप बजाने को मिलेगा।"

कूट अपने वचन को नहीं भूला।

इस प्रहारसे हैदर अली फिर ठीक नहीं हो सका। उसी साल बादमें उसने फिर अंग्रेजोंसे भुगतनेकी कोशिश की, लेकिन फिर उसे हार खानी पड़ी। अपने सारे प्रयत्नोंमें विफल होने के बाद इसी समय उसने कहा था—"अनेकों बेलियोंकी पराजय भी अंग्रेजोंको चूर्ण करनेमें सफल नहीं होगी। मैं उनके साधनोंको स्थलमें शायद नष्ट कर सकूं, पर समुद्रको नहीं सुखा सकता। ऐसी लड़ाईसे मैं खतम हो जाऊंगा, जिसमें लड़कर मुझे कुछ मिलना नहीं है।" तो भी अंग्रेजोंकी कठिनाइयाँ खतम नहीं हुई। अगले साल हैदर अली मर गया, और उसका लड़का टिपू गद्दी पर बैठ गया। फ्रांसीसियोंकी सहायता प्राप्त कर उसने बड़े जोरके साथ लड़ाईको जारी रक्खा। तो भी लड़ाई कुछ ही सालों तक जारी रह सकी, जैसे कि हम देखेंगे।

यह बड़ी भयंकर स्थिति थी, जिससे कि अंग्रेजोंका शासन भारतमें उस समय गुजर रहा था। यद्यपि सावधानीके साथ राज्य की नैया खेई गई थी, लेकिन हेस्टिंग्सका काम अभी पूरा नहीं हुआ था। गवर्नर-जेनरल

के तौर पर उसने जो किया, हमें उनमेंसे सिर्फ एकके बारेमें यहां संक्षेपमें कहना है।

लड़ाई के कारण वित्तीय कठिनाईं पैदा हुई थी, जिसका परिणाम यह घटना हुई। खर्च इतना बढ़ गया, कि उसके इन्तिजाम करनेकी सम्भावना नहीं मालूम होती थी। गवर्नर-जेनरलको उसके लिये कोई नया स्रोत ढूँढ़ना था। और कोई उपाय न देखकर उसने बनारसके राजा चेतसिंहसे एक भारी रकम ऐंठनेका निश्चय किया। चेतसिंह कुछ समयसे कम्पनीके संरक्षणमें था, इस शर्तसे कि वह वार्षिक भेंट दिया करेगा। लेकिन हालमें उसने उससे बचनेकी कोशिश की। हेस्टिंग्सने बकायेके साथ-साथ एक भारी रकम जुर्मानेमें मांगी। चेतसिंहने इन्कार किया। हेस्टिंग्स से स्वयं बनारस जा उसे गिरफ्तार किया। इस कार्रवाईसे नगरमें बलवा हो गया, और हेस्टिंग्सके साथ गई देशी सिपाहियोंकी दो कम्पनियोंको मार डाला गया। वह खुद भी सिर्फ पचास आदमियोंके साथ एक मकान में घिर गया, चारों ओर हजारों क्रोधसे भरे लोगोंने उसे घेर लिया। राजा स्वयं इमारतसे गंगामें कूदकर नाव पर चढ़ दूसरी तरफ अपने लोगोंसे जा मिला।

हेस्टिंग्स सर्वनाशसे घिरा हुआ था लेकिन उसने अत्यन्त असाधारण हिम्मतसे काम लिया। उसने सहायताके लिये एक नई सूझ निकाली। उसके आदमियोंमें कुछ देशी सिपाही भी थे। उन्होंने लोगोंके बीचसे होते अंग्रेजी छावनीमें जानेका काम हाथमें लिया। हिंदुस्तानियोंमें रवाज है, एक बड़े कुंडलके पहननेका। लेकिन यात्रामें सुरक्षाके ख्यालसे वह उसे उतार लेते हैं, और उसकी जगहपर कागजको गोल करके डालदेते हैं जिसमें कि छेद मुंदने न पाये। हेस्टिंग्सने बहुत छोटे-छोटे अक्षरोंमें पत्र लिखकर कानमें डाल दिया, जिनमें छावनीमें स्थित अंग्रेज अफसरोंको सारी घटनाका पूरा विवरण दिया गया था। ठीक समयपर चेतसिंहके खिलाफ एक सेना गई। उसकी सेना पराजित हुई। हेस्टिंग्सने चेतसिंहको गद्दीसे उतार दिया, और उसका राज्य अंग्रेजी भूभागमें मिला दिया गया।

(बनारसका राज्य सारा अपने राज्यमें मिलानेपर भी अंग्रेजोंने उस राजवंशके नातोंको कितना ही इलाका जमींदारीके तौरपर दे दिया, जो १९१२ ई० में बनारसकी रियासत बना दी गई और हालमें ही स्वतन्त्र भारतमें और रियासतोंकी तरह विलीन हो गई।)

चेतसिंहके ऊपर इस प्रहार और उसके बाद अवधके नवाबको मजबूर करके अपनी मांके धनको छिनवाकर हेस्टिंग्सने जो भारी रकम वसूल की थी, उसके कारण भारत और इंगलैण्डमें उसके खिलाफ भारी विरोधी भाव प्रकट हुये। उसने यह सब कुछ यही जानकार किया था, कि मैंने इसे कम्पनीके हितके लिये किया है, अपने निजी स्वार्थके लिये नहीं। इसलिये उसे इस विरोधसे बड़ा क्षोभ हुआ। चारों ओरसे उसके साथ जिस तरह दुर्भाव और दुर्वर्ताव किया जा रहा था, इसी कारण वह अपने पदसे इस्तीफा देकर देश लौट गया।

१७८५ ई० तक भारतमें शान्ति स्थापित हो गई, और जो सुप्रबन्ध उसने किया था, उसका फल दिखाई देने लगा। हेस्टिंग्सकी योजना अनुसार शासन-व्यवस्था एक दृढ़ आधार पर स्थापित कर दी गई। उसके साहस और प्रतिभाके कारण भारतमें अंग्रेजोंका राज्य नष्ट होनेसे बचा ही नहीं लिया गया, बल्कि शत्रुओंकी आक्रमण करनेवाली सेनायें भगा दी गईं। फ्रांसीसियोंको अपने पैर जमानेका मौका नहीं दिया गया। भारी भूभागकी कम्पनीके राज्यमें वृद्धि हुई। सुव्यवस्थाके करण देशके लोगोंका विश्वास अंग्रेजीके शासनमें बढ़ा। सारे देशमें अंग्रेजोंके प्रताप और शक्तिसे लोग डरने लगे।

लेकिन, इंगलैण्ड लौटनेपर इस महान् राजनैतिज्ञके स्वागतके लिये माला लेकर प्रतीक्षा नहीं हो रही थी। उसकी क्लाइवकी तरह हेस्टिंग्सके खिलाफ भी भारी दुर्भाव फैला हुआ था, और उसे गवर्नर-जनरलके तौरपर अनेक कार्यवाइयोंके लिये जवाबदेह बनाया, जवाब देनेके लिये मजबूर किया गया। जहाजसे उतरते अभी बहुत देर नहीं हुई थी, कि लार्ड भवनने उसपर समन जारी किया, और बीससे अधिक दुष्कर्मोंके लिए उसपर मुकदमा

चलाया। उसके शत्रु इतनी तत्परताके साथ उसे दण्डित करनेपर तुले हुये थे, कि नौ वर्ष तक मुकदमा जारी रहा। यद्यपि उसे पूरी तौरसे अपराधोंसे मुक्त कर दिया गया, लेकिन मुकदमेमें जो खर्च हुआ, उससे करीब-करीब उसकी सारी सम्पत्ति खत्म हो गई। उसे न कोई सन्मान दिया गया, और न क्षति-पूर्ति ही। सिर्फ ईस्ट इंडिया कम्पनीकी थोड़ी सी पेन्शन थी।

अच्छे दिनोंमें पैसा हाथमें आनेपर हेस्टिंग्सने अपने पूर्वजोंकी जायदाद डेलसफोर्डको अपने बचपनके स्वप्नको पूरा करते हुए खरीद लिया था। अब वहीं अपना अन्तिम समय बितानेके लिए चला गया। २२ साल वहाँ रहते हुये २२ अगस्त १८१८ ई० को वहीं उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

# ३—लार्ड कर्नवालिस (१७३८-१८०५ ई०)

खतरेकी भयंकर आँधियोंके समय वारन हेस्टिंग्सने हिंदुस्तानमें अंग्रेजी राज्यकी रक्षा की थी। लेकिन, जिस अंग्रेज जेनरलने वर्जीनियाके यार्कटौन में अपनी सारी सेनाके साथ—कलकी अंग्रेजी प्रजा—अमेरिकनोंके सामने आत्म-समर्पण किया था, उसे हेस्टिंग्सका स्थान दिया गया। शायद उससे अधिक अच्छा गवर्नर जेनरल नहीं नियुक्त कियाजा सकता था। एक सिपाही के तौरपर जो सफलतायें उसने प्राप्त कीं, और अपनी सूझसे जो सुधारका काम किया, उनसे उसने साबित कर दिया, कि क्लाइव और हेस्टिंग्सके शुरू किये हुए कामको आगे ले जानेके लिए वह बहुत योग्य था।

लार्ड कर्नवालिसके पहलेकी जीवन घटनायें संक्षेपमें इस प्रकार हैं। वह सफोकके एक पुराने परिवारमें १६३८ ई० की अन्तिम तिथिको पैदा हुआ। आरम्भिक जीवनके बारेमें इसके सिवा और कुछ मालूम नहीं है, कि ईटनके स्कूलमें शिक्षा पाई और १८ वर्षकी उमरमें सेनामें दाखिल हुआ। उसे बाहर यूरोप जानेकी इजाजत मिली, जहाँ कि तूरिनकी प्रसिद्ध सैनिक अकदमीमें अध्ययन शुरू किया। लेकिन बहुत देर नहीं हुई, लड़ाई छिड़ गई, और वेस्टफालिया जर्मनीमें वस अंग्रेजी कैम्प में शामिल हो आगे होनेवाले भारी युद्धमें मारकुइस ग्रेनबीके शरीर-रक्षकके तौरपर काम किया। बापके मरनेके बाद १७६२ ई० में वह अर्ल कर्नवासिल बना। १७६६ ई० में वह कर्नलके दर्जेपर पहुँचा। १७७६ ई० में लन्दन टावर का कान्सटेबल नियुक्त किया गया। यद्यपि अमेरिकाके साथ लड़ाई करनेके वह विरुद्ध था, तो भी १७७६ ई० में स्थानीय लेफ्टनेन्ट-जेनरलके तौरपर वह वहाँ गया। दक्षिणी करोलिनाकी अंग्रेजी सेनाका संचालन करते हुए अपनेसे कहीं अधिक सेनाके मुकाबिलेमें १७८० और १७८१ ई० में उसने विजय प्राप्त की। लेकिन १७८१ ई० में ही अमेरिकन सेना और फ्रेंच

जहाजों बेड़ेने यार्कटौनमें उसे घेर लिया। उसने जबर्दस्त प्रतिरोध किया, लेकिन अन्तमें अपनी सेनाके साथ आत्म समर्पण करना पड़ा।

यह स्वाभाविक ही था कि अंग्रेजी सेनाको जिस सत्यानाशका सामना अमेरिकामें करना पड़ा, उससे इंगलैण्ड में भारी असन्तोष फैला हुआ था। कितने ही इसके लिए इस अभागे जेनरलकी निन्दा करना चाहते थे। लेकिन जिन परिस्थितियों में कार्नवालिसने आत्म-समर्पण किया था, उसको देखते हुए उस पर दोष देते कुछ गर्मागरम बहस हुई किन्तु कोई खिलाफ कार्यवाई नहीं की गई। कार्नवालिस बहुत पक्का आदमी था। एक सैनिक के ऊँचे गुण और उसका ज्ञान उसमें थे जिसके कारण सरकारका विश्वास उस पर बना रहा, और राजाका वह बड़ा कृपापात्र रहा।

अगले कुछ वर्षों तक बहुत जोर देनेपर भी कार्नवालिसने किसी नई नियुक्तिको स्वीकार नहीं किया। तो बार-बार किसी जवाबदेह पदके लिये उसपर जोर दिया गया, और यह समझा गया, कि इस समय हिन्दुस्तानमें उसकी सेवाओंकी बड़ी जरूरत थी। एकबार उसे भारतमें अंग्रेजी सेनाके मुख्य सेनापतिका पद दिया गया। लेकिन जिन रुकावटोंके साथ इस पदपर काम करना था, उसे न पसन्द कर उसने इन्कार कर दिया। तब गवर्नर-जनरल के पदको संभालने के लिये कहा गया। इसपर उसने कहा, कि इसका क्या मतलब होगा, मैं सिपाही के तौरपर अपने देशमें नहीं, बल्कि दूसरी जगह काम करने जाऊँगा। बात यहीं तक रह गई।

१७८६ ई० में, वारेन् हेस्टिंग्सके देश लौटनेके बाद गवर्नर-जनरलका पद खाली हो गया—जिसपर अस्थायी तौरसे सर जान मैकफर्सन काम कर रहा था—उस वक्त अंग्रेज सरकार ने सोचा, कि इस पदपर उच्च नैतिक-बलवाले बहुत तजुर्बेकार योग्य आदमी को नियुक्त किया जाये।—इससे एक सालसे कुछ अधिक पहले पार्लियामेंटने पिटके इंडिया-कानूनको पासकर दिया था, जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासन करनेके बहुत से अधिकार राजाके हाथमें स्थानान्तरित कर दिये गये। इस कानूनके अनुसार लन्दनमें एक नियंत्रक-बोर्डके स्थापित करनेका निश्चय किया गया था,

जिसके कामोंमें भारतके असैनिक और सैनिक प्रशासन तथा आय-सम्बन्धी कार्यवाइयोंका नियंत्रण और नियमन करनेका काम था। हिन्दुस्तानमें सर्वोच्च अफसरोंकी नियुक्तिको मनसूख करनेका अंग्रेज सरकारको अधिकार था। कम्पनी तो भी अपने कारबार का पूरा प्रबन्ध कर सकती थी, और अपने मनकी रियायतें दे सकती थी। लार्ड कार्नवालिसको फिर इस पदको स्वीकार करनेके लिये कहा गया। अन्तमें अपनी इच्छा और हृदयकी पीड़ा के विरुद्ध भी उसने इसे इस शर्तपर स्वीकार किया, कि इंडिया-बिलमें जो अधिकार दिये गये हैं, उससे भी अधिक अधिकार मुझे मिलें। उसने इच्छा प्रकट करते हुये कहा—सर्वोच्च असैनिक और सैनिक दोनों अधिकार मेरे अपने हाथोंमें होने चाहिये।" उसने देखा था, कि कौंसिलमें ईर्ष्यालु विरोधियोंने किस प्रकार हेस्टिंग्सके रास्तेमें रोड़ा अटकाया था। "उससे मुझे वास्तविक अख्तियार नहीं रहेगा, इसलिये पद स्वीकार करनेके लिये एक आवश्यक शर्त यह है, कि कौंसिलके बहुमतके विरोध पर भी मुझे अपनी जिम्मेवारी पर बड़े अवसरों पर काम करनेका अधिकार रहे। ये शर्तें स्वीकार कर ली गईं, और १७८६ ई० में भारतके गवर्नर-जनरल और मुख्य सेनापतिके रूपमें उसने इंगलैण्ड से प्रस्थान किया।

वारन हेस्टिंग्सने भारतके भीतरी शासनमें कितनी ही नई व्यवस्थायें और सुधार किये थे, लेकिन अब भी उसमें सुधारनेके लिये जगह थी। भारतमें उतरनेके साथ ही लार्ड कार्नवालिसने वास्तविक स्थितिसे परिचय प्राप्त करनेमें देर नहीं की। उसने जल्दी ही देख लिया, कि कम्पनीके अफसरोंके देशियोंको हानि पहुँचाकर स्वयं धनी बननेके बहुतसे तरीके अब भी मौजूद हैं, या दूसरे ढंगसे। वह बड़ी तत्परताके साथ उसके ठीक करनेमें लग गया। उसने हर तरहकी जालसाजीको ढूंढ़ निकालनेका प्रयत्न किया। जहां भी उसने कम्पनीकी नौकरियोंको शुद्ध करनेके लिये नये कायदोंके बनानेकी आवश्यकता समझी, वहां उसने वैसा ही किया। उसने भारतके शासनके लिये बहुत से सुधार किये। लार्ड कार्नवालिसने जबसे सरकारकी बागडोर अपने हाथमें ली, तबसे वह शासन-व्यवस्थाको इतना

ऊँचा उठाना गया, जितना उससे पहले वह कभी नहीं थी, और जिसके बाद भी उसे कायम रक्खा गया।

अपने शासनके पहले तीन वर्ष लार्ड कार्नवालिसने इन कामोंमें बिताये। क्लाइव और हेस्टिंग्सके जमानेमें जो देशी शासकोंके साथ अक्सर छेड़-छाड़ होती रहती थी। वह इस समय बहुत कुछ बन्द रही। कार्नवालिस जैसे सैनिक कैम्पके आदमीके लिये यह जीवन अनाकर्षक सा था। १७८६ ई० में ईटनमें पढ़ने वाले अपने लड़केको उसने लिखा भी था—"कलकत्तामें मेरा जीवन पूरा घड़ीकी तरह चल रहा है, जैसे ही सूरजकी किरणें क्षिति-जके ऊपर आने लगती हैं, मैं घोड़ेपर सवार हो उसी सड़कपर और उतनी दूर तक चलता हूं। लौटनेके बाद बाकी पूर्वाह्न समयको सूर्यास्तके पहले तक ठीक उसी तरहके काममें लगा रहता हूं। फिर दो घंटे तक पढ़ता, चिट्ठियाँ लिखता या अखबार देखता हूं। नौ बजे अपने परिवार तथा दो या तीन अफसरोंके साथ कुछ फल और एक बिस्कुट ले मेजपर बैठ जाता हूं। जैसे ही घड़ी दस बजाती है, मैं चारपाईपर पड़ जाता हूं।

लेकिन यह अकर्मण्यता उसी तरहकी थी, जैसी किसी तूफानके पहले शान्ति मालूम होती है। तुरन्त ही जुझाऊ बाजे बजने लगे, और युद्धकी पुकार हुई। मैसूर सुल्तानके नामसे अपनेको स्थापित करनेवाला टीपू, जिसके साथ १७८४ ई० में सुलह हुई थी, एक ऐसे महायुद्धका कारण हुआ जिसमें महान अंग्रेजोंकी ताकतकी जबर्दस्त परीक्षा हुई।

अंग्रेजोंके प्रति जबरदस्त घृणा टीपूने अपने बापसे पाई थी। हैदरअली क्रूर था, लेकिन उसका लड़का इसमें और भी आगे बढ़ा था। उसके स्व-भावका पता उसके नामसे मालूम होता है टीपूका अर्थ है बाघ। वह कहा करता था—'भेड़की तरह दो सौ वर्ष जीनेसे बाघकी तरह दो दिनका जीना मुझे पसन्द है। उसके बर्बर स्वभावका पता उसके एक विचित्र यांत्रिक खिलौनेसे मालूम होगा, जो कि अब भी लन्दनमें देखा जा सकता है, और जिसे उसके महलमें पाया गया, जिसे "बाघबाजा" कहते थे। सोने और हीरे मोतीका बना एक बाघ एक पड़े हुये आदमीके ऊपर खड़ा दिखलाया

गया। पड़े हुये आदमीका चेहरा और पोशाक एक अंग्रेज सैनिक की थी। एक पुर्जेसे मूर्तियोंको हटा दिया जाता, फिर एक हत्था घुमाकर बाजेको बजाया जाता, जिससे जंगली जन्तुके गुर्रानेके साथ-साथ अभागे आदमीके चिल्लानेकी आवाज निकलती।

विंडसर कैसलमें इस वक्त सुरक्षित टीपूके सिंहासनके पैर भी बिलौंगके आंखों और दांतों तथा सोनेके सिरवाले बाघकी शकलकी थे।

जबसे अंग्रेजोंके साथ सुलह हुई थी तभीसे टीपू अंग्रेजोंके साथ जबर्दस्त गुस्ताखी दिखलाता रहा, और बार-बार उसने खुलेआम प्रतिज्ञा की कि मैं उन्हें देशसे निकाल बाहर करूँगा। लेकिन वह तब भी काफी होशियार था, कि तब तक अपनेको रोक रक्खे, जब तक कि उसकी सम्पत्ति काफी न जमा हो जाये, और कोई ठीक बहाना न मिले। पांच साल बीतने के बाद उसने अनुभव किया, कि अब ठीक समय आ गया है। कार्नवालिस कितने ही देशी राजाओंके साथ समझौता करनेका प्रस्ताव कर रहा था, जिसके खतरेको देखकर टीपूके लिये और रुकना मुश्किल हो गया, उन्हें उसने अपने विरुद्ध समझा, इसलिये लड़ाईका निश्चय कर लिया।

मालाबारके समुद्रतट पर ट्रावनकोरका राज्य कितने ही वर्षोंसे अंग्रेजों के संरक्षणमें था। अंग्रेज उक्त राजाका पक्ष लेनेके लिये बाध्य थे। टीपू देर से इस रियासतको हड़पना चाहता था। उसने दो कस्बे वहाँ खरीदे थे, जिन्हें राजाने देनेसे इन्कार कर दिया। मैसूर-सुलतानने उसपर दावा करते हुये सेना जमाकर एकाएक ट्रावनकोर पर धावा बोल दिया। राजाने बहादुरीके साथ मुकाबिला किया, और दो हजार आदमियोंका नुकसान उठाकर टीपूको हटना पड़ा।

अपनी दोस्त रियासतके ऊपर टीपूके आक्रमणका मतलब था, स्वयं अंग्रेजोंके खिलाफ युद्ध घोषणा करना। हैदराबादका निजाम तथा मराठे भी टीपूसे घृणा करते थे। कार्नवालिसने जब उनके सामने मैत्रीका प्रस्ताव रखा, तो उन्होंने खुशीसे उसे स्वीकार कर लिया। तीनों मित्रराज्योंमें यह

समझौता हुआ, कि चाहे कोई सेना कितने भी अधिक भूभागपर कब्जा करे, सबको बराबर बांटा जाये।

पहले अंग्रेजी सेनाका संचालन जेनरल मेडोजके हाथमें था। उसने बड़ी चतुराईसे अपना काम किया, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। इस-पर लार्ड कार्नवालिसने स्वयं सेनाका संचालन करनेका निश्चय किया। लड़ाई अब घमासान शुरू हुई। देशी और अंग्रेजी दोनों ही सेनायें अपने भाइयोंके प्रति जो पाशविक अत्याचार हुआ था। उसका बदला लेनेके लिये अधीर हो उठीं। बड़ी तेजीसे आगे बढ़ता हुआ कार्नवालिस बंगलोरकी ओर बढ़ते गया। मामूली विरोधके बाद यह महत्वपूर्ण सैनिक स्थान अंग्रेजोंके हाथमें चला आया। इसपर टीपू सुलतान ७० मील पर स्थित अपनी राजधानी श्री रंगापत्तममें गया। अंग्रेजोंके मित्र अभी भी पूरे दिल से काममें नहीं लगे थे। वह देखना चाहते थे, कि भाग्य किधर पलटा खा रहा है। इसके कारण बंगलोरसे आगे बढ़नेमें कुछ देरी हुई। लेकिन तुरन्त ही कार्नवालिसने टीपूके राज्यके गर्भमें घुसकर उसका पीछा किया। मित्रों की सेनायें भी थोड़ी देरमें श्री रंगपत्तमके पास पहुँची। टीपू स्वयं राजधानी की प्रतिरक्षाका संचालन कर रहा था। टीपूने आक्रमणकारियोंके खिलाफ प्रहार किया। भारी लड़ाई हुई, जिसमें उसके विरोधी सफल हुए और टीपूको राजधानीमें किलाबन्द होना पड़ा।

लेकिन, यह सफलता थोड़ी देरके लिये चिन्तामें बदल गई। भोजनके अभावमें कई सप्ताहसे मित्रसेनायें कष्ट पा रहीं थीं। अब पता लगा, कि रसद खतम हो गई। इसी समय टीपूकी राजधानीके पासकी नदीमें बाढ़ आ गई। शत्रुके सवारोंने खानेकी रसदको पहुँचनेसे रोक दिया। मित्रसैनिक अब करीब करीब भूखे मरनेके लिये मजबूर हो गये। किलेबन्दीको हमला करके तोड़नेका प्रयत्न बेकार था। यद्यपि यह बड़ा कड़वा घूँट था, लेकिन पीछेकी ओर जल्दीसे लौटनेके सिवा और कोई रास्ता नहीं था। आक्र-मणकारी सेनायें पीछे को लौटीं। अंग्रेजी इलाकेमें पहुँचनेसे पहले ही बहुत से बहादुर सैनिक भूखके मारे गिरकर मर गये। अंग्रेजोंके भारतमें अंग्रेजी

इतिहासकी यह सबसे जबरदस्त दुस्सह घटनाओं में है। इतनी भयंकर असफलताके बाद भी कार्नवालिस ऐसा आदमी नहीं था, कि उसका उत्साह मन्द हो जाता।

इस बीच टीपू अंग्रेजोंके खिलाफ आग बबूला हो भारतसे बाहर सहायकोंके ढूंढनेकी कोशिश कर रहा था। उसकी मिथ्याभिमान और हठ-धर्मी ऐसी थी, कि वह अपनेको मुहम्मदका प्यारा सेवक समझता था, और विश्वास रखता था, कि हिन्दुस्तानसे काफिरोंको निकाल बाहर करनेके लिए मैं आया हूं। उसने अपने दूत कुस्तुनतुनियामें सुल्तानके पास भेजे, लेकिन वे सभी आदमी रास्तेमें प्लेगसे मर गये। फिर उसने एक दूत-मण्डल फ्रांसके राजा सोलहवें लुईके पास भेजकर उससे ६ हजार सबसे अच्छी सेना माँगी, और वचन दिया कि मैं ऐसी सहायतासे अंग्रेजोंका चूर्ण कर दूँगा। लुईके मन्त्रियोंने दूत-मण्डलका अच्छा स्वागत किया, और एक समय समझा गया, कि सेना भेज दी जायेगी लेकिन, लुई अपने सलाहकारोंसे ज्यादा सावधानी रखना चाहता था। उसने स्वीकृति नहीं दी।

फ्रांसमें इस दूत-मण्डलके सम्बन्धमें एक मनोरंजक घटना हुई बतलाई जाती है। अपने दूत मण्डलके हाथों टीपूने राजा लुई और उसकी रानीको कितनी ही भेंटें भेजी थी, लेकिन उनमें उसने बड़ी कंजूसीसे काम लिया था। राजाके लिये कुछ सोनेकी गाज, सोनेके काम किये हुये कुछ लाल रेशम, कुछ ईरानी जो कुछ सादे और कुछ छपे थे। खराब हीरोंका एक आभूषण राजाकी भेंट थी। रानीको भेंटमें पूरी न भरी तीन अतरकी बोतलें कुछ सुगन्धित और चूर्ण था।

जब टीपूकी ये भेंटें सामने रक्खी गईं, तो लुई हंसते हुये बोल उठा—"हम इस सबको, क्या करें। ये गुड़िया सजानेके ही योग्य मालूम होती हैं, लेकिन तुम्हारे पास छोटी लड़कियां हैं। वह शायद इन्हें पाकर खुश होंगी। इस सबको उन्हें दे दो।

"लेकिन हीरे स्वामी?" अफसरोंने कहा।

"ओह, वह बड़े चोखे हैं।" राजाने व्यंग करते हुये कहा।

"शायद तुम उन्हें राजकीय जवाहिरोंमें रखना चाहते होगे ? लेकिन तुम उन्हें भी ले जा सकते हो, यदि पसन्द आये, तो अपने हैटमें पहनना।

अन्तमें रानीने गुलाबकी एक बोतल स्वीकार की और लुईने कुछ बढ़िया मलमल।

मद्रास लौटनेके बाद कार्नवालिसने टीपूकी राजधानीपर दूसरे आक्रमणकी तैयारी शुरू कर दी। एक बड़ी सेना संगठित करके कुछ और तैयारियोंके बाद ८६ तोपों और २२ सैनिकोंके साथ उसने मैदान लिया। ये सेना देखनेमें प्रभावशाली थी, कि टीपूके मुंहसे निकला—

"अंग्रेजोंके जो साधन मैं देखता हूं, उनसे मैं नहीं डरता। मैं डरता उनसे हूं, जिन्हें मैं नहीं देखता।" निजाम और मराठोंके आ मिलनेके बाद ५ फर्वरी १७६२ ई० को कार्नवालिसकी सेना ऐसे स्थानपर पहुँची, जहांसे श्रीरंगापत्तमके मीनार और किलेकी दीवारें दिखाई पड़ती थीं। टीपूकी ५६ हजार सेना एक बड़े ही अल्प स्थानपर छावनी डाले पड़ी थी, जिसकी रक्षा तीन प्रतिरक्षा पंक्तियों द्वारा की गई थी। उनके पास तीन सौ तीन तोपें थीं। कैम्पके चारों ओर नागफनीके कांटोंकी ऐसी बाढ़ थी, जिसके भीतर घुसना आदमी या जानवरके लिये बिलकुल असम्भव था।

कार्नवालिसने जरा भी समय बर्बाद नहीं किया, और उसने तुरन्त मजबूत कदम उठानेका निश्चय किया। वहां पहुँचनेके बाद अगले सबेरे ही हुकुम निकाला, कि रातको चारों ओरसे हमला शुरू करना। इस कार्रवाईके आरम्भ करनेके लिये रातके नौ बजेका समय निश्चित किया गया। प्रहार करनेवाली सेनाके साथ तोप नहीं जायेगी, और न उसे तम्बू गाड़ने होंगे। कार्नवालिसकी योजना थी, कि टीपू पर एकाएक प्रहार करना चाहिये, और हो सके तो बिना गोली दागे ही उसके कैम्प और जिस किले की मोर्चाबन्दीको वह बना रहा है, उसपर कब्जा कर लिया जाये। इस सेनाके बिचले भागका संचालन करते हुये कार्नवालिसने स्वयं चलनेका

निश्चय किया। इसे अंग्रेजोंके मित्र जेनरलोंने अच्छा नहीं समझा। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब सुना कि गवर्नर-जेनरल और मुख्य सेनापति स्वयं एक साधारण कप्तानके तौरपर लड़नेवाली पार्टीके साथ जा रहे हैं।

रात आई, चुपचाप संकेत दिया गया। चांदकी चांदनीमें सारी योजना जल्दी जल्दी कार्यरूपमें परिणत की गई। तुरन्त ही आक्रमणकारी सोये हुये शत्रुओंके कैम्पके मध्यमें पहुंच गये। वहां सेनाको तीन पांतियोंमें बांट दिया गया। अब रातका वास्तविक काम शुरू हुआ, और देर नहीं हुई काम पूरा हो गया। जब सूर्योदय हुआ, तो यद्यपि अभी भी भारी लड़ाई करनी बाकी थी, जिसमें कार्नवालिसने मुख्य तौरसे भाग लिया। किन्तु टीपूकी मोर्चाबन्दीपर इससे पहिलेही अधिकार हो गया। एक बड़ी सेना राजधानीके पास जम गई। सुलतानने पहले सन्देह और पीछे चिन्ताके साथ जब अंग्रेजी पैदल-सेनाकी एक बड़ी पांतिको सुनसान रातमें कैम्पके मध्यकी ओर बढ़ते देखा, तो वह जाकर किलाबन्द हो गया। अब घमासान लड़ाई शुरू हुई। लेकिन, शत्रुओंने जिन स्थानोंपर पैर जमा लिया था, वहांसे उन्हें हटाना बेकार हुआ। शाम होनेसे पहले सुलतानकी ८० तोपें हाथसे जाती रहीं, ४००० सैनिक हताहत हुये, और १००० भाग गये या बन्दी बने। बाकी बची सेना अपने सुलतानके साथ किलेके भीतर शरण लेनेके लिये मजबूर हुई। अंग्रेजी सेनामें हताहतोंकी संख्या ५५० से अधिक नहीं थी। कार्नवालिसके सौभाग्यसे इसी वक्त छः हजार हाइलेंडर गोरों और सिपाहियोंके साथ बम्बईसे तेजीसे आकर जेनरल राबर्ट अबेरकोम्बी आ मिला।

अब निश्चय किया गया, कि श्रीरंगपत्तमपर घेरा डाला जाये, और इसके लिये तैयारी की गई। टीपू इस भयानक क्षतिसे भयभीत और निराश होकर अनुभव करने लगा, कि राजधानीको घेरकर पड़ी इस सेनासे मुकाबिला करनेका कोई रास्ता नहीं है। उसने अधीनता स्वीकार करनेका रुख प्रकट किया।

तो भी अभी उसके क्रूर हृदयमें गुस्सा भरा हुआ था। उसने एक और चाल चलनी चाही, जिससे उसे आशा थी, कि मेरी कठनाइयां दूर

हो जायेंगी। उसने सोचा, कि अगर कमाण्डर-इन-चीफको हटा दिया जाये, तो अंग्रेज और उनके साथी निराश होकर हट जायेंगे। उसने लार्ड कार्नवालिसकी हत्या करनेका निश्चय किया। उसने अपने कुछ अनुयायियोंको बुलाकर उन्हें प्रलोभन देकर इस कामके लिये प्रेरित किया। उन्होंने ऐसी पोशाक पहनी, जिससे वह अंग्रेजोंके मित्रोंके सैनिक जान पड़े। वह अंग्रेजी कैम्पकी ओर बढ़े। टीपूने अपनी योजनाकी सफलतामें इतना उतावलापन दिखलाया, कि उसने अपने आदमियोंको पिलाकर मतवाला कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि उन्होंने ऐसी चेष्टा दिखलाई, जिससे उनका भाव खुल गया। और जब कुछ सिपाही भेजे गये तो वह डरके मारे वहांसे भाग गये।

इसमें असफल होनेके बाद टीपूने कार्नवालिसको दूत भेजकर कहा, कि मैं अधीनता स्वीकार कर सुलहके लिये तैयार हूं। उसकी प्रार्थना स्वीकार की गई, यद्यपि बहुत ही सख्त शर्तोंके साथ—१. टीपू अपने राज्यका आधा मित्रशक्तियोंके हाथमें देगा, २. वह ३ करोड़ ३० लाख रुपया—३३ लाख पौंड-रकम देगा,... ३. वह सारे युद्ध-बन्दियोंको छोड़ देगा और ४. सुलहकी शर्तोंको ठीक तौरसे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिये जमानतके तौरपर उसके दो बेटे अंग्रेजोंके हाथमें देने होंगे।

अभिमानी सुल्तानके लिये ये शर्तें बड़ी सख्त थी, लेकिन उसने उन्हें स्वीकार किया। २६ फर्वरीको जमानतमें दिये तरुण शाहजादे, बहुत अच्छी तरहसे सजे हाथीपर चढ़े तथा बहुसंख्यक सेवकोंके साथ किलेसे निकल कार्नवालिसके कैम्पकी तरफ चले।

दृश्य बड़ा ही करुणाजनक था। जब जुलूस द्वारके बाहर हुआ, तो किलेकी तोपोंने सलामी दागी। इसके बाद अंग्रेजी तोपें भी कई बार दागी गईं। जब वह अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच गये, तो बड़ी इज्जत के साथ उनका स्वागत किया गया। लार्ड कार्नवालिसने स्वयं आगे बढ़कर उन्हें छातीसे लगाया, प्रत्येकका हाथ पकड़कर अपने तम्बूमें ले गया। बड़ा लड़का अब्दुल खालिक सिर्फ दस वर्षका था, और छोटा मुईजुद्दीन करीब

आठ वर्षका था। ये बड़ा दिलचस्प दृश्य था। ये छोटे-छोटे लड़के सफेद मलमलकी पोशाक अचकन पहने मोतियोंसे अलंकृत लाल पगड़ी बांधे कठोर योद्धाओंके बीच खड़े थे। टीपूके दरबारके एक प्रभावशाली अफसरने दोनों राजकुमारोंको लार्ड कार्नवालिसकी बगलमें दोनों तरफ खड़ा करते हुए कहा— "ये लड़के आज सबेरे मेरे स्वामी सुलतानके बेटे थे। अब तक इनकी स्थिति बदल गई है। अब उन्हें आपको अपना बाप समझना होगा।

इसपर गवर्नर जेनरलने जवाब दिया, कि उनपर पूरा स्नेह और ध्यान दिया जायेगा। कार्नवालिसने इतनी नर्मी और प्रसन्नताके साथ बात की, कि तुरन्त ही वह इसपर विश्वास करने लगे। फिर भेंटोंका दानादान हुआ। कार्नवालिसने हरेक राजकुमारको एक सोनेकी घड़ी और बड़ेको एक जोड़ी पिस्तौल दी। राजकुमारोंने कार्नवालिसको एक कीमती तलवार दी। फिर उन्हें खास तौरसे तैयार किये एक तम्बूमें ले जाया गया, जहाँ सम्मान प्रदर्शनके लिए गारद मौजूद था।

पलासीके बादकी एक बहुत महत्वपूर्ण लड़ाईका इस प्रकार अन्त हुआ। सुलतानने जो आधा राज्य दिया था, उसका एक तिहाई अंग्रेजोंको मिला, और दो-तिहाई मराठों और निजामको। इस प्रकार भारतमें अंग्रेजी शासनके खिलाफ टीपूकी बनाई एक जबर्दस्त योजनाको विफल कर दिया गया।

लार्ड कार्नवालिसने जिस बड़े कामको अपने सामने रक्खा था, वह पूरा हो गया। लेकिन, अभी कार्नवालिस तब तक बना रहा, जब तक कि कम्पनीके नौकरी सम्बन्धी सुधारों और बड़े परिवर्तनोंके साथ-साथ पड़ोसी रियासतोंसे अंग्रेजी सम्बन्धों एवं देशी प्रजाको अनुरक्त बनानेके लिये जितने परिवर्तन आवश्यक वह थे पूर्ण न हो गये। जार्ज तृतीयने उसकी सेवाओंके लिये उसे मार्क्विसकी उपाधि दी, और १७९३ ई० में उसने इङ्गलैंडके लिये प्रस्थान किया।

अभी भी वह अपनी जन्मभूमिमें आरामके लिये नहीं लौटा था। घर और बाहरकी ऐसी कठिनाइयोंमें उसका देश उस वक्त था, जिसमें जन्म-

भूमिके सभी पुत्रों—खास करके कार्नवालिस जैसे बहादुर नेता—की उसे बड़ी आवश्यकता थी। उसे कई महत्वपूर्ण पद सौंपे गये। १७९८-१८०१ ई० तक वह आयरलैण्डमें लार्ड-लफ्टनेंट और कमाण्डर-इन-चीफ रहा, जहाँ उसनेविद्रोहको दबा देनेमें सफलता पाई। १८०५ ई० में फिर उसे भारत भेजा गया, लेकिन वह वहाँ थोड़े ही दिनों तक रह सका। उसका स्वास्थ्य पहले ही से खराब था। भारत पहुँचते ही वह और भी भयानक हो उठा और तीन महीनेके भीतर ही, जब कि वह कुछ ताजा योजनाओंको काममें लानेके लिए ऊपरी प्रदेशों की ओर जा रहा था, इसी समय बनारसके पास गाजीपुरमें ५ अक्तूबरको उसकी मृत्यु हो गई।

एक योद्धाके तौरपर जो अद्भुत गुण लार्ड कार्नवालिसमें देखे गये, एक दयालु और ईमानदार शासकके तौरपर अपने कर्त्तव्यके लिये उसने जिस योग्यता और दृढ़ मनस्कताका परिचय दिया था, वह कम नहीं था। उसके जीवन लेखक सर जान केने ठीक ही कहा है—"वह भारतका ऐसा प्रथम महान् शासक था, जिसे उचित तौरसे एक प्रशासक कहा जा सकता है। उसके भारतमें आनेके समय तक अंग्रेज वहाँ जीवन-मरणके एक बड़े संघर्षमें लगे हुये थे। क्लाइवने भारतके सबसे समृद्ध प्रदेशको जीता, हेस्टिंग्सने वहाँपर कुछ व्यवस्था सी कायम की। लेकिन, कार्नवालिसके आनेसे पहले इस हितैषी अंग्रेज राजनीतिज्ञके उच्चाशय और औदार्यने हमारे शासनको एक रूप और रास्ता प्रदान किया। "वहीलेखक कार्नवालिसके आनेके पहलेके भ्रष्टाचारके बारेमें कहता है—" लार्ड कार्नवालिसने उसका सदाके लिये नाश किया। उस समयसे भारत पर शासन करनेवाली व्यापारियोंकी उस महान् कम्पनीकी सेवामें एकके बाद एक ऐसे सिपाही और असैनिक अफसर आये, जो कि संसारके उल्लिखित व्यक्तियोंसे अपने आचरणोंमें अद्वितीय थे।

## ९—लार्ड वेल्जली (१७६०-१८४२ ई०)

भारतमें अंग्रेजी शासनके इतिहासका वह बड़ा कठिन समय था, जब कि वेल्जली गवर्नरजेनरल नियुक्त किया गया। उसके कुशल हाथोंमें शासनकी बागडोर आना उसके अपने देश तथा ईस्टइंडिया कम्पनी दोनोंके लिये बड़े सौभाग्यकी बात थी। शासनमें जो जबर्दस्त सफलता उसने प्राप्त की उसके देखते यह भी ध्यान रखनेकी बात है, कि इससे पहले वह अपेक्षाकृत ना तजुर्बा किया हुआ आदमी था। और जिन वर्षोंमें वह अपने पदपर रहा उस वक्त अत्यन्त दुरूह समस्यायें उसके सामने थीं।

प्रसिद्ध अंग्रेज महासेनापति ड्यूक वेलिंगटनका बड़ा भाई रिचार्ड कौली वेल्जली था, जो अपने बापके मरनेके बाद पैतृक उपाधि अर्ल मोर्निंगटनका अधिकारी बना, और पीछे मार्क्विस वेल्जली बनाया गया। अपने बचपनसे ही अपनी अद्भुत योग्यताका परिचय देने लगा था। १७७२ ई० में १२ वर्षकी उमरमें वह ईटनमें पढ़नेके लिये भेजा गया, जहाँ उसने अपनी योग्यताका जबर्दस्त परिचय दिया। १७७८ ई० में आक्सफोर्डके क्राइस्ट चर्च कालेजमें दाखिल हुआ। यहाँ भी उसकी विद्वत्ताकी धाक जमी। आरम्भिक जीवनमें ही उसने एशियाकी इतिहासके अध्ययनकी ओर रुचि दिखलाई। १७८२ में जब-जब वह पार्लियामेन्टका मेम्बर हुआ, तो उसकी राजनैतिक योग्यताकी ओर बहुतोंका ध्यान आकर्षित हुआ। कुछ सालों तक वह भारतीय मामलोंकी ओर विशेष ध्यान देता रहा। इसमें उसने अपनी ख्याति प्राप्त की, कि १७९३ ई० में उसे बोर्ड आफ कन्ट्रोलका एक मेम्बर नियुक्त किया गया। चार वर्ष तक इस पदपर रहते हुये उसने भारतीय मामलोंका गहरा ज्ञान हासिल किया, और तब उसे बहुत योग्य व्यक्ति समझकर भारत पर शासन करनेके लिये नियुक्त किया गया।

मई १७९८ ई० में वेल्जली कलकत्ता पहुँचा—अभी वह लार्ड वेल्जली नहीं हुआ था। उसने आते ही देखा, कि स्थिति बड़ी गम्भीर है, और

ब्रिटिश शासनको चारों ओर भयंकर खतरे घेरे हुये हैं। कारण क्या थे। पहली बात तो यह हुई, कि टीपू साहबके साथ फिर नई कठिनाइयां उठ खड़ी हुईं। लार्ड कार्नवालिसने १७९२ ई० में उसे जिस सन्धिको करनेके लिये मजबूर किया था, और जिस तरह उसे बुरी तौरसे दबाया गया था, उसके बाद भी अंग्रेजोंके खिलाफ टीपूके दिलमें घृणा पहली ही जैसी मौजूद थी। उसे भारी क्षति उठानी पड़ी थी, जिसका बदला लेनेकी वह बराबर सोचता रहता था। इसके लिये उसने बड़े ध्यानसे अपनी आर्थिक स्थितिको मजबूत किया, और उचित अवसरकी ताकमें रहा। यह अवसर उस वक्त उसे आया मालूम हुआ, जब कि इंगलैण्ड और फ्रांसमें फिर लड़ाई शुरू हो गई। वेलजलीके भारत पहुँचनेके तीन सप्ताहके भीतर ही उसे यह गम्भीर सूचना मिली, कि टीपूने फ्रांसीसियोंके पास मारिशसमें खुले तौरसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेके लिये आक्रमणात्मक और प्रतिरक्षात्मक सन्धि करनेका प्रस्ताव भेजा। अंग्रेजोंके निकाल बाहर करनेपर देशको दोनोंके बीच बांट दिया जायेगा। इस प्रस्तावका यह फल हुआ, कि टीपूके मांगनेपर फ्रांसीसियोंने उसकी सेवाके लिये कुछ फ्रेंच अफसर श्रीरंगपत्तममें भेज दिये।

दूसरी समस्या वेलजलीके सामने थी निजामके मनोभावके सम्बन्धमें। कुछ साल पहले कार्नवालिसने निजाम और मराठोंसे एक सुलह की थी, यह हम बतला आये हैं। जब निजामका मराठोंसे झगड़ा हुआ, तो उस समय वेलजलीके पूर्वाधिकारीने निजामके साथ हुये समझौतेको हटा दिया। इसे अंग्रेजोंकी ओरसे भी विश्वासघात समझकर निजामने रुष्ट हो अपनी नौकरियोंमें लगे अंग्रेज अफसरको ही बर्खास्त नहीं कर दिया, बल्कि उनकी जगहपर फ्रेंच अफसर प्राप्त करने चाहे। यद्यपि मराठोंसे निजामको हार खानी पड़ी, लेकिन अब भी फ्रेंच अफसर उसने अपने पास रक्खे। फ्रांसीसियोंने निजामकी कमजोरीसे लाभ उठाकर उसके राज्यमें ऐसा प्रभाव प्राप्त करना शुरू किया, कि जान पड़ने लगा कि दक्षिणमें उनका अधिकार थोड़े ही दिनोंमें स्थायी हो जायेगा। उनके हैदराबादमें रहनेसे अंग्रेजोंकी

स्थिति खतरेमें पड़ गई थी। निजामके अमित्रतापूर्ण भावोंका ही ख्याल नहीं था, बल्कि जो नया खतरा टीपू साहबके मारिशसमें फ्रांसीसियोंके साथ की गई साज-बाजसे हो गया था, उसका भी ख्याल वेल्जलीको करना था।

एक तीसरी भी कठिनाई वेल्जलीके सामने आ मौजूद हुई थी, यद्यपि वह अभी इतनी भयंकर नहीं मालूम पड़ती थी। भारतके एक उत्तरी भागमें मराठा राजा सिंदिया वंश बहुत शक्तिशाली हो गया था। कुछ साल पहले उसके चचाने, जिसकी जगहपर वह अब गद्दीपर बैठा था, दिल्ली और आगरा जैसे महत्वपूर्ण स्थानोंको लेते हुये एक बड़े भूभागमें मुगल बादशाहसे चौथ उगाहनेका अधिकार प्राप्त किया था। वेल्जलीके भारतमें आनेके समय दिल्लीके बादशाहको ही सिंदियाने अपने हाथमें नहीं कर रक्खा था, बल्कि उसने उत्तरी भारतमें जबर्दस्त अधिकार कायम कर लिया था। उसकी अच्छी तरहसे हथियारबन्द ४० हजार सेनामें बहुतसे फ्रेंच अफसर काम कर रहे थे।

वेल्जलीकी चिन्तायें इतने हीसे खतम नहीं हो जाती। वह और भी कई गुना बढ़ गई थीं। नेपोलियन बोनापार्टने हाल ही मिस्रपर धावा किया था, और वह भारतमें अंग्रेजोंके राज्यपर आक्रमण करनेको सोच रहा था। कलकत्तामें कम्पनीके अफसरोंमें इसी समय बड़ा असंतोष फैला हुआ था, और खजाना बिल्कुल खाली था।

इस प्रकार मालूम होगा, कि अपने जबर्दस्त दुश्मन फ्रांसीसियोंके कारण अंग्रेज करीब-करीब चारों ओरसे खतरेमें थे। वेल्जलीके सामने जो काम था, वह आसान नहीं था, इसमें शक नहीं।

उसने बड़ी तेजीसे फैलते हुये भयंकर खतरेको देखकर निश्चय किया, कि जहाँ सबसे ज्यादा खतरा है, वहीं एक जबर्दस्त प्रहार करना चाहिये। गवर्नर जेनरलने बिना जरा भी समय बरबाद किए पहले टीपू साहबकी अमित्रतापूर्ण कार्रवाईकी सम्भावना देख सेना ले उसकी राजधानीकी ओर अभियान किया। जिसमें सफलता करने की आशा करने से पहले यह जरूरी था, कि कोई ऐसी निर्णायक कार्रवाई की जाये, जिससे निजामके भावोंमें

ही परिवर्तन न हो जाये, वल्कि उसकी मैत्री प्राप्त हो सके। यद्यपि उसके पूर्वाधिकारियोंने कुछ ही साल पहले संकटके समय निजामको सहायता देने से इन्कार किया था, पर लार्ड वेल्जलीने उसका कोई भी ख्याल न करके निजामसे कहा, कि कार्नवालिस द्वारा किये समझौतेके अनुसार मैं सहायता देनेके लिये तैयार हूं, और साथ ही फ्रेंच अफसरोंकी जगह अंग्रेज अफसरोंको देना भी स्वीकार किया। यद्यपि यह बड़े साहसका प्रस्ताव था, स्थिति उसकी स्वीकृतिके अनुकूल थी। सैनिक अफसर ,हैदराबादमें अपने अभिमानपूर्ण वर्तावसे दिखाते हुए जो कुछ कर रहे थे, उससे निजामको उनके बढ़ते हुये प्रभावसे खतरा मालूम होने लगा था। वह उनसे पिण्ड छुड़ाना ही चाहता था। वेल्जलीके प्रस्तावको उसने इस शर्तके साथ स्वीकार कर लिया, कि फ्रेंच अफसरोंको हटानेकी जिम्मेवारी उनके ऊपर रहेगी।

वेल्जलीने इसे अच्छी तरहसे पूरा किया। और उसके पहले सबसे बड़े कामकी सफलता, उसके साहस और योग्यताने बतला दिया, कि वह स्थितिको भली प्रकार समझता है। उपयुक्त सेना जमा करके उसने उसे हैदराबाद भेजा। निजामने फ्रेंच अफसरों को बर्खास्त करनेका फरमान निकाला। अंग्रेजी सेना तुरन्त उस स्थानपर आ मौजूद हुई, जहाँसे फ्रांसीसियोंकी हालत खराब हो सकती थी। चालाकीसे उन्होंने एक भी आदमी को खोये बिना सभी पल्टनोंको बेहथियारका कर दिया। फ्रांसीसियोंको तनख्वा दे दी गई, और उन्हें देशसे बाहर जानेका हुकुम मिल गया। निजामके राज्यपर फ्रांसीसियोंका प्रभाव इस प्रकार नष्ट कर दिया गया, और उसकी जगह अब अंग्रेज कायम हो गये।

इस प्रकारकी तुरन्त जबर्दस्त कार्रवाई कर लेनेके बाद अब निजाम अंग्रेजोंके साथ सहयोग करनेके लिए बिल्कुल तैयार थे। मैसूरके खिलाफ कार्रवाई करनेकी तैयारीमें जरा भी देर नहीं की गई। वेल्जली दिलोजान से उसमें लग गया, जो कि उसके स्वभावमें था। उसने मद्रास जब सेना को जमा करनेका हुकुम भेजा, तो वहाँके अधिकारी इस खतरनाक कदमको

बात सुनकर दंग रह गए, और कम्पनीके खजानेमें पैसेके अभाव और टीपू की सेनाके मुकाबिलेमें अंग्रेजोंकी सेनाके कम होनेका बहाना करके कम एतराज नहीं किया। लेकिन, वेलजली जब किसी कामके लिए निश्चय कर चुका हो, तो वह बाधाओंके कारण विचलित होनेवाला नहीं था। मद्रास से जवाब आनेपर तुरन्त उसने हुकुम दिया कि जरा भी देर किये बिना सेनाको युद्धके लिए तैयार कर देना चाहिये। उसने एतराज करनेवालोंको बहुत सख्त सुस्त कहते हुए कहा, कि मेरे जिम्मे जिस राज्यके शासनका अधिकार दिया गया है, उसे वह स्वयं अपने हाथमें लेना चाहते हैं। वेलजली जानता था, कि इस भारी सैनिक अभियानके लिए धनकी आवश्यकता है। उसने स्वयं अपने पाससे कितना ही धन प्रदान किया। उसका उदाहरण दूसरे अंग्रेज अफसर, युरोपियन और देशी धनिकोंने किया। इसी बीच उसने टीपूके पास चिट्ठी भेजकर उससे उसके षड्यन्त्रोंके लिए जवाब तलब किया। टीपूने जवाब देनेमें जो बहानेबाजी की, उससे मालूम हो गया, कि अंग्रेजोंके खिलाफ उसकी योजनाओंकी सूचनायें सच्ची हैं, और यह भी कि वह फ्रांसीसियोंसे और भी सहायता लेनेकी बातचीतमें लगा है। वेलजलीने अब तुरन्त सेनाको युद्धक्षेत्रमें उतरनेके लिये आज्ञा दी।

फर्वरी १७९९ ई० में मित्रोंकी ४० हजार सेनाओंने—जिनमें २० हजार निजामकी थीं कर्नल आर्थर वेलजलीके संचालन में आगे बढ़ना शुरू किया। कर्नल आर्थर वेलजली पीछे वाटरलूका विजेता ड्यूक वेलिंगटनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह वेलजलीका छोटा भाई था और अपने भाईके गवर्नर-जेनरल होकर आनेके दो साल पहले भारतमें आया था। भिन्न-भिन्न दिशाओंसे चलकर दो महीनेके भीतर सारी सेनायें टीपूकी राजधानीके सामने मिल गईं।

सेनाका यह बढ़ाव बहुतसे खतरोंसे खाली नहीं था। उसके बहुतसे पशु मर गये, जिससे बढ़ावमें कठिनाई हुई। टीपूने बम्बईसे आने वाली सेनाओंको बीचमें रोक दिया, और उसे मुख्य सेनाके मिलनेमें पहले ही

नष्ट कर देनेकी कोशिश की । यह अप्रत्याशित घटना थी । सौभाग्यसे यह छोटी सेना मैसूरी सेनाका मुकाबिला करनेमें समर्थ हुई, और ६ घंटेकी कड़ी लड़ाईके बाद भारी हानि उठाते हुये उसे तितर-बितर कर दिया ।

इसके बाद टिपूने मद्रासले आनेवाली सेनाके साथ मलावेलीमें लड़नेकी हिम्मत की, जहां जबर्दस्त भिड़न्त हुई । टिपूने प्रथम प्रहारमें एक होशियारीकी चाल चली थी । उसने खूब पिलाकर तीन सौ सवारोंको एक जंगलमें छिपा रक्खा था, जिनको आज्ञा दी गई थी, कि पहले अंग्रेजोंके आनेकी प्रतीक्षा करें, और आते ही उनके दाहिने पार्श्वभको एकाएक हमला करके तोड़ दें । इस टूटी हुई जगहमें सुल्तान अपनी सवार सेनाको लेकर झपट्टा मारेगा, और इस प्रकार आक्रमणकारियोंको अपनी सारी शक्तिका निशाना बनायेगा । सौभाग्यसे इस चालके कार्य-रूपमें परिणत करनेसे पहले ही पता लग गया । जब तीन सौ सवार अपने छिपनेके स्थानसे बाहर दौड़े, तो पहलेहीसे जान लेनेके कारण अंग्रेज जेनरलने उनका खूब स्वागत किया, और चाल असफल रही । टिपूके आदमी इस असफलतासे इतने पस्त हिम्मत हो गये, कि उनमेंसे कितने ही पीछे हट गये । कर्नल अर्थर वेल्जलीने पहली बार भारतकी भूमिमें तलवार निकाली, अंग्रेजी पार्श्व सेनाको संचालन करते आक्रमण शुरू किया । दो हजार आदमियोंके ६ ध्वजाओंके साथ सारी मैसूरी सेनाको बुरी तरहसे हरा दिया गया । अंग्रेजोंकी हताहत संख्या केवल ६० थी ।

इस भारी असफलताके बाद टिपूने बिना देर किये तुरन्त अपने बाकी अनुयायियोंके साथ श्रीरंगपत्तमके अपनेदृढ़ दुर्गमें शरण ली । उसको निश्चय था, कि आक्रमणकारी उसका पीछा किये बिना नहीं रहेंगे, इस-लिये सारे देशको उसने बरबाद करके वहां न अन्न और न चारा रास्तेमें रहने दिया । लेकिन उसकी यह योजना भी अंग्रेज जेनरलने बिफल कर दी, और उस रास्तेको न लेकर एक दूसरी दिशासे बढ़ना शुरू किया, जिससे उसके बढ़ावमें ही कठिनाईका अभाव था, बल्कि सेनाके लिये

अपेक्षित रसद भी मिल सकती थी और इससे भी बढ़कर बात यह थी, कि इसके जरिये वह बम्बईसे आनेवाली सेनासे मिल सकती थी।

बढ़ाव सफल रहा। टिपूको यह सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसने देखा कि जिस वक्त वह अपनी राजधानीके नजदीक पहुँच रहा था, उसी समय सारी अंग्रेजी सेना उसके सामने थी। अंग्रेजोंने जिस तरह उसे झुकाया, उससे वह अत्यन्त कुपित हो घबड़ा गया।

अपने मुख्य अफसरोंको इकट्ठा करके उसने आँखोंमें आँसू भरकर कहा —"हम अपनी अन्तिम मंजिलपर पहुँच गये हैं। तुम्हारा क्या निश्चय है।"

सबने एक मुँहसे अपनी-अपनी तलवारोंपर हाथ रखकर घोषित किया, "कि अपनी राजधानीको बचानेके लिये हम अन्तिम प्रयत्न करेंगे, या आपके साथ मर जायेंगे।"

अब अंग्रेजोंने श्रीरंगपत्तमके प्राकारोंको घेरना शुरू किया। टीपूने उनके भाइयोंके साथ कितनी क्रूरता का बर्ताव किया था, इसे याद रखते, टीपूके दुर्गको घेरनेमें अंग्रेजी सेनाके अफसर और सैनिक बड़ी तत्परतासे अपने काममें जुटे।

एक महीना बीतते-बीतते नगरका घेरा पूरी तौरसे मजबूत करके प्राकारको एक जगह तोड़नेकी सम्भावना देखी गई। जनरल डेविड बेयर्डके नेतृत्वमें तुरन्त ही दीवार तोड़ी जाने लगी—बेयर्ड कुछ साल पहले हैदर अलीका बन्दी बनकर इसी किलेमें बन्द रक्खा गया था।

ठीक १ बजे दिनको यह कदावर प्रभावशाली अफसर दोनों ओरकी सेनाओंके देखते खाईसे बाहर निकला। एक धुस्सपर चढ़कर उसने अपनी तलवार हिलाते सैनिकोंको पुकारकर कहा—"आ जाओ मेरे साथियो। आओ मेरे पीछे-पीछे और अपने को अंग्रेज सैनिक नामके योग्य साबित करो।

ताली बजाते हुए गोरे सैनिक किलेकी ओर दौड़े। किलेमें टीपूने करीब तीन सौ तोपें और २० हजार सिपाही जमा कर रखे थे। घमासान लड़ाई शुरू हुई। टीपूके सैनिकोंने बड़ी बहादुरीसे और खूब अच्छी

तरह मुकाबला किया, लेकिन वह अपने विरोधियोंके सामने कुछ नहीं कर सके। सात मिनटके भीतरही अंग्रेजी ध्वजा किलेकी दीवारोंपर फहरानेलगी।

इस थोड़े समयके मुठभेड़में ही अंग्रेजोंके कितने ही तरुण अफसर गोलीसे मारे गये। अन्तमें बम्बई की पलटनका एक स्काट सर्जेन्ट ग्रेहमने उनमेंसे एकको अपनी कन्धे पर उठा आगे दौड़ते हुये किलेकी टूटी हुई जगहपर चढ़कर अपना हैट उतार तीन ताली बजाते चिल्लाया—"लफटनैंट ग्रेहमकी जय।" इस बहादुरी द्वारा जिन्दा रहनेपर कमीशन पानेका संकेत किया। फिर टूटी हुई दीवारपर झण्डा गाड़ते उसने चिल्लाकर कहा—"मर जायें वे सारे, मैं उन्हें अंग्रेजी झण्डा दिखाऊँगा।" इसी समय शत्रुकी गोलीसे बहादुर ग्रेहमका काम तमाम हो गया।

अंग्रेजोंने मैसूरी सेनाको उनके दुर्गसे भगा दिया। अब लड़ाई शहरकी सड़कोंपर होने लगी। यद्यपि एक ही घंटे तक रही, लेकिन संघर्ष बहुत भयंकर था। विजयी अंग्रेजोंके सामने टीपूके हजारों सैनिक धराशायी हुये।

और टीपू साहब? पहले वह नहीं मिला। विजयके बाद जब अंग्रेजों ने उसके महलपर कब्जा किया, तो विश्वास किया जाता था, कि वह अब भी जिन्दा है, लेकिन बात यह न थी। जब प्राकारको जहां अंग्रेजोंने तोड़ा था, वहां अपनी सेनाके साथ वह भी दौड़ पड़ा था, और बड़ी बहादुरी से लड़ा। अन्तमें पथरकलाकी गोलीसे बुरी तरहसे घायल होकर गिर पड़ा। जब वह मृत्युके क्षण गिन रहा था, उसी वक्त एक गोरेने उसके बहुमूल्य जड़ाउ कमरबन्दको पकड़कर खींचना चाहा। मरते हुये सुलतान के हाथ में अब भी तलवार थी। उसने उससे अन्तिम प्रहार किया। इसपर गोरे ने उसके सिरपर गोली चलाकर खतम कर दिया। शाम होनेसे पहले उसके शवका पता नहीं लगा। फिर भी उसे पहचान लिया गया। अगले दिन उसके बाप हैदर अलीके रौजेमें सैनिक सम्मानके साथ अपने वीर प्रतिद्वंद्वीको अंग्रेजोंने दफनाया।

इस प्रकार सुलतानके बुरे बर्ताव और अनुचित चालोंके कारण उस राज्यको दबा दिया गया, जो कि करीब तीस वर्ष तक अंग्रेजोंका बहुत ही शक्तिशाली और खतरनाक शत्रु था।

युद्धके साधारण कायदेके अनुसार यह गवर्नर-जेनरलके अधिकार में था कि जीते हुये भूभागको अंग्रेजों और निजाममें बांट दे। लेकिन, कितने ही कारणोंसे वेलजलीने इसे अच्छा नहीं समझा। उसने टीपूके राज्यके एक बड़े भागको उस हिन्दू राजवंशकी एक संतानको देनेका निश्चय किया, जिसे हैदर अलीने अपदस्थ किया था। उत्तराधिकारी एक पाँच वर्षका बच्चा था, जो बड़ी दरिद्रताके साथ गुमनाम जीवन बिता रहा था। इस बच्चेको ढूँढ़कर निकाला गया, और उसे बड़ी तड़क-भड़कके साथ अपने पूर्वजोंके सिंहासनपर बैठाया गया। राज्यकी सालाना आमदनी ५० लाख रुपया थी। नाबालिग होनेके कारण देशका प्रशासन कर्नल आर्थर वेलजलीके हाथ में दिया गया। मैसूर राज्यका बाकी भाग मित्रोंमें बाँट दिया गया। श्रीरंगपत्तनकी लूटमें १० लाख पौंड (एक करोड़ रुपया) के मूल्यवान जवाहर हाथमें आये थे, जिन्हें दोनों विजयी सेनाओंमें बाँट दिया गया। इसमेंसे एक लाख पौण्डकी रकम ईस्ट इण्डिया कम्पनीके डायरेक्टरोंने वेलजलीको देना चाहा, लेकिन उसने इसे लेनेसे इन्कार कर दिया। पीछे जब पाँच हजार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देने का प्रस्ताव पार्लियामेंटमें मंजूर हुआ, तो उसे स्वीकार किया। इस महान् विजयके कारण उसी साल उसे मार्क्विसकी उपाधि दी गई।

लार्ड वेलजलीके इस साहसपूर्ण कामका फल तुरन्त दिखलाई देने लगा। बारह महीनेसे थोड़े ही अधिक समयमें इतना काम कर डालनेने लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया। दक्षिणमें हैदराबादमें फ्रांसीसी प्रभावको नष्ट करके अंग्रेजी प्रभावको मजबूत करना, टीपूको खतम करना और अंग्रेजी संरक्षणमें उसकी गद्दीपर दूसरे राजाको बैठाना, यह सब देखकर कम्पनीकी सरकारकी धाक बहुत बढ़ गई, देशी राजाओंके दिलमें भयका संचार हुआ। केवल टीपूके पतन और मृत्यु ही नहीं, बल्कि पुराने राज-

वंशके आदमीको गद्दीपर बैठानेकी उचित नीतिका मैसूर-विजयके बाद इतना प्रभाव हुआ, कि जल्दी ही गवर्नर जेनरलने भारतके भिन्न-भिन्न राजाओंके साथ अंग्रेजोंके बहुत बड़े सुभीतेके साथ सन्धियाँ करनेमें सफलता पाई। थोड़े ही समयके भीतर नवाब-कर्नाटक, राजा-तंजौर; नवाब-अवध और दूसरे राजाओंके बहुत मूल्यवान भूभाग कम्पनीके सैनिक और असैनिक शासनमें परिवर्तित कर दिये गये। इन शासकोंको पेन्शन पाने, प्रभुताका खोखला नाम रखने और भीतरी शासनके प्रबन्धका अधिकार रह गया। १८०२ ई० तक अब अंग्रेजोंकी प्रतिद्वन्दी एक ही महत्वपूर्ण शक्ति मराठोंकी थी। अंग्रेजोंके सौभाग्यसे वह इस समय पाँच टुकड़ोंमें बँट गये थे, जिनमें सिंधिया भी एक था। इनकी अनबन साधारण नहीं थी, वह एक दूसरेसे बराबर लड़ते रहते थे।

वेल्जलीकी मराठोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी इच्छा थी। उपरोक्त देशी राजाओंके साथ उसने जैसा सम्बन्ध स्थापित किया था, ठीक उसी तरहका। अब पेशवा नामका ही मराठोंका अधिराज माना जाता था। उसकी बातोंकी कोई विशेषकर सिंधिया और होलकर परवा नहीं करते थे। वेल्जलीने पेशवासे बातचीत चलाई थी, लेकिन अभी तक उसे सफलता नहीं मिली। १८०२ ई० के अन्तमें पेशवा, सिंधिया और होलकरके बीच लड़ाई छिड़ गई, और पेशवाको भागकर अंग्रेजी इलाकेमें शरण लेनेके लिए मजबूर होना पड़ा। वेल्जलीके लिये यह एक सुनहला अवसर था। उसने फिर पेशवाके सामने सन्धि का प्रस्ताव इन शर्तोंके साथ रक्खा, कि मराठा जातिका फिरसे मुखिया बनानेमें अंग्रेज उसकी मदद करेंगे। कुछ हिच-किचाहटके साथ पेशवाने प्रस्तावके सामने सिर झुकाया। बसीनमें ३१ दिसम्बर १८०२ ई० को पेशवाके साथ सन्धि हुई, और भारतके भाग्यपर मुहर लगा दी गई।

इस सुलहनामेने मराठा सरदारों, खासकर सिंधियाके मनमें, भारी बेचैनी पैदा की। वह आतंकित हो गये। एक विदेशी शक्ति का राज्यके भीतर घुसना भयंकर बात थी ही, साथ ही यह मराठा नामके ऊपर भारी

धक्का था। सिंधियाने अंग्रेजोंके और अधिक दखलंदाजीको रोकनेका निश्चय किया, और उनपर जबर्दस्त प्रहार करना चाहा। लड़ाईका बिगुल बज गया।

लार्ड वेल्जली फिर इस जबर्दस्त संघर्षमें अपनी स्वाभाविक तत्परताके साथ उतरा। उसने अपनी सेनाको दो टुकड़ोंमें बांटा, और अपने भाई जेनरल आर्थर वेल्जलीको मराठा राजधानी पूनामें जाकर वहाँकी सेनाको भगा पेशवा का अधिकार करानेके लिये कहा। साथ ही जेनरल गेराड—पीछे लार्ड —लेकको अपनी सेना लेकर उत्तर की ओर जा मुख्यतः फांसीसी अफसरों वाली सिंधिया की सेना पर प्रहार करनेका आदेश दिया। ये कार्रवाइयाँ सफल रहीं, और शुरूसे अन्त तक कई अद्भुत विजय अंग्रेजी सेनाने की। जेनरल वेल्जलीने मराठोंपर अंग्रेजोंकी प्रभुता स्थापित करके बड़े दबदबेके साथ पूनामें पेशवाको फिरसे गद्दीपर बैठाया और अपनी सेना को ले शत्रुकी ओर कूच किया। सबसे पहले उसने अहमदनगरके मजबूत किलेपर अधिकार करनेके लिये कदम उठाया। २१ सितम्बर १८०३ ई० को इस कामको पूरा करके उसने एक योजना बनाई, जिसके अनुसार वह एक दिशाकी ओर चला, और उसका उप-सेनापति कर्नल स्टिफेन्सन दूसरी दिशामें। उसने आशा की थी, कि हमारी सारी सेना शत्रुपर एक साथ प्रहार करनेमें सफल होगी।

२३ तारीखके सबेरे जेनरल वेल्जली केवल ४५०० सेनाके साथ मराठोंके ५० हजार सैनिकों और सौ तोपोंवाले केम्पके सामने आ गया, इसका संचालन सिंधिया (दौलतराव)—कर रहे थे, जो अंग्रेजोंकी प्रतीक्षा हीमें थे। यह स्थान असई था। इतनी भारी सेनाकी कोई भी परवा न करके वेल्जलीने लड़नेका निश्चय किया। उसने अपने आदमियोंको किरिच लगाकर बन्दूक ले आगे बढ़नेका हुकुम दिया। गोरे सिपाहियोंने गोले मराठोंकी तोपोंके मुंहकी ओर धावा बोल दिया। तोपें आग उगलने लगीं। सिंधियाकी सेना अंग्रेजोंसे मुकाबिला करने की ताकत नहीं रख सकी। वेल्जली उसे तितर-बितर होकर भागनेके लिए मजबूर करनेमें सफल हुये। इस लड़ाई में अपनी तोपों और केम्पके सामानके अतिरिक्त १२ हजार आदमियोंसे

मराठोंको हाथ धोना पड़ा, जबकि अंग्रेजोंको इससे एक-तिहाई हीका नुकसान उठाना पड़ा। ये तथा उसके बादकी विजयें भारतमें कम्पनीकी सेनाकी एक बहुत ही जबर्दस्त और पूर्ण विजय मानी जाती है।

इसी बीच उत्तरमें जनरल लेक बढ़ता, उतनी ही हिम्मत और दृढ़-निश्चयके साथ लड़ता सिंधियाका पूर्ण पराभव करनेमें सफल रहा। १० हजार सेनाके साथ वह दिल्ली पर चढ़ा। वहाँ उसने शत्रुकी सेनाओं और उनके अफसरोंको ही नहीं मार भगाया, बल्कि दिल्ली और आगरा जैसे महत्व-पूर्ण नगरों पर अधिकार करके मराठोंके बन्धनमें पड़े बूढ़े बादशाहको मुक्त करके अंग्रेजी संरक्षणमें ले लिया। इसके बाद आगे बढ़ते लसवाड़ीमें अंग्रेजोंसे मुकाबिला करनेके लिये वहाँ जमा हुई मराठा सेनाको एक बड़ी लड़ाई लड़के तितर-बितर कर दिया।

अन्तिम पराजयने मराठोंकी शक्तिको कुछ समयके लिये पूरी तौरसे छिन्न भिन्न कर दिया। लार्ड वेलजलीके पदकालके समाप्त होनेसे पहले यद्यपि होलकर और दूसरे मराठा सरदारोंसे अंग्रेजोंको भुगतना पड़ा, और उसके जानेके बाद भी और अधिक जबर्दस्त लड़ाइयाँ हुईं तब जाके मराठोंको अन्तिम तौरसे दबाया जा सका। लेकिन, लेककी सफलताका तुरन्त प्रभाव यह पड़ा, कि जमुनाके परेके कितने ही इलाकोंके साथ-साथ जमुनाके उत्तरके सारे इलाके पर कम्पनीका आधिपत्य स्थापित हो गया, और बहुत सी ऐसी रियासतें अंग्रेजोंको मिलीं, जिनसे उनका प्रभाव और आधिपत्य बढ़नेमें सहायता मिली।

इन घटनाओंके बाद करीब एक वर्ष लार्ड वेलजली भारतमें रहा। अपने शासनकालमें वेलजलीने बड़ी निपुणता के साथ शासन किया, कितने ही बड़े-बड़े काम किये। भारतमें आनेके समय उसके सामने जबर्दस्त कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, जिन्हें एकके बाद एक उसने दूर किया। फ्रांसीसी प्रभावको छिन्न-भिन्न करके उसने अंग्रेजोंके प्रभावको उसकी जगह जमाया। टीपू साहबको खतम करके मैसूरको उसने कम्पनीके अधीन किया, मराठोंको उसने जीता और सिंधियाकी सेनाको तितर-बितर कर उसके इलाकोंको ले

लिया। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न दिशाओंमें एक बहुत बड़े भूभागपर अंग्रेजोंके आधिपत्यको स्थापित किया। उसने असैनिक व्यवस्था में बहुत से सुधार किये। कम्पनीकी नौकरियोंके लिये तरुण नागरिकोंके प्रशिक्षणके लिये कलकत्तामें फोर्ट विलियम कालेजकी प्रसिद्ध संस्था कायम की। उसने कम्पनीकी वित्तीय व्यवस्था का इतना अच्छी तरह प्रबन्ध किया, कि उसकी आमदनी ७० लाख पौंड ( ७ करोड़ रुपया ) से डेढ़ करोड़ पौंड हो गई, भारतीयोंके ऊपर अन्याय किये बिना व्यापारका सुभीता भी अंग्रेजोंको प्राप्त हुआ।

इतनी सफलतायें प्राप्त करनेके बादभी उसकी मजबूत और आक्रमणात्मक नीति इंग्लैण्डके अधिकारियों को पसन्द नहीं आई। उसके युद्धमें जो भारी खर्च आ रहे थे; उससे डरकर तथा यह समझकर, कि वेल्जली हमारी इच्छाके विरुद्ध काम कर रहा है, क्लाइव और हेस्टिंग्सके साथके बर्तावको दोहराते हुये उसे वापस बुला लिया गया। "भारी अपराध और बुरे कर्मोंके लिये' पार्लियामेंटमें उसके खिलाफ अभियोग लाने का भी प्रयत्न किया गया।"

यद्यपि उस समय वेल्जलीकी बड़ी निन्दा की गई, लेकिन अभियोग चलानेमें सफलता नहीं मिली। मृत्युसे कुछ साल पहले घर और बाहर भिन्न भिन्न पदोंपर सेवा करके उसे इसका संतोष हुआ, कि कम्पनी के डायरेक्टरोंने २० हजार पौंडका अनुदान दिया, और साथ ही वोट देकर यह स्वीकार किया—"हमारी रायमें वह अपने सारे शासनमें भारतकी भलाई करने तथा अंग्रेजी साम्राज्यके हित और सम्मानको ऊँचा रखनेकी तन्मयता से अनुप्राणित रहा।" २६ सितम्बर १८४२ ई० को अपने देशमें वेल्जलीका देहान्त हो गया।

## ५, ६, एल्ड्रेड पटिंगर (मृत्यु १८४३ ई०) और सर अलेक्जेंडर बर्न्स (१८०५-४१ ई०)

(गवर्नरों और गवर्नर-जेनरलोंके ऊंचे पदपर पहुंचे बिना भी कितने ही अंग्रेजोंने अपनी हिम्मत और होशियारीसे भारतमें अंग्रेजी राज्यकी नींव मजबूत करनेका काम किया था, जैसे कि पटिंगर और बर्न्स ।)

एल्ड्रेड पटिंगर अपने आरम्भिक दिनोंसे ही बारूद और बन्दूकका प्रेमी था। सारे बचपनमें लड़ाईके खेलों जैसा आनन्द उसे किसी खेलमेंनहीं आता था। अभी वह दुधमुहा बच्चा ही सा था, जब कि अपने और अपने छोटे भाईको बारूदसे उड़ा देने लगा था। दूसरे समय वह एक मोर्चाबन्दीका खेल खेल रहा था, जिसमें भारी चोटसे बाल बचा बागकी दीवारपर बड़े-बड़े पत्थरोंसे उसने इमारत खड़ी की थी, जो सारी की सारी ढह पड़ी। नीचे दो आदमी बैठे थे, जिनके ऊपर दीवारके गिरनेमें थोड़ा ही अन्तर रह गया।

इस तरहके खतरनाक कामोंके अतिरिक्त एल्ड्रेड पढ़नेमें रुचि रखता तथा मेहनती था। १४ वर्षकी उम्रमें पहुँचने तक एक निजी शिक्षकके अधीन उसने शिक्षामें काफी प्रगति कर ली थी। १८२५ ई० में उसने अपने भावी जीवनके कार्यक्रमको चुना। उसके बापका भाई कर्नल पाटिंगर—जो कॉटिडोनका निवासी एक आइरिश भद्रपुरुष था—२३ साल पहले भारत चला गया था, वहां उसका काफी प्रभाव था। एल्ड्रेडने अनेक बार अपने चचाके सम्बन्धमें तथा उसके कामोंके बारेमें सुना था। उसको हर तरहके संकटपूर्ण कामोंमें आनन्द आता था, इसलिये यह आश्चर्य नहीं था, कि उसका ध्यान भारतवर्षकी ओर खिचा। इसीके परिणामस्वरूप उस साल वह एडिस्कोम्बमें अवस्थित कम्पनीके सैनिक स्कूल में दाखिल हुआ।

जल्दी ही वह लोगोंमें प्रिय हो गया। अपने परिश्रमके कारण उसने क्लासमें अच्छा स्थान प्राप्त किया, तथा अपने पौरुष, बहादुरी और

सचाई के कारण साथियों का स्नेह-पात्र हो गया। तो भी अभी उसकी बचपनकी आदत गई नहीं थी, और न बारूदके लिये प्रेम कम हुआ था। एडिस्कोम्बमें आनेके तुरन्त ही बाद उसने बमके रूपमें युद्धके एक साधनका आविष्कार किया। लेकिन, कालेजके मैदानमें एक मास्टरसे दागकर उसने नियम का उल्लंघन किया। यह भारी अपराध था, जिसके कारण उसे स्कूलसे खारिज होने की पूरी संभावना थी, लेकिन उसे नजरंदाज कर दिया गया। इसके बाद उसने अपना सारा समय पढ़ाईमें लगाना शुरु किया, और दो सालके भीतर ही सफलतापूर्वक परीक्षा पास कर वह तोपखानेका एक तरुण अफसर बन गया।

पटिंगर भारतके लिये रवाना हुआ। उसका चाचा उस समय बम्बई प्रेसीडेंसीमें नियुक्त था। तरुण पटिंगरने भी वहीं काम करनेका निश्चय किया। अपनी पलटनके मुख्य केन्द्रमें पहुँचकर उसने बड़े उत्साहके साथ अपने कर्तव्यको सविस्तार सीखना शुरु किया। अपने पेशेके ज्ञानको प्राप्त करनेमें उसने बहुत दिलचस्पी प्रदर्शित की, खासकर भारतकी भाषाओंपर अधिकार प्राप्त करनेमें उसने विशेष योग्यता का परिचय दिया।

जल्दी-जल्दी तरक्की करते, बहुत दिन नहीं बीते, कि उसे राजनीतिक (कूटनीतिक) विभागमें एक स्थान मिला। पटिंगर जैसे महत्वाकांक्षी तरुण सैनिकके लिये इस तरहका शान्तिपूर्ण काम प्रिय नहीं हो सकता था। उसे उस समयका जीवन कुछ खटकनेवाला लगा।

लेकिन, यह अवस्था कुछ ही समय तक रही। फिर उसे मनचाहे काम में लगनेका मौका मिला। उस समय भारतवर्षकी पश्चिमोत्तर सीमाके बाहर ऐसी घटनायें घट रही थीं, ऐसी बेचैनी फैली थी, जिससे भारतके अंग्रेज स्वामियोंको भी चिन्ता हो गई। अंग्रेजोंने यह बहुत जरूरी समझा, कि अफगानिस्तानमें क्या हो रहा है, उसका ठीक-ठीक पता मिले। इसके लिए, एक ऐसे अफसरकी जरूरत पड़ी, जोकि बहादुर तथा विश्वासपात्र हो, और साथ ही इस खतरेके कामका बोझा खुशीसे उठानेके लिये तैयार हो। लफ्टेनेंट पटिंगरको जब यह पता लगा, तो उसने तुरंत अपनी सेवायें अर्पित कीं, और उसे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब उसे स्वीकार कर लिया गया।

इस प्रकार १८३७ ई० में तरुण पटिंगर इस खतरनाक काम पर चला। उसके साथ कुछ थोड़ेसे अनुचर थे। अपनेको छिपानेके लिये उसने देशी घोड़ोंके सौदागरका भेष बना, वही अपनी यात्राका उद्देश्य बतलाया। काबुल शहर तक पहुँचनेमें उसे कम कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। वहाँ पहुँचनेके बाद उसने मुसलमान सैयद बनना ठीक समझा, क्योंकि इस प्रकार वह हिरातके किलाबन्द नगरमें आसानीसे पहुँच सकता था। हिरातको "भारतकी कुंजी" कहा जाता था, क्योंकि भारतके जानेवाले सारे रास्ते इसी भूमिमें आपसमें मिलते थे। मुश्किलसे वह काबुल छोड़ अभी बहुत दूर नहीं गया था, कि कई खतरोंका उसे मुकाबिला करना पड़ा।

मिलनेवाले कितने ही यात्रियोंने उसपर सन्देहकी नजर करके बेढंगे सवाल किये। इसके बाद एक और जबर्दस्त कठिनाई सामने आई। एक हजरबारा सरदार याकूब बेगके देशमें वह पहुँचा। वह सभी यात्रियों पर भारी महसूल लगाता, और कितनी ही बार विदेशियोंको गुलाम बनाकर बेंच देता था। अपने इलाकेमें पहुँचते ही पाटिंगर और उसके साथियोंको याकूब बेगने एक किलेमें बन्द कर दिया। वहाँ रहते हुए उनसे धर्म और दूसरी कितनी ही बातोंमें इतने सवाल जवाब किये गये, कि वह खतरे में पड़ गये। एक समय गलतीसे उन्होंने सवालका ऐसा जवाब दिया, जिससे जान पड़ा, कि उनका भेद खुल जायेगा। लेकिन अन्तमें अपनी सूझ और सद्यः प्रतिभाके कारण उसने ऐसा संभल कर जवाब दिया, कि याकूब बेगने वहाँसे जानेकी इजाजत दे दी। बेगको एक नये ढंगकी बन्दूक भेंट कर आठ दिनके बन्दी जीवनके बाद वह वहाँसे आगेके लिये रवाना हो गया।

मुश्किलसे रवाना हो, इस तरह बच निकलनेके लिये वह अपनेको धन्य समझ रहे थे, इसी समय उनके पीछे कितने ही आदमी दौड़े दौड़े आये और उन्होंने लौटनेके लिये कहा। आज्ञा माननेके लिये मजबूर हुये, और भावी दुष्परिणामसे उनका हृदय काँप रहा था। लेकिन जल्दी ही पता लग गया, कि क्यों उन्हें बुलाया जा रहा है। जैसे ही वह बेगके पास

पहुँचे, कि गोली दगी और इसके बाद हर्षका नारा बुलन्द हुआ। पटिंगरके सलाम-अलैकका जवाब देते हुये याकूब बेगने कहा—

"अब तुम जा सकते हो। हमें तुम्हारी जरूरत नहीं है। मैंने तुम्हें इसलिये बुलाया था, कि इस बन्दूकको दाग दो, और वह दग गई।"

पटिंगर और उसके साथी अब फिर रवाना हुये, और अगस्तके मध्यमें अपने गंतव्य स्थान (हिरात) पर पहुँचते ही फिर सत्यानाशकी घड़ी सामने आई, और एक बार करीब-करीब वह गुलाम बनाकर ले जा से गये थे। बिना हथियारके वह शहरके किलेके बाहर घूम रहे थे, इसी वक्त दास-स्वामियोंके एक दलने उन्हें पकड़ लिया। पटिंगरने जरा भी घबराहट नहीं दिखलाते, कहा कि हमारी सहायताके लिए लोग आ रहे हैं, जिसपर पकड़ने वालोंने उन्हें छोड़ दिया।

इस समय हिरातपर शाह कामरांकी हकूमत थी, और बाकी अफगानिस्तानपर दोस्त महम्मदका शासन था। "भारतकी कुंजी" में कुछ महत्वपूर्ण घटनायें घटने वाली थीं। चार साल पहले ईरानके बादशाहने लोभभरी नजरसे हिरातकी ओर देखा था। उसने आक्रमण किया, लेकिन पूरी तौरसे हारकर हटना पड़ा। उसने फिर हिम्मत की थी। जिस समय एल्ड्रेड पटिंगर उस शहरमें दाखिल हुआ, उसी समय रूसके प्रोत्साहन और सहायतासे ईरानी लोग नगरको घेरनेकी तैयारी कर रहे थे; जिसका उद्देश्य था भारतपर आक्रमण करनेके लिये रास्ता साफ करना। (एशियामें रूस और इङ्गलैंडकी प्रतिद्वन्दिता अब पूरी तौरसे शुरू हो गई थी)।

मुसलमानी भेसमें पटिंगर हिरातमें रहने लगा। सितम्बरमें जब शाह कामरान और उसका वजीर यार महम्मद एक सैनिक अभियानसे लौटे, तो पटिंगरने यार महम्मदसे भेंट करने की प्रार्थना की। वजीर अच्छी तरह मिला, और कुछ पिस्तौलोंको भेंटके तौरपर स्वीकार किया। इसके बाद पटिंगर कामरानसे मिला। उसने भी दोस्ती दिखलाई, जिसपर उसका संरक्षण प्राप्त कर उसने अपने असली रूपको प्रकट कर दिया, और बिना किसी कठिनाईके खुलकर रहने लगा।

थोड़े ही समय बाद खबर मिली, कि ४० हजार ईरानी सेना आगे बढ़ रही है। यद्यपि अज्ञात खतरे सामने थे, लेकिन अब वह अवसर पटिंगरको मिला था, जो उसे बहुत पसन्द था। उसने समझ लिया, कि जब तक हिरात शाह कामरानके हाथमें है, तब तक भारतके लिये खतरा नहीं है। वह यह भी जानता था, कि अगर एक बार यह ईरानियों और रूसियोंके हाथमें चला गया, तो अंग्रेजोंके लिए खतरेकी बात हो जायेगी। उसके युद्ध-प्रेमने हृदयमें उमंग मारी, और मनमें सोचा कि क्यों न मैं अपनी सेवाओंको हिरातकी प्रतिरक्षाके लिये अर्पण कर दूँ? उसने वैसा ही किया और शाहने बड़ी खुशीसे उसे स्वीकार किया। तुरन्त ही हिरातियोंने अपनेको ईरानियोंसे घिरा पाया, उन्हें चारों ओर निराशा दिखाई पड़ने लगी। इस वक्त उन्होंने इस खतरेसे बचनेके लिये पटिंगरकी ओर देखा।

योग्यता और स्वाभाविक साहसके अतिरिक्त पटिंगरकी सैनिक शिक्षा इस वक्त बड़े कामकी थी। अब हिरातकी प्रतिरक्षामें वह प्रमुख व्यक्ति था। शाह कामरानकी सेनाको संगठित करनेमें वह लगातार प्रयत्न करता रहा। उसने नगरकी किलाबन्दी मजबूत की। किसमसके दिन आये, लेकिन अभी भी ईरानी शहरके भीतर घुसनेमें सफल नहीं हुये। इसी समय शाह कामरानको कुछ घबड़ाहट पैदा हुई, उसने देखा, कि भूखके कारण शायद हमें आत्म समर्पण करना पड़े। इसपर उसने ईरानियोंके पास दूत भेजकर यह जानना चाहा कि कुछ शर्तोंपर क्या सुलह हो सकती है? लेकिन, इस कामके लिये जानेकी किसी हिरातीकी हिम्मत नहीं हुई। कमरानने अन्तमें पटिंगरसे पूछा और उसकी स्वीकृतिपर यह काम उसके जिम्मे दिया गया। ईरानियोंके पास जानेके बाद पटिंगरने देखा, कि ईरानी शाह बिना शर्त आत्म-समर्पणके सिवा और किसी बातको माननेके लिये तैयार नहीं। उसको यह जानकर और भी भारी क्रोध आया, कि कामरानने अनुकूल शर्तोंके साथ सन्धि करने मात्रके लिये मुझे दूत बनाकर भेजा है। पौन घन्टे तक बातचीत करनेके बाद उसने दूतको हिरात लौटनेके लिये छोड़ दिया।

बहुत देर नहीं हुई, कि ईरानियोंको मालूम हो गया, कि हिरातियोंके जबर्दस्त प्रतिरोधका कारण यही अंग्रेज है। उन्होंने शाह कामरानको फोड़कर उसे हटानेकी कोशिश की। पर उसमें सफलता नहीं मिली। कुछ महीने बीत गये, लेकिन हिराती अब भी बहादुरीके साथ मुकाबिला कर रहे थे। इस समय अनेक बार पटिंगर मौतके मुंहमें पड़नेसे बाल-बाल बचा था। एक दिन एक गोला उस घरके पड़ोसवाले घरपर गिरा, जिसमें वह रहता था। यद्यपि उसके पड़ोस वाले मारे गये, लेकिन पटिंगरका बाल भी बाँका नहीं हुआ। दूसरे समय वह दीवार गिर पड़ी, जिसपर वह खड़ा था। उसके चारों ओर पत्थरकलाकी गोलियां बरसने लगीं, जिनसे वह घायल हो गया। यद्यपि बराबर खतरेमें घिरा रहते भी वह प्रसन्न बदन रहता था।

अब वह समय आ गया था, जब तरुण अंग्रेजकी क्षमताकी अत्युग्र परीक्षा होनेवाली थी। और जब चकित हिरातियोंको वह कर दिखाना था, कि एक दृढ़ आदमी क्या कुछ कर सकता है। अपने घिरावेको बेकार देखकर जून १८३८ ई० में ईरानियोंने नगर पर कब्जा करनेके लिये जबर्दस्त प्रयत्न करना चाहा। सर जान केयने लिखा है—"हिराती बिल्कुल निराश हो गये थे। वजीर यार मुहम्मद हिम्मत छोड़नेके लिये तैयार था, उसके अनुचर हताश से हो चुके थे। भोजन दुर्लभ, पैसा दुर्लभ था। सभी चीजों का अभाव था, सिवाय इसके कि उस अकेले अंग्रेजका दृढ़ साहस अब भी उसके साथ था।" २५ जूनको हिरातके ऊपर जबर्दस्त प्रहार हुआ। यद्यपि यह एकाएक हुआ था, लेकिन इसकी सम्भावनाका पता लग चुका था। पटिंगरने पहले हीसे सचेत कर दिया था, लेकिन उसकी पर्वा न करके यार मुहम्मद अपने घरमें चुपचाप बैठा था। इससे हिरातियोंको विश्वास था, कि अभी सिरपर खास खतरेके आनेका डर नहीं है। आक्रमणके आरम्भ होनेके बाद जब गोलाबारी थोड़ी कम हुई, तब भी अधिकांश सिपाही अपनी अज्ञानताके कारण सोये पड़े थे। जब दूसरी बार भयंकर गोलाबारी शुरू हो गई, तब वास्तविक खतरेका पता लगा, और वह अपनी जगहोंकी

और दौड़े। उन्हें मालूम हुआ, कि हमारी प्रतिरक्षाकी दीवारों पर पांच जगहोंसे प्रहार किया जा रहा है।

हिरातके सत्यानाशकी घड़ी आ चुकी थी। नगरके लिये यह भला ही हुआ, जो कि इस समय वजीर जैसे कमजोर और किंकर्तव्यविमूढ़ आदमी को रक्षक सिपाहियोंका पथ-प्रदर्शन नहीं करना था। हिरातियोंने पांचमेंसे चार जगहोंसे ईरानियोंको बहादुरीके साथ मार भगाया, लेकिन पांचवीं जगह दीवारमें एक भयंकर छेद हो गया। देर तक जबर्दस्त संघर्ष जारी हुआ, जिसमें वजीरकी तरह सैनिकोंकी भी हिम्मत टूटने लगी। इस संकटके समय भाग्यके पलटा खानेका साधन पाटिंगर हुआ। अगर वह न होता, तो होने वाली भारी विजय भयंकर पराजयमें परिणत होती।

प्रतिरक्षक एकके बाद एक धराशायी हो रहे थे। इससे प्राप्त हुई सुविधासे आक्रमणकारी लाभ उठा रहे थे। फिर समय आया, जबकि प्राकार करीब-करीब-भग्न हो चुका था। पाटिंगर और वजीर दोनोंने तुरन्त खतरनाक स्थितिका अनुभव किया लेकिन हुआ क्या? पटिंगर खतरेके लिये तैयार था, जबकि वजीर उसके लिये बिलकुल असमर्थ था। पटिंगर उठकर हिम्मत टूटे सैनिकोंमें नया साहस भरनेके लिये भग्न स्थान की ओर दौड़ा, वजीर डरके मारे आशा छोड़ बैठ गया। पटिंगर समझता था, कि वजीर का यह बर्ताव बिलकुल सत्यानाशी है। सोचने के लिये एक क्षण भी वहां नहीं था। वह दौड़कर वजीर के पास पहुँचा और क्रुद्ध होकर उससे भग्न-स्थान की ओर बढ़ने अथवा अपने लड़केको सैनिकोंमें उत्साह भरनेके लिये भेजनेको कहा। पहले उसकी बात सुनी अनसुनी कर दी गई। उसने फिर और फिर दोहराया। अन्तमें वजीरने बात मानी और आगे बढ़कर उसने सैनिकोंको लड़नेका हुकुम दिया। थोड़े ही समय बाद फिर हिम्मतने उसका साथ छोड़ दिया, और जहाँ पहले बैठा था, वहाँ लौटकर फिर निराश हो गया। सैनिक पीछे हटने लगे, जिसे देखकर पटिंगरके कहनेपर फिर वजीर लौटा, और फिर हिम्मतने उसका साथ छोड़ा।

यह ऐसी बात थी, जिसका सहन करना पटिंगर की बर्दाश्तसे बाहर था। अब तीसरी बार कहनेपर पटिंगरने देखा, कि समझाना और बुरा-भला कहना बेकार है। तब उसने दूसरे तरीके अख्तियार किये। अस्तव्यस्त जल्दी-जल्दी पीछे हटते सिपाहियोंकी ओर दिखाते तथा उसकी कायरताके लिये धिक्कारते पटिंगरने वजीरकी बाँह जोरसे पकड़कर उसे भग्न स्थानकी ओर घसीटा। फिर हुकुम दिया, कि सैनिकोंके संचालनमें मेरा साथ दे। इसका असर जादूकी तरह हुआ। पटिंगरको बगलमें लिये यार मुहम्मद सामने गया, और उसने अपने आदमियोंको प्रतिरोध करनेके लिये जोर दिया। ईरानियोंका मुकाबिला फिर नये उत्साहके साथ शुरू हुआ। फिर एक समय आया, जबकि जान पड़ा, यह सब कुछ करनेपर भी शत्रु विजयी होगा। हिरातियोंमें हिचकिचाहट दिखाई देने लगी। इसे देखकर फिर प्रोत्साहित किये हुये वजीरने एक लम्बा डन्डा हाथ में ले पागलकी तरह दौड़कर सबसे पीछे हटते आदमियोंको पीटकर दीवारकी ओर खदेड़ा। हिराती अब ऐसी स्थितिमें थे, कि चाहनेपर भी वह पीछे नहीं हट सकते थे, इसलिये वह आगे दौड़े, और कुछ ही मिनटोंमें दीवारसे कूदकर आक्रमणकारियोंके ऊपर टूट पड़े।

भाग्य ने पलटा खाया। विजय हिरातियोंके हाथमें हुई। इस एका-एक आक्रमणसे घबराकर ईरानी १७०० हताहत आदमियोंको छोड़कर तितर बितर हो भागे। हिरातका नगर बचा लिया गया। ईरानी और रूसी भारतकी ओर बढ़नेकी जो भी योजनायें बनाये हुये थे, वह पूरी तौरसे विफल हुईं। यह बहुत बड़ी सफलता थी, एल्डे्ड पटिंगरकी वीरताके बिना यह कभी नहीं हो सकती थी।

"भारतकी कुन्जी" पर अधिकार प्राप्त करनेमें असफल होनेके बाद भी थोड़े समय तक शत्रुने अपने डेरे को वहाँ से नहीं हटाया, हिराती भी अभी खतरे से बाहर नहीं थे। ईरानियोंने थोड़े समय तक नगरपर घिरावा रखने की कोशिश की, समझा, भूखके मारे शायद हिरातवाले आत्म-समर्पण करदें। यद्यपि निवासियोंको भोजन के अभावमें बहुत दुःख उठाना पड़ा,

बहुत सी और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, जिसमें हाथ बंटानेके लिये पटिंगर भी तैयार था। पर यह थोड़े ही समय तकके लिये रहा। अन्तमें ईरानी जल्दी-जल्दी यह कहते हटनेके लिये मजबूर हुये, कि ब्रिटिश सरकारने पारस की खाड़ीमें खुद हमारे देशमें युद्ध करनेके लिये एक जंगी बेड़ा भेजा है।

यद्यपि इस प्रकार तूफान सिरसे हट गया, लेकिन पटिंगरने तुरन्त हिरात नहीं छोड़ा। नगरमें व्यवस्था कायम करनेके लिये कितने ही महीनों तक वह शाह कामरानको सलाह और सहायता देता रहा। इसी बीच दूसरी जगह ऐसी घटनायें घटीं जिनमें उसे पड़ना था।

जैसा कि पहले कहा गया है, इस समय हिरात छोड़कर बाकी सारा अफ़गानिस्तान दोस्त मुहम्मदके हाथमें था। १८३६ ई० में दोस्त मुहम्मदके राज्य में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो गई, जिसका कारण ईरान और इसका खतरा ही नहीं था, बल्कि पंजाब के शक्तिशाली शासक रणजीतसिंहके साथ हो रही लड़ाई भी थी। रणजीतसिंहने पेशावर शहरको दोस्त मुहम्मदसे छीन लिया। यह सब देखकर दोस्त मुहम्मद अंग्रेजोंके साथ मैत्री करनेके लिये बड़ा उत्सुक हो पड़ा। गवर्नर-जेनरल लार्ड आकलेण्ड जानता था, कि ईरान और रूसकी चाल वस्तुतः भारतके खिलाफ है। वह अफगान अमीरके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये तैयार था। इसी अभिप्रायसे उसने १८३७ ई० में अपने एक विश्वासपात्र अफसर कप्तान अलेक्जेंडर बर्न्सको बातचीत करनेके लिये काबुल भेजा।

अलेक्जेंडर बर्न्स मोंटरोजमें १८०५ में पैदा हुआ था। उसका बाप अपने इलाके में काफी प्रभाव रखता था। उस बापके प्रभावसे बेटेने अपने भावी जीवनके लिये काम स्वीकार किया। उस वक्त मोंटरोजकी ओरसे पार्लियामेण्टमें जोजफ ह्यूम मेम्बर था, जो कि पहले भारतमें एक प्रसिद्ध अफसर रह चुका था। अपने इलाकेमें बर्न्स ह्यूम का जबर्दस्त समर्थक था। उसने ह्यूमसे अपने लड़कोंके लिये कोई अच्छी जगह प्राप्त करनेकी आशाकी, ह्यूमके परामर्शपर अलेक्जेंडर बर्न्सको ईस्ट इण्डिया

कम्पनीकी नौकरी पानेका अवसर मिला। बर्नेसके आरम्भिक जीवनमें कोई ऐसी असाधारण बात नहीं दिखलाई दी, जिससे उसके यात्रा और साहसिक कार्योंके प्रति प्रेमका पता लगता। एक जीवनी-लेखक कहता है—वह होशियार और कुछ बातोंमें लगनवाला लड़का था। अपनी उमरके मुताबिक होनहार बच्चोंकी तरह उसने ग्रीक-लेटिन भाषायें और गणितको काफी पढ़ा था। दूसरे साधारण विषयों में भी उसकी काफी गति थी, और हर समय बात या मुक्के से मुकाबिला करने के लिये तैयार रहता था। सचमुच वह एक असाधारण प्रतिभा न होते भी बड़ी हिम्मतका होनहार तरुण था, और उसमें वह बातें मौजूद थीं, जो आदमीको वीर बनाती हैं।

बचपन खतम हुआ। जब करीब १६ वर्षका हो गया, तो वह छैला बनकर लन्दन गया। जहाँ एक पूर्वी भाषाके प्रोफेसरके नीचे अध्ययन करनेके बाद उसका नाम पैदल पल्टनके तरुण अफसरके तौरपर लिखा गया, और उसके बाद ही वह बम्बईके लिये रवाना हुआ।

भारतमें आनेके बाद बर्नेसने अपना सारा समय अपने पेशे सम्बन्धी बातोंके अध्ययनमें लगाया, तथा हिन्दुस्तानी, फारसी और दूसरी भारतीय भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करनेके लिए खूब मेहनत की। १८२३ ई० में, जब कि वह सिर्फ १८ वर्ष का था, भाषाओंके सीखनेमें उसकी इतनी गति हो गई, कि उसे दुभाषिया, और सूरतमें रक्खी प्रथम अतिरिक्त बटालियन का अड्जुटेंट बना दिया गया। इतनी जल्दी आगे बढ़नेका मौका पानेसे हर्षातिरेक होना स्वाभाविक ही था। बर्नेसने अपनी एक चिट्ठीमें अपने बापको लिखा था—"देखिये, आपका पुत्र अलेक्जेंडर अपनी आयुके लिहाजसे पृथिवी पर अत्यन्त सौभाग्यवान् पुरुष है, जिसे प्रतिमास ५०० से ६०० रुपये भत्ते मिलते हैं।"

इसके बाद बर्नेस और भी अधिक महत्वपूर्ण पदपर नियुक्त किया गया। अपने सैनिक कर्त्तव्योंको पालन करनेके अतिरिक्त उसने देशी भाषाओंके पढ़नेमें और भी मेहनत की। १८३० ई० तक एक चतुर और योग्य अफसर के तौरपर उसकी इतनी ख्याति हो गई, कि सरकारने उसे कुछ खतरेके तथा

मुश्किल कामपर नियुक्त किया। उसे पंजाबकी राजधानी लाहौरमें रणजीतसिंहके पास इङ्गलैंडके राजाकी ओरसे दूसरी भेटोंके साथ-साथ कितने ही घोड़े पेश करने थे। लेकिन, ये बाहरी बातें थीं, असली काम जो उसे करना था, वह था, जिस भूमिसे वह गुजरे, उसके बारेमें पूरी जानकारी प्राप्त करे और रहस्यको अधिकारियोंके पास सूचित करे। उसे निचली सिन्धु-उपत्यकाके इलाकोंकी भी जांच पड़ताल करनी थी, जहाँ वह सिन्धके अमीरोंको भेंट ले जानेके बहाने गया।

यह काम बर्नेसकी रुचिके बिलकुल अनुकूल था। तरुण पटिंगरकी तरह वह भी अपने निष्क्रिय से जीवनसे थक गया था। उसकी आकांक्षा थी यात्रा करे, अज्ञात स्थानों का पता लगाये, और अधिक उत्तेजनापूर्ण घटनामें अपना जीवन बिताये। हरेक कदमपर यह रास्ता खतरोंसे भरा था, क्योंकि उन दिनों जिस इलाकेसे बर्नेसको जाना था, उसके बारेमें यूरोपियनोंको कुछ मालूम नहीं था। उसे असंख्य बाधाओं और कठिनाइयों के बीचसे अपना रास्ता निकालना था। सिंधके अमीरोंको उसपर सन्देह हुआ। एक बार उन्होंने जबर्दस्ती उसे अपने देशसे बाहर निकाला, और दूसरी बार उसे भूखा मारना चाहा। तो भी वह अपने उद्देश्यको पूरा करने में सफल हुआ, जिसके लिए लौटने पर गवर्नर-जेनरलने उसे बहुत साधुवाद दिया।

अब बर्नेसको उससे भी अधिक खतरनाक कामको हाथमें लेना पड़ा। अंग्रेजोंको सन्देह हो गया था, कि रूसकी नजर भारत पर है, बर्नेस जानता था, कि गवर्नर-जेनरल वक्षु (आमू दरिया) और कास्पियन समुद्रके आस-पासके देशोंके बारेमें पता पानेके लिये बहुत उत्सुक हैं, और यह भी, कि क्या इन रास्तोंसे किसी शत्रु सेनाके आनेकी सम्भावना है। उसने हिम्मत के साथ अपनी सेवायें इस कामके लिये अर्पित कीं, जिसको बड़ी खुशीसे स्वीकार कर लिया गया। अब देशी आदमीका भेस बनाकर तीन साथियों के साथ वह इस अज्ञात भूमिकी ओर चला।

(बर्नेसने इस यात्रा पर स्वयं एक बड़ी सुन्दर पुस्तक लिखी है, जिसके बारेमें अधिक कहना यहां सम्भव नहीं है।) जनवरी १८३२ ई० में उसने दिल्ली छोड़ी। वह और उसके साथी पंजाबके रास्ते काबुल पहुंचे। फिर हिन्दूकुश पर्वतमालाको पार कर बुखारा नगरमें, जहाँसे तुर्कमान मरुभूमि के बीचसे हो मेर्व और कास्पियनके तट पर पहुँचे। फिर ईरानकी राजधानी तेहरान गये। वहाँसे फारसकी खाड़ीमें पहुंच जहाजसे बम्बई आये, जहाँसे कलकत्ता गवर्नर जेनरलके पास। उसने नीतिके सम्बन्धमें अपने कुछ सुझावों के साथ यात्राका विवरण गवर्नर-जेनरलके सामने रखा। यह जानकर उसे अत्यन्त हर्ष और आश्चर्य हुआ, जब गवर्नर-जेनरलने उसे इंग्लैण्ड जाकर वहाँ सरकारके सामने ये सारी जानकारियाँ रखने के लिए कहा। वह बिना जरा भी देर किये इंग्लैण्डके लिए रवाना हो गया। देशमें आने पर उसने देखा, कि मेरी ख्याति पहले ही वहाँ पहुँच चुकी है। मध्य एशियामें जो काम किया था, उसके लिये उसका जो स्वागत नहीं हुआ, उसकी वह आशा भी नहीं करता था। जहाजसे उतरनेके समयसे ही हर जगह उसका विशेष तौरसे स्वागत किया गया। राजासे लेकर देशके बड़े-बड़े लोग बुखाराके बर्नेससे बात करनेके लिए लालायित थे। उस समय लिखे हुये एक पत्रमें बर्नेसने कहा था—"सभी मेरे ऊपर मेहरबान हैं।...यह हैं यात्री, यह हैं मि० बर्नेस, यह हैं हिन्दुस्तानी बर्नेस, और क्या-क्या मैं नहीं सुनता।... मैं सम्मान और मेहरबानीके भारसे मर गया हूं।" १८३५ ई० तक वह इंग्लैण्डमें रहा। फिर बम्बई लौटने पर भी वह महावीरके तौर पर सम्मानित होता रहा।

यह था आदमी, जिसे १८३७ ई०में गवर्नर-जेनरलने काबुल जानेका काम सौंपा। अच्छा हुआ होता, यदि बर्नेसकी सलाहोंका अनुसरण किया गया होता।

काबुलमें आनेपर उसने मामला बहुत गम्भीर देखा। दोस्त मुहम्मद रूस और ईरानके साथ अपनी स्वतन्त्र स्थिति रखना चाहता था। वह यह भी चाहता था, कि पूर्वसे रणजीतसिंहका दबाव रुके। इस प्रकार अंग्रेजोंके

लिए अमीर-काबुलके साथ मैत्री करनेका बड़ा सुन्दर अवसर था, यदि वह उसकी शर्तोंको माननेके लिए तैयार होते। शर्त यही थी, कि काबुलपर किसी तरह भी आक्रमण होतो उसकी रक्षा की जाये। बर्नेसने तुरन्त भाँप लिया कि प्रस्ताव बिलकुल ठीक है, खास करके इसलिए कि अंग्रेज अफगानिस्तान के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। वह यह भी जानता था कि इस वक्त काबुलमें जब यह काम कर रहा है, इसी समय रूसके आदमी दोस्त मुहम्मदको अपनी ओर खींचनेकी कोशिश कर रहे हैं। उसने गवर्नर-जेनरल को बहुत जोर देकर कहा, कि अमीरके प्रस्तावको मान लिया जाये।

लेकिन दुर्भाग्यसे उस समय लार्ड आकलेण्ड सेंट पीतर्सबर्गके मन्त्रि-मण्डलकी योजनाओं और बारीक चालोंकी डरानेवाली कहानियाँ और रूसी सेनेसे अफगानिस्तानमें फैले अत्याचार की कहानियोंपर कान दे रहा था। कलकत्तामें ऊँचे-ऊँचे पदाधिकारियोंने सलाह दी, कि अफगानिस्तानके सिंहासनपर हमारी सरकारके लिये मित्र अमीरकी ही आवश्यकता नहीं है, बल्कि हमें वहाँ ऐसे आदमीकी आवश्यकता है, जो हमारे हाथोंका खिलौना हो, और हमारी तथा केवल हमारी ही बात वहाँ चले।

इस प्रकार कप्तान बर्नेसकी ठीक और ठोस सलाहको छोड़कर गवर्नर जेनरलने निश्चय किया, कि दोस्तमुहम्मदको गद्दीसे उतारकर सिंहासनच्युत शाह सुजाको — जो कि निर्वासितहो अंग्रेजोंकी रक्षामें था—- अफगानिस्तान की गद्दीपर बैठाया जाये। देर नहीं हुई, अफगानिस्तानके खिलाफ अंग्रेजों ने युद्ध-घोषणा कर दी, और १८३८ ई० के अन्तमें २०हजारकी एक बड़ी सेनाने गवर्नर जेनरलकी घोषणाको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए काबुल की ओर प्रस्थान किया। बर्नेस थोड़े ही समय पहले अफगानिस्तानसे लौट आया था। उसकी सेवाओंके लिए उसे लफ्टनेन्ट-कर्नल बना दिया गया था, और शाह सुजाके दरबारमें नये नियुक्त दूत विलियम मैकनैटनका सहायक बनकर इस सेनाके साथ उसे जाना पड़ा। सेनामें सैनिकोंके अलावा बड़ी भारी तादादमें लग्गू-भग्गू भी थे। रास्तेमें कितनी ही तकलीफों और रुकावटोंके बाद शत्रुकी सेनाको हराते अन्त में ६ अगस्त १८३९ ई० को

अंग्रेजोंकी फौजें काबुलकी दीवारोंके सामने पहुँची। दोस्त मुहम्मद वहाँसे भाग गया। अंग्रेजोंने काबुलपर अधिकार कर लिया। शाह सुजाको बड़ी तड़क-भड़कके साथ उसी गद्दीपर बैठाया गया, जिस परसे ३० वर्ष पहले उसे भगा दिया गया था।

अफगानिस्तानमें चारों ओर शांति दिखाई पड़ती थी। भारतकी अंग्रेजी सरकार अपनी सफलता पर फूली न समाई। अंग्रेजोंको अपने साहस पूर्ण काममें ही सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि वह समझते थे, कि अब भारतके ऊपर पश्चिमोत्तर सीमान्तकी ओरसे किसी आक्रमणके होनेकी सम्भावना नहीं रह गई। उन्होंने यह भी समझा, कि इतनी बड़ी सेना वहाँ रखनेकी आवश्यकता नहीं। शाह सुजाकी मददके लिए सिर्फ ८ हजार गोरे काले सिपाहियोंको रखकर बाकीको लौटा दिया गया।

कुछ समय ऐसे ही बीत गया। सर अलेक्जेण्डर बर्नेस काबुल दरबारमें अपने असैनिक कर्तव्योंका पालन करता रहा। कहींसे भी खतरेका पता नहीं लग रहा था, लेकिन शाह सुजाकी प्रजा पठान उसके विदेशी समर्थकोंको अच्छी निगाहसे नहीं देखते थे। दोस्त मुहम्मदने भी सर विलियम मैकनेटनके हाथमें अपनेको समर्पित कर दिया था, तो भी कुछ समय बाद खतरनाक अफवायें सुननेमें आने लगीं। यह पता लगते भी देर नहीं लगी, कि दोस्त मुहम्मदका लड़का अकबरखान अंग्रेजोंका जबर्दस्त दुश्मन है।

अन्तमें जिस भयंकर खतरेकी बातें सुनाई देती थीं, वह उठ खड़ा हुआ और एक जगहसे दूसरी जगह फैलता गया। अन्तमें २ नवम्बर १८४१ ई० को वह भयंकर रूपसे काबुल शहरमें फूट पड़ा। अब तक वहाँके अंग्रेज खतरोंके बारेमें दी गई सावधानियोंकी पर्वा नहीं करते थे। वह अपनी स्थितिको इतना मजबूत समझ, यह चाहते थे कि मैकनेटनको वहाँसे बुलाकर बम्बई भेज दिया जाये, और बर्नेसको उसका काम सौंप दिया जाये। १ नवम्बरकी रातको देशी दूत यह खबर लेकर आये कि विद्रोह तुरन्त भड़कनेवाला है। लेकिन, उनकी बातपर विश्वास नहीं किया गया। फिर उन्होंने प्रार्थना की, कि आप अंग्रेजी कैम्पमें चले जायें, या रक्षाके लिए एक गारद

तैनात कर दें। लेकिन बर्नेसने यह कहते हुए वैसा करनेसे इन्कार कर दिया कि मैं डरता नहीं। उसने उस समय इतनी बेपर्वाही दिखलाई, कि पर्वा न करके साधारण रीति से वहाँ आराम करने लगा।

अलेक्जेण्डर बर्नेसकी पृथिवीपर यही अन्तिम रात थी। अपने ऊपर अत्यधिक विश्वास करनेका मूल्य उसे अपने प्राणोंसे चुकाना पड़ा। सूर्योदयके समय तक काबुलकी सड़कें विद्रोहियोंके हाथमें चली गईं। इसके बाद दूसरे आदमीने आकर स्थितिके बारेमें बतलाया, तो भी वह लेटा रहा। उसने न उठने और न कपड़े पहननेको स्वीकार किया। अन्तमें जब शाह शुजाका वजीर आया, तो उसके स्वागतके लिये बर्नेसको तैयार होना पड़ा। पर अब समय बीत चुका था, क्योंकि विद्रोही अब हल्ला करते हुये उसके घरके चारों ओर जमा हो गये थे। वजीरने उसे बच निकलनेके लिये बहुत कहा, लेकिन उसने अपना स्थान नहीं छोड़ा और मैकनेटनको सिर्फ इतना ही सन्देश भेजा, कि सहायता भेजें और अपने जंगलेसे "क्रुद्ध उत्तेजित तथा खूंख्वार जंगली जानवरकी तरह" भीड़के सामने व्याख्यान दिया। पठान उसकी बात सुननेके लिये तैयार नहीं थे। वे अंग्रेजोंके खूनके प्यासे थे। वह किसी तरह भी अपने इस इरादेसे हटनेवाले नहीं थे। उन्होंने गोली दागनी शुरू की। बर्नेसका एक साथी उसकी बगलमें गोली खाकर गिर पड़ा। फिर उसने देखा, कि हमारे घुड़सवार डराये जा रहे हैं। उसने भीड़ को समझाया, और भारी रकम देनेका वचन दिया, यदि वह उसके प्राणोंको छोड़ दे। यह सुनकर उन्होंने बातचीत करनेके बहाने उसे नीचे बगीचेमें आनेके लिये कहा। उनमेंसे एकने कसम खाकर बर्नेसकी रक्षा का वचन देते कहा कि तुम्हें सुरक्षित स्थानपर मैं पहुँचा दूँगा। बर्नेसने देखा, कि मेरे बच निकलनेका यही एकमात्र रास्ता है। उसने बात मान ली। जैसे ही वह बगीचेमें पहुँचा, उसने अपनेको विद्रोहियोंके बीच पाया। जिस आदमीने कसम खा कर वचन दी थी, उसीने संकेत किया और कुछ सेकेंडोंमें ही बर्नेसकी बोटी-बोटी नोच ली गई। इस प्रकार ३६ वर्षकी कम उमरमें बहादुर अलेक्जेण्डर बर्नेस खतम हो गया।

विद्रोह और आगे बढ़ा। एकके बाद एक सर्वनाशका सामना करना पड़ा। अन्तमें स्थिति अपने चरम भयानक रूपपर पहुँची। अंग्रेजोंने शत्रुओंके आक्रमणको रोकनेका व्यर्थ प्रयत्न किया। अफगानिस्तानके दूसरे भागमें मौजूद अपनी सेनासे सहायता पानेकी उन्होंने व्यर्थ आशा की। समय आया, जब कि उनके पास रसद खतम हो गई, और नई रसदके कहींसे मिलनेकी आशा नहीं थी। वह भूखों मरनेके लिये मजबूर थे। जब अंग्रेजी सेना भारतमें लौटनेके लिये तैयारी कर रही थी, इसी समय अकबरखान आया। उसने एक दूत भेजकर अंग्रेजों के सामने प्रस्ताव रक्खा, कि कुछ शर्तोंके साथ अंग्रेजोंको अगले बसन्त तक यहाँ रहने दिया जा सकता है। उसने मेकनेटन और उसके मुख्य-मुख्य अफसरोंको बातचीत करनेके लिये बुलाया। यह बड़ा ही क्रूर फंदा था। मेकनेटन और उसका एक सहायक थोड़े से शरीर रक्षकोंके साथ बैठककी जगहपर गया। वह जैसे वहाँ पहुँचे, अकबरखाँने संकेत किया। गारदको घेर लिया गया। उसके साथीको पीछेसे पकड़ लिया गया। अकबरने स्वयं मेकनेटनको दाहिने हाथसे पकड़कर पिस्तौल खींच उसकी छातीमें गोली दाग दी।

इसके तुरन्त ही बाद मेजर एल्ड्रेड पटिंगर काबुल पहुँचा था। उसे अब अफगानिस्तानके मामलेमें अपना पार्ट अदा करना था। पटिंगर १८३६ ई० तक हिरातमें रहा था। वहाँकी सारी बातें गवर्नर-जेनरलको बतलानेके लिये वह भारत आया। हिरातमें जो कुछ उसने किया था, उसके लिये उसका बड़ा स्वागत हुआ। केईने लिखा है, कि जब वह गवर्नर जेनरल अक्लेण्डके कैम्पमें आया, तो उसकी लाई हुई खबरोंको सुनकर तथा हिरातमें उसकी बहादुरीके कामोंको जानकर आकलेण्ड बहुत खुश हुआ। भोजके समय बड़े अफसरोंके साथ खाना खानेके लिये एक दिन वह निमन्त्रित किया गया। मोअज्जिज मेहमान वहाँ जमा हो रहे थे, इसी समय एक "अफगान देशी" सकुचाया सा अजनबीकी तरह तम्बूके एक बाँसके सहारे अकेला खड़ा दिखलाई पड़ा। कुछ अफसरोंने समझा, कि उसको यहाँ आनेका कोई अधिकार नहीं है, जब कि हम हिरातमें अपनी

बहादुरी दिखानेवाले आदमीका स्वागत करनेके लिये यहाँ जमा हो रहे हैं। उन्होंने अफगानको वहाँसे हट जानेके बारेमें कहा। अभी वह विचार कर रहे थे, कि कौन उसे बाहर निकलवाये, इसी समय गवर्नर-जेनरल अपनी बहिन माननीया मिस एडनका हाथ पकड़े उस अजनबीके पास पहुँच कर बोला—"आओ तुम्हारी मुलाकात हिरातके वीर एल्ड्रेड पटिंगरसे करायें—"

अफगानिस्तानमें बड़ी गम्भीर घटनायें घटित हो रही थीं। ऐसे समय पटिंगर जैसे आदमीकी सेवाओंकी भारी आवश्यकता थी। थोड़े समय तक कलकत्तामें रहनेके बाद पटिंगरकी काबुलसे उत्तर कोहस्तानके इलाकेमें पोलिटिकल-एजेन्टके तौरपर नियुक्ति हुई। थोड़े से अफसरों और देशी सिपाहियोंके साथ वह लघमानके किलेमें जाकर रहने लगा। थोड़े से समय तक सब अच्छा रहा। लेकिन जब अफगानोंने शाह शुजा और अंग्रेजोंके खिलाफ बगावतका झण्डा उठाया, तो सबसे पहले जिन स्थानोंपर उन्होंने आक्रमण किया, उनमें पहला यह लघमानका किला भी था। थोड़ी ही देरमें उसका किला विद्रोहियोंने ऐसे घेर लिया, कि बच निकलनेका कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ा, लेकिन पटिंगरके धैर्यकी परीक्षा पहले भी हो चुकी थी। रातके अन्धेरेमें वह अपने साथियोंके साथ भागकर दो मील दूर उस जगह पहुँचनेमें सफल हुआ, जहाँ शाह शुजाकी एक पल्टन तैनात थी। यहाँ उसने उनका संचालन अपने हाथमें लिया, और कितने ही समय तक शत्रुओंको पास नहीं फटकने दिया। पर अन्तमें भोजन और पानीकी रसद काट दी गई, और भूखों मरनेके सिवा कोई चारा नहीं था। अब उन्होंने दुश्मनोंके बीचसे लड़ते हुये काबुल पहुँचनेका निश्चय किया। कोशिशकी गई, लेकिन परिणाम भयानक निकला। लघमानके किलेसे चले हुये आदमियोंमें से तीनको छोड़कर सभी इस प्रयत्नमें काम आये। पटिंगर बुरी तरहसे घायल हो काबुल पहुँचा।

मैकनेटनके मरने के बाद काबुलमें अंग्रेजों का अधिकार खतम सा हो चुका था। सेनाका कमाण्डर जेनरल एलफिन्सटन बीमार था, इसलिये अपने कामको सँभालनेमें असमर्थ था। साथ ही वह यह भी नहीं चाहता

था, कि दूसरा उसके कामको हाथमें ले। सैनिक अफसरोंकी यह हालत थी, उन्होंने अपने दूतकी हत्याका बदला लेनेके लिये कुछ भी नहीं किया। इसी बीच सारी अंग्रेजी सेना और उसके लग्गू-भग्गू, अफसरोंकी बीबी बच्चे तथा केम्पके साथ चलनेवाले कई हजार आदमी काबुलसे एकत्रित हुये, भूखे मरनेके लिये मजबूर थे। ऐसे समय अंग्रेजी केम्पके सभी लोगोंकी नजर मेजर पाटिंगरपर पड़ी। अगर उसका घाव भी कुछ अच्छा हो चला था। उसने इस भयंकर स्थितिमें अपने देशवासियोंका सहारा बनना स्वीकार किया। लेकिन हालत इतनी बिगड़ चुकी थी, कि हिरातका वीर भी दुर्भाग्यकी मारको रोक नहीं सकता था, और उसके उत्तम उदाहरणको देखकर भी अपाहिज से बन गये फौजि अधिकारियोंमें प्रेरणा नहीं आ सकी। मेकनेटनके मरनेके कुछ दिनों बाद एक युद्ध परिषद् बैठी। कमान करनेवाले अफसरोंके बहुमतने नगरको समर्पण करने तथा देशके भीतरसे सुरक्षित जाने देनेके लिये अफगानोंकी रक्खी हुई अत्यन्त अपमानजनक शर्तोंको मानना स्वीकार कर लिया। पाटिंगरने इसका जबर्दस्त विरोध करते हुये कहा, कि ऐसी शर्तोंको घृणा पूर्वक अस्वीकार कर देना चाहिये। पर उसके विरोधका कोई प्रभाव नहीं हुआ, और अन्तमें अकबरखानकी अत्यन्त दर्पपूर्ण शर्तोंको बड़ी नम्रताके साथ जरा भी संकोच किये बिना मान लिया गया। उसके अनुसार यह स्वीकार किया गया था, कि ६ को छोड़कर बाकी सारी तोपें पीछे छोड़ दी जायें, सारा खजाना समर्पित कर दिया जाये, तीन अफसरोंको जमानतके तौरपर रख दिया जाय और भारतके ऊपर हुण्डीके रूपमें काफी रकम अदा की जाये। इसके बदलेमें अकबर खानने उन्हें काबुलसे ८० मीलपर जलालाबाद तक सुरक्षित पहुँचा देनेकी जिम्मेवारी ली, जहाँ पर कि जेनरल सेल अँग्रेजी सेना लिये पड़ा था।

६ जनवरी १८४२ ई० को ये अभागे हिन्दुस्तानकी ओर हटने लगे। उस वक्त ४५०० सैनिक, ११००० केम्पके आदमी, मेकनेटन और सेलकी बीबियाँ तथा अफसरोंके बीबी-बच्चे काबुलसे छोड़कर चले। बर्फकी मोटी तह जमीन पर पड़ी हुई थी। सर्दी असह्य थी। चलना इतना मुश्किल था

कि दो दिन की यात्राके बाद वह सिर्फ १० मील चल पाए। खुर्द काबुल दर्रेमें प्रवेश करनेके स्थानमें एक ऊँची जगहपर उस शाम उन्होंने अपना कैम्प गाड़ा। मर्द, औरत, बच्चे, घोड़े, टट्टू, ऊँट सारे बर्फके ऊपर रात बितानेके लिये ठहरे। वहाँ न किसी तरहकी छाया थी, न ईंधन और न ही भोजन। अगले दिन उस भयंकर दर्रेमें सेना प्रवेश करने लगी, जो पाँच मील तक दोनों ओर खड़े पहाड़ोंके बीचसे जाता है। पहाड़ इतना संकरा है, कि सूर्य की किरणें उसमें मुश्किलसे कभी प्रवेश करती हैं। अकबरने, सवार सेनाके साथ वहाँ पहुँच कर कहा, कि यदि तीन और जामिनोंको दें, तो हम सीमान्त तक अंग्रेजोंको पहुँचा देंगे। जो जामिन दिए गये, उनमें पटिंगर भी था। अब वह अकबरका बन्दी था। फिर यात्रा शुरू हुई। जैसे ही वह एक और भयंकर जगहमें पहुँचे, विश्वासघाती शत्रुने ऊपरसे जबर्दस्त गोलाबारी शुरू की, जिसका परिणाम हुआ तुरन्त करीब तीन हजार आदमियोंका जानसे हाथ धोना। इस भयंकर स्थितिमें अंग्रेज कोमलाङ्गियों, कुछ अपनी गोदमें बच्चोंको लिये, गोलियों की वर्षामें भारी बर्फमें भागनेके लिए मजबूर हुईं। फिर दूसरा सबेरा हुआ। फिर शैतान अकबर प्रकट हुआ। उसने अबकी स्त्रियों, बच्चोंको भारत तक पहुँचाने का प्रस्ताव रक्खा, जिसका मतलब उन्हें बन्दी बनानेके सिवा और कुछ नहीं था। और भी भयंकर कठिनाइयोंमें चलानेका ख्याल छोड़कर उन्हें आठ अफसरोंके साथ अकबरके हाथमें दे दिया गया।

अकबरने असभ्यतम रूपमें जुल्म ढाये। बाकी बची-खुची असंगठित सेना आगे बढ़ी। पठान उनपर गोलियोंकी वर्षा करने लगे। परिणाम यह हुआ, कि जब वह दर्रेके अन्तपर पहुँचे, तो सिर्फ पाँच या छ सौ आदमी रह गये थे। अब भी पठान उन्हें क्षमा करनेके लिये तैयार नहीं थे। वह अपने छुरोंको लेकर उनपर दौड़े, उन्होंने भी बहादुरीसे मुकाबिला किया। लेकिन इसका कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि आगे एक और दर्रा था, जिसे खूनके प्यासे अफगानोंने घेर रक्खा था। इस जगह भयंकर संघर्ष हुआ, और अंग्रेजोंने सरसे कफन बाँधकर मुकाबिला किया। काबुलमें ही सेना का

बाकी सारा खतम हो गया। और सेनाका सिर्फ एक आदमी इस क्रूर और करुण कहानीको कहनेके लिये बच रहा। वह था डा० ब्राइडन, जो १३ जनवरीको जलालाबादके किलेकी दीवारोंके पाससे एक मरियल टट्टू पर बैठा भूखसे हड्डी-हड्डी हुआ नगरके दरवाजेकी ओर जाता दिखाई पड़ा।

अलेक्जेण्डर बर्नेसकी सलाहकी पर्वा न करके भारत की अंग्रेजी सरकारने अफगानिस्तानके सिंहासनपर शाह शुजाको बैठानेका जो निश्चय किया था, उसका यह भयंकर परिणाम भोगना पड़ा।

पटिंगरकी क्या हालत हुई? अकबरखान उसे बन्दी बनाकर ले गया। कुछ समय तक वह वैसे ही रहा। फिर अंग्रेजोंने बदला लेनेके लिये जेनरल जार्ज पोलकके नेतृत्वमें एक सेना भेजी, जिसने अगले सितम्बरमें अंग्रेजोंके अपमानके धब्बेको धो दिया, और अपने कामको सफलतापूर्वक पूरा किया। पहले दर्रेके हत्याकाण्डके कुछ दिनों बाद साठके करीब पुरुष, स्त्री और बच्चोंके साथ उसे अफगानिस्तानके भीतरी भागके एक किलेमें पहुँचाया गया। फिर उन्हें वहाँसे काबुलसे कुछ मील दूर तेजिनके किलेमें ले गए। जब अकबरने देखा, कि अंग्रेज सफलतापूर्वक राजधानीकी ओर बढ़ रहे हैं, तो उसने एकाएक हुकुम दिया, और वे जल्दी-जल्दी वृक्ष वनस्पतिहीन ऊँचे हिन्दूकुश पर्वतमालाके ऊपरसे समुद्रतलसे कई हजार फुट ऊपर बामियांके किलेमें ले जाये गये, जहाँ उन्हें उस बर्बर भूमिके सरदारोंको भेंट चढ़ाना चाहते थे।

उनके ऊपर जो आफतका पहाड़ इस समय ढाया जा रहा था, वह बहुत असह्य था। तो भी आदिसे अन्त तक वह उसे बहादुरीके साथ बर्दाश्त करनेमें सफल हुए। इसमें एलड्रेड पटिंगरकी असाधारण हिम्मतका भी काफी हाथ था, और यह उसीके साहसपूर्ण कदमका परिणाम था, जो कि बंदियोंको मुक्ति मिली। बामियानके किलेमें वह सालेह मुहम्मद नामके एक अफसरके अधीन रक्खे गये थे। वहाँ पहुँचते ही पटिंगरको पता लगा, कि इस आदमीको रिश्वत दी जा सकती है। उसने उसे एक बड़ी रकम देनेका वचन देकर बंदियोंको मुक्त करने तथा पास पड़ोसके कितने ही सर—

दारोंको अपनी ओर मिलानेके लिए तैयार किया। यह तै हो जानेपर उसने उस जगहके राज्यपालको अपदस्थ किया, और विद्रोहका झण्डा गाड़कर लोगोंको अधीनता स्वीकार करनेकी आज्ञा दी। यह था बड़े खतरेका कदम, लेकिन उसमें वह सफल हुआ। किलेकी रक्षा करनेकी तैयारी की गई। इसी समय एक सवार दौड़ा हुआ एक खबर लाया, कि काबुलके पास जेनरल पोलकने अकबरखानको हरा दिया। सौभाग्यने उनका साथ दिया, और वह अपने जेलखानेको छोड़नेमें कामयाब हुये। फिर भयंकर खतरोंसे होकर वह हिन्दुकुशके दर्रेके भीतरसे काबुलकी ओर भागे। कुछ ही दूर जानेपर सर रिचमण्ड सेक्सपियरसे उनकी मुलाकात हुई, जो ६०० आदमियोंके साथ उनकी मददके लिये भेजा गया था। अन्तमें काबुलमें उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते अपने देशवासियोंसे वह २० सितम्बरको जा मिले।

इस समय तक बदलेके लिये भेजी गई अंग्रेजी सेनाने कई सफल लड़ाइयाँ लड़के शत्रुको पूरी तरहसे हरा दिया था। अपना काम करके जेनरल पोलककी सेना भारत लौटी, पटिंगर भी इसके साथ था।

पटिंगरके बारेमें और बहुत कहना नहीं है। उसके दिन इने-गिने रह गये थे। कलकत्ता लौटकर उसने थोड़ी देर विश्राम किया। फिर उसने अपने चचा सर हेनरी पटिंगरसे मिलनेके लिये चीन जानेका निश्चय किया। रास्तेमें जब वह हांकांगमें ठहरा था, तो उसे बुखार आ गया और १५ नवम्बर १८४३ ई० को यह तरुण अफसर अपने जीवनकी बहुत सी सम्भावनायें लिये मृत्युके मुखमें चला गया।

## ७—सर चार्लस नेपियर (१७८२-१८५३ ई०)

"तैयार, हाँ, तैयार" यह उसके वंशका आदर्श वाक्य था, जिससे नेपियरके जीवनका अच्छी तरह परिचय मिलता है। आदिसे अन्त तक वह इस आदर्श वाक्यपर चलता रहा, तबसे ही जब कि वह १२ वर्षका लड़का था। कमरमें तलवार बाँधी, और बड़े सम्मानके साथ पूरी उमर बिताकर जब उसने जीवनका अन्त देखा, तब भी वह उसी तरह तैयार था।

१० अगस्त १७८२ ई० में लन्दनके व्हाइट हालमें वह पैदा हुआ। चार्लस जेम्स नेपियरका सबसे पुराना घर यहीं था। वह परिवारके १० लड़कोंमें सबसे बड़ा था। बाकीमें तीन युरोपकी लड़ाईमें वेलिंगटनके सर्वोत्तम के तौर पर प्रसिद्ध हुए।

उसके माँ-बाप दोनों बड़े ऊँचे कुलसे सम्बन्ध रखते थे। बाप कर्नल माननीय जार्ज नेपियर मेचिस्टनके जान नेपियरका वंशज था, जो कि गणितके लागरिथ्मका आविष्कारक था। दूसरी तरफ वह महान् मॉन्ट्रोज से सम्बन्ध रखता था। चार्लसकी माँ रिचमण्डके द्वितीय ड्यूककी लड़की थी। वह असाधारण औरत थी। उसके बारेमें कहा जाता है, कि "अपने दीर्घ जीवनके अन्त तक उसे अपने प्रति अपने बच्चोंका घनिष्ट स्नेह और सम्मान प्राप्त रहा।... उसकी प्रथम सन्तान चार्लस्के समय तो माँके प्रति और भी अधिक स्नेह था।"

जब चार्लस अभी तीन ही सालका था, तो उसका बाप डब्लिनसे १० मीलपर अवस्थित एक छोटेसे कस्बे केलब्रिजमें चला गया। यहाँ लड़का चार्लस ऐसी परिस्थितियोंमें बढ़ा, कि उसके हृदयमें कर्मठजीवन और साहस के प्रति प्रेम पैदा कर दिया। वह लड़का ही था, तभी अपने बापके नौकर लोकलिन मूर और अंग्रेज नर्स सूसनफ्रस्टससे सुनकर आयरलैण्डके जोशीले प्राचीन पँवाड़ोंको सुननेमें आनन्द लेने लगा। सूसन बड़े ही दृढ़ मनकी

अद्भुत औरत थी। वह बच्चेमें उच्चाकांक्षा और वीरताकी भावना पैदा करने में समर्थ थी।

चार्लेस इस समय बराबर अपने बापके साथ रहता था, जिससे ही उसे आरम्भिक शिक्षा मिली। इस प्रकार आरम्भ ही से उसे सैनिक जीवन की बहुत सी बातोंसे परिचित होने का मौका मिला। उसकी रुचि किधर है, उसे जाननेमें देर नहीं लगी। वह दस सालका था, उसी समय विचार में लीन रहने वाला बालक सैनिक इतिहास और जीवनियोंके पढ़नेकी ओर तीव्र रुचि रखता था। उसका भाई सर विलियमनेपियर कहता है, कि "इस समय प्लूतार्ककी लिखी जीवनियोंसे उसे यह जानकर हर्ष हुआ, कि मैं लघुदर्शी हूं क्योंकि मेरे पसन्दका लेखक कहता है, कि फिलिप, सेरतोरियस और हनिबाल एकाक्ष थे, और सिकंदरकी दोनों आँखें भिन्न रंगकी थीं।

बचपनमें भी हिम्मतको दिखलानेमें उसने कभी कमी नहीं की। कहा जाता है, एक दिन एक जंगली सा आदमी, आकारमें छोटा, पर हाथ-पैर में विशाल, दाढ़ी और बालमें जटायें पड़ी और गर्जने जैसी आवाज वाला घुमन्तू आदमी अपनी शक्तिका प्रदर्शन कर रहा था। कुछ देर बाद उसने अपनी ठुड्डी पर एक सीढ़ी रखकर पासमें बैठे हुए एक छोटे लड़केसे कहा, कि इसके ऊपर चढ़कर बैठ जाये। लड़का डरके मारे कांपने लगा। बापने चार्लस् नेपियरसे पूछा, क्या तू कर सकता है? थोड़ी देर वह चुप रहा। फिर उसने बापकी ओर देखकर कहा, "हाँ" और वह चढ़ गया। देखने वाले हर्षध्वनि करने लगे।

चार्लसका घरेलू जीवन १२ वर्षकी उमरमें खतम हो गया, जब कि उसने सैनिक जीवन अपनानेका निश्चय कर लिया। उस समयके रवाजके अनुसार बापने उसके लिए कमीशन—अफसर पद-प्राप्त कर लिया, और वह ३३वीं रेजीमेन्टमें एक तरुण अफसर बन गया। वह कर्नल नेपियरके साथ नेटले स्थानमें पड़े एक कैम्पमें गया। कर्नलकी हाल ही में वहाँ नियुक्ति हुई थी। यहाँ चार्लसने बदलकर चौथी रेजिमेन्टमें नाम लिखाया, लेकिन उसमें शामिल होने की जगह थोड़े दिनोंके लिये वह सेलब्रिजके स्कूलमें दाखिल

हो गया। इस समयके जीवनके बारेमें उसका भाई लिखता है—"वह बड़ा ही नरम पर गम्भीर प्रकृतिका स्कूली लड़का नहीं, बल्कि अपनेको अफसर जैसा समझता था। ।" यह आश्चर्यकी बात नहीं है, जो कि उसने अपने स्कूलके साथियोंकी स्वयंसेवक सेना सङ्गठित की, और उन्होंने इसे खुशीके साथ अपना नेता स्वीकार किया।

लेकिन, इसी समय बड़े उत्तेजनाके दिन आ गये, क्योंकि १७६८ ई० में आयरलैण्डके लोगोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, सारे देशमें आग लग गई। तरुण नेपियरने इस भयंकर गृह-युद्धमें भाग लेनेके लिये स्कूलको छोड़ दिया। आयरिश विद्रोहियोंके डरके मारे बहुतसे अंग्रेज परिवारोंने अपने स्थानोंको छोड़कर डब्लिनमें आश्रय लिया। कर्नल नेपियरने ऐसा करनेसे इन्कार करके सेलब्रिजमें अपने घरकी मोर्चाबन्दी कर ली, अपने पांच पुत्रोंको हथियारबन्द किया और विद्रोहियोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन उसके ऊपर आक्रमण नहीं हुआ। कुछ समय बाद वह कैसलटौनमें चला गया, जहाँ उसने एक मिलिशिया सेनाका संचालन अपने हाथमें लिया। यहीं पर एक दिलचस्प घटना घटी। कर्नल नेपियरको देशकी जाँच-पड़ताल करनेकी आदत थी। ऐसे समय चार्लस् हमेशा उसके साथ रहता था। अन्धेरी रातमें एक बार मिलिशियाके कुछ हथियारबन्द आदमियोंसे एका-एक भेंट हो गई। दोनों तरफके लोग रुक गये, जान पड़ा, लड़ाई अवश्य होके रहेगी। लेकिन कर्नलको इसमें सन्देह हुआ। उसने परीक्षाके लिये ऊँची आवाजमें सैनिक आज्ञा दी। तुरन्त ही लोगोंने पहचान लिया, और पता लगा, कि वह शत्रु नहीं कार्ककी मिलिशिया है। इसी समय चाँदकी रोशनी चमकी, जिसमें हाथमें छोटी सी बन्दूक लिए चार्लस नेपियर कार्क मिलिसियाके सबसे लम्बे आदमी टिम सिलिवनकी ओर आक्रमण करनेके लिये तैयार देखा गया। जरा देरके लिये टिम आश्चर्यचकित हो अपने छोटे से कदके शत्रुकी ओर देखता रहा, फिर उसने तुरन्त उसका हाथ पकड़ कर चूम लिया था।

तरुण नेपियर चार साल तक आयरलेण्डमें रहा। इस बीच उसने आयरिश-विद्रोह-तथा उसके बादके १८०३ ई० की गड़बड़को दबानेमें सहायता की। १८०३ ई० में वह कप्तान बना दिया गया। थोड़े समय बाद वह शोर्नक्लिफके कैम्पमें सम्मिलित हो गया। यहाँ सर जान मूरकी अधीनतामें उसने सैनिक विज्ञानके अध्ययनमें बड़ी तेजीसे तरक्की की। फिर १८०८ का सन् आया, जब कि उसे स्वप्नमें भी न सोचे जानेवाले बड़े पैमाने के संघर्षमें भाग लेना पड़ा। युरोपमें पेनिन्सुला ( प्रायद्वीप ) की लड़ाई छिड़ गई, मेजर चार्लस नेपियरको लिस्बन जानेका हुकुम हुआ। कर्नलकी अनुपस्थितिमें मूरके अधीन ५५वीं रेजिमेन्टकी कमान चार्लसके हाथमें आई।

इस युद्धमें चार्ल्सके साथ बीती घटनाओंमेंसे एक विशेषता रखती है। कोरुणाकी लड़ाई में हारकर हटनेके समय मूरको प्राणान्तक घाव लगा। फ्रांसीसियोंने इतनी जबर्दस्त गोलाबारी की, कि ५०वीं रेजिमेन्ट अपने शत्रुओं अपार शक्तिको देखकर मैदान छोड़नेके लिये मजबूर हुई। एक बार नेपियर अपने सैनिकोंको पीछे आनेके लिये कहते आगे बढ़ा। उसके सभी आदमी चारों तरफ गोलीसे मार गिराये गये। वह फिरसे लौटकर अपनी रेजिमेन्टमें आ रहा था। उसने एक घायल सैनिकको देखा। जिस वक्त वह उसकी सहायता करने लगा, उसी समय शत्रुकी एक गोलीने उसके पैरकी हड्डीको तोड़ दिया। अब घायलको छोड़नेके लिये वह मजबूर हुआ। अपनी तलवारके सहारे लंगड़ाते हुए वह चल रहा था, उसी समय उसे चार सैनिक मिले, जिन्होंने बतलाया, कि हम अपनी रेजिमेन्टसे बिछुड़ गये हैं, और फ्रांसीसी हमारा पीछा कर रहे हैं। अपने दर्दको भूलकर नेपियरने तुरन्त चिल्लाकर कहा—"मेरे पीछे आओ, हम उनके भीतरसे अपना रास्ता काट निकालेंगे।" वह आगेकी तरफ दौड़े। लेकिन, मुश्किलसे अभी उसके मुंहसे ये शब्द निकले थे, कि एक इटालियन शत्रु सैनिकने उसकी पीठपर संगीन लगाकर उसे मुंहके बल गिरा दिया, और दूसरा प्रहार करना ही चाहता था, कि इसी बीच नेपियर

अपने पैरोंपर खड़ा हो गया। एक भयंकर संघर्ष शुरू हुआ। नेपियरने अपने शत्रुके हथियारको हाथमें करनेमें सफलता पाई। अब तक उसके साथी चारों सैनिक मार डाले गये।

दूसरे दुश्मन नेपियरकी ओर दौड़े। उन्होंने अपनी बन्दूकोंसे उसे मारा। फिर एक लम्बे साँवलेसे आदमीने अपनी तलवारसे एक जबर्दस्त प्रहार उसके सिरपर किया। बहादुर मेजरने अब भी हिम्मत नहीं तोड़ी। वह अर्धमूर्छित था, तब भी अपनी सारी शक्तिसे बन्दूकको पकड़े रहा। इतालियन अन्तिम प्रहार करना ही चाहता था, जिससे शायद उसकी जीवन-लीला यहीं खतम हो जाती, इसी समय एक उदार हृदय फ्रेंच, नगाड़ेवाजकी सारी बातको घृणाकी दृष्टिसे देखते नेपियरको बचानेके लिये दौड़ा और उठाकर उसे एक सुरक्षित स्थानपर ले गया। सारा शरीर घावोंसे भरा था, जिनमेंसे कुछ खतरनाक थे। मेजर अब युद्ध-बन्दी था। उसके बारेमें कोई खबर न मिलनेसे नेपियरके मित्र समझने लगे, कि वह मर चुका। उसके लिये शोक मनाते हुए भी उन्होंने अपनी सरकारको नेपियरके बारेमें पता लगानेके लिये राजी किया। जिस परिस्थितिमें उसको मुक्त किया गया, वह फ्रेंच कमाण्डर मार्शल नेयकी उदार हृदयताका परिचायक है। एक दिन एक छोटा पोत फ्रेंच समुद्रके किनारे उतरा। नेयको उसके शरीर-रक्षकने तुरन्त खबर दी, कि शान्तिकी पताका लेकर एक अंग्रेज अफसर तटपर उतरा है, और पूछ रहा है, कि क्या मेजर नेपियर जिन्दा है।

"उसे कहो, हां," नेयने कहा, "और यह भी, कि वह अच्छी तरह है, और उसे देख भी सकते हो।" शरीर-रक्षक मार्शलके मुंहकी ओर देखते बिना हिले डोले या बोले चाले किंकर्तव्य-विमूढ़ हो बोला—"उसकी एक बुढ़िया अन्धी विधवा मां है।"

"सचमुच? तो उसे आने दो और जाकर स्वयं अपनी मांको कहने दो, कि मैं आ गया।"

इस तरह नेपियर मुक्त होकर घर चला आया। उसने यह वचन दिया कि तब तक लड़ाई में शामिल नहीं होगा, जब तक कि एक फ्रेंच अफसर बदलेमें छोड़ नहीं दिया जायेगा। अंग्रेजी सरकारने जब बदलेमें एक फ्रेंच अफसरको छोड़ दिया, तो १८११ ई०में नेपियर स्पेन लौटा, जहाँ पर उसने कई लड़ाइयोंमें नाम कमाया। उसका जबड़ा टूट गया, उसकी एक आंख घायल हो गई। दो घोड़े, जिनकी पीठपर वह सवार था, गोलीसे मार गिराये गये। इसके बाद लफ्टेनेन्ट-कर्नल हो यह बहादुर सैनिक कुछ समयके लिये स्वदेश लौटा। इसके बाद उसने द्वितीय अमेरिकन युद्धमें भाग लिया। यद्यपि युरोपीय युद्धमें शामिल होनेके लिये वह लौटा था, लेकिन तब तक समय बीत चुका था, और वह वाटरलूके महायुद्धमें भाग नहीं ले सका। तो भी विजयिनी सेनाके साथ वह पेरिसमें दाखिल हुआ।

१८१६ ई० तक उसने अपने सारे समयको पूरी तौरसे सैनिक विज्ञान को अध्ययन करनेमें लगाया। इसी साल उसे आयोनिया (यवन) द्वीपमें भेज दिया गया, जहाँ वह सेफालीनियाका राज्यपाल बनकर काम करने लगा। ११ साल (१८३० ई०) तक वह वहां रहा। अपने शासनकालमें उसने द्वीपवासियोंके हितके बहुतसे काम किये। फिर लौटकर ११ साल तक शान्तिपूर्ण कामोंमें लगा वह विश्राम लेता उत्तरी इंगलैण्डमें रहा। चार्टिस्ट-विद्रोहोंके समय यहां वह एक सैनिक जिलेका अफसर रहा। अब उसे भारत जाकर बम्बईकी सेनाकी कमान हाथमें लेनेका हुकुम हुआ। भारत रवाना होते समय पेनिन्सुला युद्धमें उसकी अद्भुत सेवाओंके लिये उसे सर बना मेजर जेनरलका पद मिल गया।

१८४१ ई०के अन्तमें नेपियर बम्बई आया। इसी समय अंग्रेजोंको भारतमें ऐसा धक्का लगा, जिससे उसकी जड़ें हिल गईं। दोस्त मुहम्मदको काबुलमें गद्दीसे उतारकर गवर्नर-जेनरलने अपने देशको अपमानित ही नहीं करवाया, बल्कि उसे सर्वनाश तक पहुँचा दिया। जैसाकि हमने देखा, अङ्गरेजोंने कुछ समय बाद उसका बदला लिया। लेकिन, काबुलमें अङ्गरेजों

के ऊपर जो बीत चुका था, उसका बुरा प्रभाव अफगानिस्तानकी सीमाके बाहर भी पड़े बिना नहीं रहा। इसका तुरन्त परिणाम यह हुआ था, कि अंग्रेजोंके दुर्भाग्यको देखकर सिन्धके अमीर सिर उठानेके लिये तैयार हो गये। १८४२ ई० तक अमीरोंकी शत्रुता सीमा पार कर रही थी। अन्तमें गवर्नर-जेनरलको यह घोषित करना पड़ा, कि जांच करनेपर जिस अमीरको भी कसूरवार पाया जायेगा, उसे भारी दण्ड दिया जायेगा। अंग्रेज समझने लगे, कि ऐसा करनेपर दूसरोंको भी सिर उठानेकी हिम्मत नहीं होगी।

(सिन्ध नदीके किनारे अवस्थित) सिन्धका प्रदेश इस समय कई छोटी-छोटी रियासतोंमें बंटा हुआ था, जिनके अपने-अपने अमीर थे। १८३८ ई०में सुलहनामा करके इन्होंने अङ्गरेजोंकी मित्रता स्वीकार की थी। कुछ समय तक वह बड़ी ईमानदारीके साथ मित्रतापर दृढ़ रहे। पर जब काबुल में अङ्गरेजोंके सत्यानाशकी बात सुनी, तो उनके दिलसे अङ्गरेजोंके अजेय होनेकी धाक उठ गई, और वह फिर अङ्गरेजी जुयेको उठानेका रास्ता ढूंढने लगे। इस परिस्थितिमें तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक जान पड़ी। उस समय सर चार्ल्स नेपियरको छोड़कर दूसरा कोई अंग्रेज इस कामके योग्य नहीं दिखाई पड़ा। उसे अमीरोंके खिलाफ लगाये जाने वाले इल्जामोंकी जांच करनेके लिये कुछ सेनाके साथ सिन्ध जानेका हुकुम हुआ। २५ सितम्बरको वह सिन्धकी राजधानी हैदराबाद पहुँचा। चार्ल्स बड़े कड़े मिजाजका था। इसमें सन्देह नहीं कि जिन अमीरोंके बारेमें जांच करनेके लिये वह गया था, उनके विरुद्ध पहले हीसे उसका विचार था। लेकिन, अन्तमें तीन छोड़कर बाकी सभी इल्जाम बेबुनियाद समझे गये। चार्ल्सने उनके खिलाफ गवर्नर-जेनरलको रिपोर्ट देते हुए जोर देकर कहा, कि अमीरों ने सन्धिकी शर्तोंकी भारी अवहेलना की है। इसके बाद अङ्गरेजोंने एक नई सन्धि करनेका निश्चय किया, जो अमीरोंके लिये अधिक अहितकर थी, और जिसके द्वारा उनके काफी भूभागको अंग्रेजोंके हाथमें देना पड़ता। सन्धिकी शर्तें उनके सामने रक्खी गईं। उन्होंने उसके बदलेमें दूसरे कौल-करारोंके साथ आधीनता स्वीकार करनेकी बात की, जोकि वस्तुतः टाल-

मटोल करनेका बहाना था। इस बीच चार्लसने ऊपरी सिंधके जिलोंपर अधिकार करना शुरू किया, और मौका मिलतेही सैनिक कार्रवाई करनेके लिये सावधानीसे तैयारी शुरू की। वह पक्का कर चुका था, कि नई सन्धि को मनवाना होगा, और अमीरोंको अङ्गरेजोंके खिलाफ हरकत करनेसे बाज रखना होगा। यदि वे नेपियरकी इस मांगको नहीं स्वीकार करते हैं, तो हथियार इस्तेमाल करना होगा। उसने लिखा था—"उनकी लड़ाइयोंसे मैं कोई खतरा नहीं देखता। मैं सिन्धके सभी अमीरोंको पीट सकता हूं।"

जिस वक्त बातचीतमें इस तरह देर की जा रही थी, इसी समय कुछ अमीरोंके संदिग्ध बर्तावने मामलेको जल्दी आगे बढ़ानेमें मदद दी। ऊपरी सिन्धके रईसका पद ८५ वर्षके बूढ़े मीर रुस्तमके हाथमें था। उसके लड़के रईसकी पगड़ीको अपने चचा अली मुरादके हाथमें न जाने देना चाहते थे, नियमके अनुसार अली मुराद उसका अधिकारी था। चिन्तासे परेशान होकर अली मुरादने नेपियरको अपनी तरफ खींचने तथा अंग्रेजोंके खिलाफ कार्रवाई करनेकी बातें कहकर मीर रुस्तमके खिलाफ उसका कान भरने लगा। वह अपने इरादेमें यहां तक कामयाब हुआ, कि बेटोंकी अंग्रेज विरोधी कार्रवाइयोंसे संत्रस्त हो उसने अंग्रेजी केम्पमें आनेका वचन दिया। लेकिन, चार्लसने उसे स्वीकार करनेसे इन्कार करते हुये सलाह दी, कि तुम अपने भाई अली मुरादकी शरण लो। जब रुस्तम अली मुरादके किलेमें पहुँचा तो उसने अपने भाईको एक ऐसा पत्र लिखनेके लिये मजबूर किया, जिसमें कहा गया था, कि मैं अपनी खुशीसे "पगड़ी" और अपने अधिकृत स्थानको छोड़ रहा हूँ। इस की सूचना चार्लसके पास भेजी गई। नेपियरको सन्देह हो गया, कि दालमें कुछ काला है। उसने जवाब दिया, मैं खुद रुस्तमसे बात करना चाहता हूँ। अली मुरादको डर लगा, यदि रुस्तम नेपियर से मिला, तो सारा भंडाफोड़ हो जायेगा। उसने आधी रातको अपने भाईको जगाकर कहा, कि कल सबेरे तुम्हारी गिरफ्तारी होजायेगी, इसलिये जान लेकर भागो। यह सुनकर किंकर्तव्य-विमूढ़ बूढ़ा घोड़ेपर चढ़कर अपने सम्बन्धियोंके डेरे की ओर भागा, जो

वहांसे १२ मीलपर था। इसपर चार्ल्सने तुरन्त सिन्धके अमीरों और लोगोंके लिये घोषणा निकाली, जिसमें कहा गया था, कि मीर रुस्तमने अंग्रेज सरकार का अपमान किया, उसकी आज्ञा माननेसे इन्कार किया; मैं अली मुरादको रईस बनानेके लिये निश्चय कर चुका हूं।

नेपियरको पूरा विश्वास था, कि रुस्तम अपराधी है, और अली मुराद सच्ची बात कह रहा है। बूढ़ेने आदमी भेजकर नेपियरको बहुत विश्वास दिलाना चाहा, कि चिट्ठी मुरादने जबर्दस्ती लिखवाई थी, और उसीने मुझे भागनेकी सलाह दी थी; लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। नेपियर ने बल्कि अब उत्तरी सिन्धके रेगिस्तानोंमें अवस्थित इमामगढ़के किले पर चढ़ाई करनेका निश्चय कर लिया, जहां पर वह समझता था, कि भारी सेनाके साथ उसके लड़के मौजूद हैं। वह ऐसा करके अमीरोंको दिखलाना चाहता था, कि तुम्हारे रेगिस्तान या बातचीतकी ढिलाई अंग्रेजी सेनाकी गतिको रोक नहीं सकती। इस समय तक उसे पता लग गया था, किसिन्धके दूसरे भागमें भारी सेना तैयार की गई है, जो अंग्रेजों की छावनी पर चढ़ दौड़ना चाहती है। वह आशा रखता था, कि इमामगढ़पर अधिकार कर वह वहां स्थित शत्रुओंको ही छिन्न-भिन्न नहीं कर सकेगा, बल्कि अमीर, जिसको अजेय गढ़ समझते हैं, वह अंग्रेजी शक्ति के सामने तुच्छ और बेकार साबित होगा, जिससे वह अंग्रेजोंकी मांगको ठुकरानेके लिये तैयार नहीं होंगे। उसने लिखा था—"इमामगढ़ उनका लड़ाकू मुर्गा है। मुझे आशा है,तीन सप्ताहसे पहले ही मैं उसके इस गर्व को खतम कर दूँगा।"

नेपियर अभियानके लिये तुला हुआ था, उसमें भारी खतरे थे। उसे यह पता नहीं था, कि इमामगढ़की वास्तविक स्थिति क्या है क्योंकि अभी तक कोई युरोपियन वहां तक पहुँचा नहीं था। जो कुछ मालूम था, वह यही कि वह सिन्धके रेगिस्तानके बीचमें हैदराबादसे सौ मीलपर किसी जगह पर है। यह भी सुना था, कि इस रहस्यमय स्थानमें पहुँचनेके लिये बिना भी किसी रास्ते के भयानक बयाबानसे गुजरना पड़ेगा। सबसे बड़ा खतरा यह था, कि नेपियरका कोई आदमी यह नहीं जानता था, कि वहां

पर अंग्रेजी सेनाके लौटनेके रास्तेको काटने अथवा उसके नष्ट कर देनेमें समर्थ एक भारी सेनाका मुकाबिला रास्तेमें करना पड़ेगा। लेकिन, यही कठिनाइयां नेपियरके लिये अधिक आकर्षक मालूम होती थीं। सारी तैयारी करके दो सौ देशी सवार और ३५० पैदल गोरे, दो-दो एक ऊँट परचढ़े। ३५० अंग्रेज—कुल मिलाकर ५५० की सेना जनवरी १८४३ ई० में इस भयंकर रेगिस्तानमें कूद पड़ी।

दिन—पर—दिन यह छोटी सी सेना आगे बढ़ती गई। कभी पीनेका पानी मिलता, कभी न मिलता लेकिन तो भी हिम्मत हारनेके लिये कोई तैयार नहीं था। किसी भी मोर्चाबन्दीका पता एक सप्ताह तक नहीं लगा। लेकिन, वह बहुत दूर नहीं था। आठवें दिन आवाज सुनाई दी, और उनका लक्ष्य सामने था।

नेपियरको बहुत अचरज हुआ, जब देखा कि इमामगढ़में कोई नहीं है। एक मीनारपर हाल हीमें लगाई गई तोप मिली। ऐसे भी चिन्ह मिले, जिनसे पता लगा, कि हाल हीमें यहाँपर लोग रहे थे। लेकिन, उस सेनाका एक आदमी भी वहां मौजूद नहीं था। कुल दो हजार आदमी सारेके सारे कुछ ही घण्टों पहले गोले बारूद और रसद को छोड़कर इमामगढ़से चले गये थे। नेपियरने किलेपर अधिकार कर लिया। इस प्रकार अमीर जिस किलेको अजेय समझते थे, वह एक भी सैनिकको हानि उठाये बिना अंग्रेजोंके हाथमें आ गया। यहां आनेका मुख्य उद्देश्य पूरा हो गया। लेकिन, अभी एक काम और करना था, वह था किलेको तोड़ देना। उसे फिर शत्रुके हाथमें न जाने तथा अमीरोंका शरणस्थान न बनने देनेके लिये ५००० सेर बारूद लगाकर उसे उड़ा दिया गया।

यह कर लेनेके बाद नेपियर बिना भी किसी रुकावटके अपने कैम्पमें लौट आया। उसको विश्वास हो गया, कि इसके कारण अमीर आतंकित हो गये होंगे। उसने अंग्रेज रेजीडेंट मेजर उटरमसे कहा, कि अमीरोंसे बातचीत करके सन्धि-पत्रपर दस्तखत कराये। अमीरोंने मंजूर किया।

हैदराबादमें एक सम्मेलन हुआ, जिसमें सन्धि-पत्रपर उन्होंने अपनी मोहरें लगा दीं।

लेकिन, यह बात मालूम होते देर नहीं लगी, कि यह सन्धि-पत्र मामलेको सुलझानेके लिये नहीं स्वीकार की गई, बल्कि भयानक घटनाओं-की सूचना मात्र थी। मोहर लगते देर नहीं लगी, कि सारे हैदराबाद शहरमें फुसफुसाहट और गड़बड़ी दिखलाई पड़ी। साफ हो गया, कि, कोई बुरी बात तुरन्त होनेवाली है। हैदराबादमें अब चारों ओर हजारों बिलोची सैनिक जमा थे। इनके सरदार अमीरोंके पास जो जागीरकी जमीनें थीं, उन्हें अंग्रेजोंने हर लिया था। इसीसे असंतुष्ट होकर बिलोची सरदार और उनके हथियारबन्द आदमी यहां पड़े हुये थे।

उन्हें एक तो अपने भूमिके हाथसे जानेका भारी सदमा पहुँचा था, दूसरे नेपियरकी आज्ञासे अली मुराद द्वारा बूढ़े मीर रुस्तमके हटाये जानेके लिये क्रोध था। इसलिये वह अंग्रेजोंपर आक्रमण करनेके लिये तुले हुये थे। हर घंटे हैदराबादमें उत्तेजना बढ़ती जा रही थी। देर नहीं हुई, कि अमीरोंने मेजर उटरमके पास संन्देश भेजकर कहा, कि बिलोचियोंकी शिकायतोंको दूर करनेका वचन न देनेसे उनके सरदार और कबीलेके लोग लड़नेके लिये उतारू हैं। हम उनको रोक रखनेमें असमर्थ हैं।

असंतोषकी बाढ़ तेजीसे बढ़ी। सन्धिपर हस्ताक्षरकरनेके दो दिन बाद १४ फर्वरीको मेजर उटरम और उसके अनुचरोंका अपमान किया गया। उनके ऊपर पत्थर फेंके गये। यह भी कहा जाता है, कि उसकी हत्या करनेकी योजना बन चुकी थी। अमीरोंके गारदने यदि उटरमको अंग्रेज रेजीडेंसीमें सुरक्षित न पहुँचा दिया होता, तो क्रोधान्ध बलोची उसे पकड़कर खतम कर दिये होते। अगले दिन स्थितिकी भयंकरता अपनी चरम सीमापर पहुँची। उस दिन सबेरे ६ तोपों और ८००० आदमियोंके साथ बलोची रेजीडेंसीकी ओर बढ़कर गोलाबारी करने लगे। इतनी बड़ी सेनाका मुकाबिला करनेके लिये मेजर उटरमके पास केवल सौ आदमी थे। अपनी संख्याके कम होनेसे वह हतोत्साह नहीं हुआ, और वह चार घंटे

तक बड़ी बहादुरीसे बलोचियोंको रोके रहा। इसी बीच उनका गोला-बारूद खतम हो गया और उन्हें रेजीडेंसी छोड़नेके लिये मजबूर होना पड़ा। वहाँसे ५०० गज दूर अंग्रेजी केम्प था, जहाँ वह बड़ी चतुराईसे निकल भागनेमें सफल हुये।

रेजीडेंसीके ऊपर हुये इस आक्रमणको अंग्रेज चुपचाप नहीं सह सकते थे। नेपियरने अब उस अद्भुत बहादुरी और रण-कौशलका परिचय दिया, जिसके कारण युद्ध-इतिहासमें उसका नाम अमर हो गया। यह साफ मालूम हुआ, कि अमीर दोहरी चाल चल रहे हैं। उन्होंने और समय पानेके लिये एक ओर सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर किया, और दूसरी ओर वह भारी सैनिक तैयारी भी करनेमें लगे रहे। वह जान रहा था, कि बलोची और भी भारी संख्यामें शहर और उसके आसपास जमा हो रहे हैं, तो भी उनके ऊपर तुरंत आक्रमण करनेका उसने निश्चय किया। १६ फर्वरीको वह हैदराबादसे १६ मीलके करीब पहुँच गया। उसे सूचना मिली, कि वहांसे दस मील आगे शत्रु मोर्चाबन्दी कर रहे हैं। उस रातको वह उनकी ओर बढ़ा। अगले दिन ६ बजे सवेरे हैदराबादसे ६ मील दूर मियानी पहुँचा। नेपियरकी सेनामें केवल २६०० सैनिक थे, जिनके सामने ३५००० बिलोची सेना लड़नेके लिये तैयार थी।

इस स्थिति को देखते हुये भी नेपियरने आयोजनमें कोई परिवर्तन नहीं किया। "प्राचीन लड़ाकू जातिके अग्नि पुरुष" इस जनरलने बलोचियोंके ऊपर आक्रमण करनेका निश्चय किया, इस निश्चयको कार्यरूपमें परिणत करना था। लड़ाई लड़नेके लिये व्यूह बना लिया गया, फिर सेना को आगे बढ़ने का हुकुम दिया गया। शत्रु की तोपें आग बरसा रही थीं, इसी बीच नेपियरकी सेना आगे बढ़ी। भयंकर संघर्ष आरम्भ हुआ। तीन घंटे तक बलोची बड़ी हिम्मतके साथ एक-एक इंच जमीन के लिये लड़ते रहे, लेकिन नेपियरके योग्य सेनापतित्वमें उनकी एक न चली। अन्तमें थोड़ी देर तक हाथोंहाथ लड़ाई हुई। अंग्रेजोंकी सवार सेनाने उस दिनके

युद्धका फैसला किया, जिसके पीछे संगीन लगाये पैदल सेना मजबूतीके साथ आगे चली। शत्रुको अन्तमें हारकर तितर-बितर हो जाना पड़ा।

इस युद्धके अनुकूल परिणाम होनेमें मुख्य कारण एक जबर्दस्त घटना इसी समय घटी। अंग्रेज जब आक्रमण करनेके लिये आगे बढ़े, उस समय कितने ही बलोची अपनी मोर्चाबन्दियोंके पीछे छिपे हुये थे। जेनरलने एक दीवार देखी, जिसने भीतर जाने-आनेका केवल एक ही रास्ता था, जो बहुत संकरा था। इस दीवारके पीछे बड़ी संख्या में शत्रु जमा थे। उसने भाँप लिया, कि ये हमारे ऊपर दौड़नेकी ताकमें हैं। उसकी प्रतिभाने तुरन्त रास्ता बतलाया, और उसने २२वीं रेजिमेन्टके ८० जवानोंको अलग करके उनके अफसर कप्तान टेबको कहा, कि तुम्हें इस रास्तेको बन्द करना है, जरूरत पड़नेपर अपने प्राणोंको दे करके भी। अपने जेनरलकी आज्ञाका पालन करते हुये बहादुर कप्तानने सचमुच अपने प्राण दे दिये। जब वह मर गया, तो उसके आदमी उस छेदको बन्द करते रहे। ८० आदमियोंको लगाकर इस प्रकार नेपियरने ६००० शत्रुओंको वहां बेकार कर दिया।

अपनी आदतके कारण यहांपर भी लड़ाईमें कई बार नेपियर बाल-बाल बचा। उसका एक हाथ घायल हो गया। उसमें इतना भारी दर्द हो रहा था, कि मुश्किलसे वह अपने घोड़ेकी लगाम पकड़ सकता था। लेकिन, युद्धमें एक ऐसी घड़ी आई जब कि एक दूसरेसे ५० गजपर अवस्थित दोनों ओरकी सेनाओंकी गोलियोंके बीचसे दौड़नेके लिये मजबूर होना पड़ा। उसने पीछे लिखा—"मुझे शत्रुओंकी तरह अपने आदमियोंकी गोलियोंसे मरनेकी सम्भावना थी। गोलाबारीको मैं छूता हुआ सा भागा। दो या तीन बार मेरी मूंछ और मेरा चेहरा गोलियोंकी सनसनाहटके भीतरसे गुजरा। सैनिक डरके मारे मुझे छोड़ सभीके सिरके ऊपर गोली मार रहे थे, और कभी-कभी तो मेरी खोपड़ीका भुर्ता बना चुके थे।" एक बार उसने एक सरदारको लम्बा कदम डालते आगे बढ़ते देखा। नेपियरने कहा है—'मेरा हाथ टूट गया था। मैं ऐसे आदमीसे निपटनेकी स्थितिमें नहीं था, लेकिन भारी पीड़ाके साथ एक हाथसे लगामको थोड़ा पकड़े मैंने

घोड़ेको ऐसे कुदान देनेका इरादा किया, जिसमें कि उसका सिर मेरे और आक्रमणकारीके हथियारके बीचमें आ जाये। बलोची मुझसे चार ही कदमपर था। इसी समय लफ्टनेंट मार्सटन पैदल ही मेरे दाहिने आया, और उसने दुश्मनको तलवारके वारको अपने कन्धेकी जंजीरोंपर रोक लिया।" दूसरे समय "मैं अकेला शत्रुओंके बीच कितने ही मिनटों तक रहा। ढाल उठाये घूरती हुई आंखोंसे वह मुझे चारों तरफसे घेरे हुये थे।" लेकिन किसी मिथ्याविश्वाससे किसीने नेपियरकी ओर तलवार नहीं उठाई और वह अक्षतशरीर बाहर निकल आया।

लड़ाईका फैसला अंग्रेजोंके पक्षमें हुआ उनके हताहतोंकी संख्या २५० थी। शत्रु ६ से ८००० तक हताहत हुए। कुछ साल बाद नेपियरने २२वीं रेजिमेन्टको नया झण्डा देते हुये इस भयंकर युद्धके बारेमें कहा था—"मियानीके जवानों, तुम अभिमानके साथ फूले नहीं समाते, उस दृश्यको याद करते होंगे, जो तुम्हारी नजरोंके सामने गुजरा। भारी गोला-बारीके भीतरसे तुम नदीके तटपर पहुँचे। टोपी-पगड़ी बांधे सिंधियोंके सिरपर चमकती तलवारें आकाशमें कौंद रही थीं। बिलोचिस्तानके ३५००० बहादुर योद्धाओंका समुद्र तुम्हारे सामने फैला हुआ सर्वनाशकी धमकी दे रहा था। तब दोनों ओरकी सेनायें नजदीक होकर एक दूसरेसे भिड़ीं, और सारी युद्ध—पंक्तिमें घमासान युद्ध होने लगा। अद्भुत नवां बंगाल रिसाला और भारतका प्रसिद्ध सिन्ध रिसाला बिजली और तूफानोंकी तरह नदीकी धारकी ओर टूट पड़ा। तुमने शत्रुको अपने सामनेसे मार भगाया। उस समय दाहिनी ओरसे एक भयंकर आवाज आई। यह अंग्रेजी युद्धकी भयंकर आवाज थी। यह लड़ाई २२ तारीखको शुरू हुई और इसकी प्रतिध्वनि दाहिनेसे बांये, एक रेजिमेन्टसे दूसरी रेजि-मेन्ट होती सारी युद्ध पंक्तिमें सुनाई दी। धुयेंके बीचसे चमकती झुकीं संगीनें आक्रमणके लिये बढ़ीं, और मियानीके युद्धक्षेत्रमें अपने कर्तव्यको दिखलाकर उन्होंने विजय पाई।...२२ तारीखके तरुण सैनिकों, जब भविष्यमें लड़ाइयाँ उठ खड़ी होंगी, जब संघर्ष जबर्दस्त और भयंकर हो

उठेगा, उस समय मियानीके इन पुराने योद्धाओंके कामोंको याद रखना। ये मियानीके योद्धा थे, इन्होंने अपने झण्डेको विजय-मालाओंसे ढांका। ये वही योद्धा थे, जिन्होंने विजयके उन पंवाड़ोंको प्राप्त किया, जिन्हें रेशमके ऊपर सोनेके अक्षरोंमें इन झण्डोंके ऊपर चमकता देखा जा सकता है। उन बातोंको याद रक्खो समय आनेपर कन्धेसे कन्धा मिलाकर आगे बढ़ना।

इस महान् विजयके बाद सिन्धके छः अमीरोंने आत्म-समर्पण किया, और २० फर्वरीको हैदराबादकी मीनारोंके ऊपर अंग्रेजी झण्डा फहराने लगा।

पर, लड़ाई अभी खतम नहीं हुई थी। उक्त युद्धके अगले दिन सबेरे पता लगा, कि सबसे शक्तिशाली अमीरोंमेंसे एक मीरपुरका शेर मुहम्मद दस हजार आदमियोंके साथ कुछ मीलपर पड़ा हुआ है। मियानीकी लड़ाईमें भाग लेनेसे उसने जान-बूझकर परहेज किया था। उसका इरादा था, अंग्रेजोंके हार जाने तक प्रतीक्षा करे, और जब आपस संघर्ष खतम हो जाये, तो दूसरे अमीरोंके साथ विजय के सम्मानमें हाथ बटानेके लिये मैदानमें उतरे। मियानीकी घटनासे आश्चर्यमें पड़े शेरको जरा भी प्रकृतिस्थ होनेका मौका दिये बिना नेपियरने उसपर प्रहार करनेका निश्चय किया। लेकिन, पीछे उसने तै किया, कि ऐसा करनेके बजाय सिन्धके तटपर मोर्चाबन्दी करके उसके आक्रमणकी प्रतीक्षा करना अच्छा है। उसने समझा, कि इस चालसे मैं अपनी इच्छानुसार लड़ाईकी जगह चुन सकूँगा, और जिस कुमकके आनेकी आशा है, उसे पानेकी भी अच्छी स्थितिमें रहूंगा। आयोजन हर तरहसे सफल रहा। शेरने जब देखा, कि मेरे ऊपर आक्रमण नहीं हो रहा है, तो नेपियरको डरा समझकर उसकी हिम्मत बढ़ी।। वह अंग्रेजी कैम्पके नजदीक बढ़ने लगा। जब अंग्रेज सिर्फ १२ मील रह गये, तो उसका सफलतामें इतना अधिक विश्वास हो गया, कि उसने नेपियरके पास यह कहते हुए सन्देश भेजा, कि हम देशसे सुरक्षित चले जानेकी तुम्हें इजाजत दे देंगे, यदि तुम अमीरोंको

मुक्त कर दो, और जो कुछ यहाँसे लिया है, उसे लौटा दो। इसके पहले उसने यह भी गाल बजाया था, कि मैं नेपियर और उसके आदमियोंके लिये काबुल दिखाऊँगा।

शेर मुहम्मदका धृष्टतापूर्ण सन्देश पहुँचा, उसी शाम ब्रिटिश कैम्पमें तोप दागी गई। नेपियरने शेरके दूतसे कहा—"वहाँ, तुम सुन रहे हो, उसे?"

"हां।"

"अच्छा," उसने गंभीर होकर कहा, "वह है तुम्हारे लिये जवाब।"

नेपियर अब भी प्रतीक्षाका खेल खेलता रहा। शेरकी हिम्मत और बढ़ती जा रही थी। उसने बड़े जोशके साथ आक्रमण शुरू किया। लेकिन, उसका पतन नजदीक था। इस समय तक अंग्रेजी कैम्पकी कुछ कुमक मिल चुकी थी। २३ मार्चके सबेरे नेपियर अपने अफसरोंके साथ नाश्तेके लिये बैठा था, उसी समय वह एकाएक चिल्ला उठा—

"यदि मुझे दूसरी कुमक भी मिल गई, तो मेरा बड़ा भाग्य होगा। ...लेकिन, सो नहीं हो सकता। वह एक सप्ताह तक यहाँ नहीं आ सकेगी, और मैं तब तक शेरकी घुड़कीको बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं कल उससे लड़ूँगा।"

अभी नेपियरके मुँहसे यह बात निकली भी नहीं थी, कि एक अफसरने बतलाया—"नदीमें ऊपरकी ओर नावें आ रही हैं।"

फिर दूसरेने चिल्लाकर कहा—"वहाँ और भी नावें हैं, एक बेड़ा नदीके नीचेकी ओर से आ रहा है।"

यह शुभ समाचार सच्चा सिद्ध हुआ। उसी शामको एक अजीब दृश्य दिखाई पड़ा। कुमक तटपर उतर गई। कायदेके अनुसार नवागन्तुकोंको अपने कर्त्तव्य और जगहसे परिचित करानेके लिये सारी सेनाको कैम्पके सामने खड़ा किया गया। जिस समय यह पांती बन रही थी, उसी समय

शेरके दूतोंने आकर आत्म-समर्पणके लिये अन्तिम सूचना दी। नेपियरका उत्तर बहुत सीधा-सादा था। वह चुपचाप उन्हें सेनाके सामने ले गया और बोला कि "जो कुछ तुमने देखा, उसे जाकर अपने अमीरको बतलाना।"...दो घंटेके भीतर नेपियर अपने घोड़ेपर सवार हो शत्रु के ऊपर सीधे कूच कर रहा था।"

नेपियरके पास अब ५००० जवान थे। उनको लिये वह दब्बा नामक गांवकी ओर बढ़ा, जहाँपर शत्रु अपनी २६००० सेनाके साथ मजबूतीसे मोर्चाबन्दी करके बैठा था। लड़ाईके लिये बेकरार अंग्रेज ६ बजे अपने गंतव्य स्थानपर पहुँचे। नेपियरने तुरन्त आक्रमण करनेको हुकुम दिया। इसपर सारी १६तोंपें शत्रु के ऊपर आग उगलने लगीं, घमासान युद्ध छिड़ गया। लड़ाई तीन ही घंटे रही, लेकिन इतने ही समयमें भयंकर हत्याकाण्ड हुआ। कई बातोंमें यह पहलेकी मियानीसे भी ज्यादा कठोर थी। लेकिन, नेपियरके प्रेरणादायक नेतृत्वमें—जिसके युद्ध-आह्वानने मियानीमें योद्धाओंमें आग फूँक दी थी—यहां भी सैनिक अव्याहत गतिसे आगे बढ़ते सफल हुये। शत्रु के ५००० आदमी हताहत हुये, जब कि अंग्रेजोंको सिर्फ २७० का नुकसान उठाना पड़ा। अंग्रेजोंको पूर्ण और निर्णायक विजय हाथ लगी। शेर युद्धक्षेत्रसे पराजित होकर भागा। यद्यपि उसने एक बार और मुकाबिला करने की ठानी, पर उसमें भी उसे भारी असफलताका सामना करते सदाके लिये भागना पड़ा। सिन्धको अंग्रेजोंने जीत लिया, और तबसे वह अंग्रेजोंका एक प्रदेश बन गया। नेपियरने कहा था—"हमने बलोचियोंको सिखला दिया कि न तुम्हारी धूप, न ही तुम्हारा रेगिस्तान, न तुम्हारा जंगल और न ही तुम्हारे नाले हमें रोक सकते। बलोची अब फिर हमारा मुकाबिला नहीं करेंगे।

सिन्धकी लड़ाईका अब अन्त हो गया। अमीरोंको बन्दी बनाकर कलकत्ता भेज दिया गया, जिन्हें पीछे पेन्शन दे दी गई। नेपियरने अली मुरादको विश्वासपात्र समझा था। उसे कुछ और भी इलाके मिले।

फिर लड़ाईकी भारी लूटको सेनामें बाँटा गया, जिसमें सात लाख रुपया ( ७० हजार पौंड ) जेनरल नेपियरके हिस्सेमें आया। नेपियर सिन्धका प्रथम गवर्नर नियुक्त किया गया। वह देशको शांत और पुनर्गठित करनेमें लगा। अपने प्रबन्धसे उसने बहुतसी सफलतायें दिखलाई। प्रदेश के शासन को उसने सुधारा, सिन्धमें शान्ति छाई। अपनी दृढ़ और विवेकपूर्ण कार्रवाइयोंसे उसने लोगोंको नये शासकोंके अनुकूल बना दिया, उनकी शुभकामना और सम्मान अंग्रेजोंने प्राप्त किया।

सर चार्ल्स नेपियर जुलाई १८४७ ई० तक सिन्ध सरकारका मुखिया रहा। इस बीच नये प्रदेशकी सीमासे बाहरके कुछ गड़बड़ी पैदा करनेवाले कबीलोंके खिलाफ उसने एक सफल अभियानका संचालन किया। इसी समय एक दूसरी दिशामें उसकी सेवाओंकी आवश्यकता पड़ी। जिसमें अन्तमें उसे भारी निराशाका सामना करना पड़ा, लेकिन जिस तत्परतासे उसने पुकारको सुना, वह कम उल्लेखनीय नहीं थी।

पंजाबके लड़ाकू सिख भारतके उत्तर-पश्चिममें रहते अपने पड़ोसी अंग्रेजोंके खिलाफ कुछ समयसे शत्रुतापूर्ण भाव रखते थे। दिसम्बर १८४५ ई० में उनकी ६० हजार सेनाने एकाएक दोनों राज्योंकी सीमान्त नदी सतलुजको पारकर फीरोजापुरमें अपना डेरा डाला। यह ऐसा साहसपूर्ण कदम था, जिससे अंग्रेज चकित हो गये। आक्रमणकी सम्भावना उन्हें मालूम थी, लेकिन वह उसे इतनी जल्दी होनेकी आशा नहीं करते थे। अंग्रेज प्रधान सेनापति सर ह्यू (पीछे लार्ड) गफने सिखोंको भगानेके लिये ५० हजार सेना १५० मीलपर जमाकर ली थी। इस समय सिक्खोंने सतलुजको पार किया। फीरोजपुरकी ओर कूच करनेमें जरा भी देर नहीं की गई। भारी बालूसे भरी जमीन थी। भयंकर रास्तेसे खाना पकाने तथा आरामके लिये मुश्किलसे एक घंटा समय पाते इस दूरीको उन्होंने ६ दिनमें पूरा किया।

जिस समय सिक्खोंकी चढ़ाईकी खबर मिली, उसी समय गवर्नर-जनरल (सर हेनरीहार्डिंग) ने सरचार्लस नेपियरको तुरन्त हुक्म भेजकर सिन्धके

शहर रोड़ीमें १५००० सेना जमा करनेका हुक्म दिया। लड़ाईका इतना सुन्दर मौका पानेकी लालसासे नेपियरने बड़ी तत्परतासे तैयारी की। उसे २४ दिसम्बरको हार्डिंगका आदेश मिला था। ६ फरवरी तक उसने ८६ तोपों और युद्धकी दूसरी सामग्री के साथ १५००० सैनिक जमा कर लिये थे। उसने आगेकी सैनिक कार्रवाईकी योजनायें बना लीं, लेकिन उसकी ये योजनायें कार्यरूपमें परिणत होनेवाली नहीं थीं। तलवारपर हाथ रखे रोड़ीमें अधीरतापूर्वक वह अगले आदेशकी प्रतीक्षा कर रहा था, उसी समय फीरोजपुरसे १० मीलपर एक भारी लड़ाई लड़ी जा रही थी। यद्यपि सिख मार भगाये गये, लेकिन उससे उनकी शक्तिका नाश नहीं हो सका। गवर्नर-जेनरल ऐसी संकटकी स्थितिमें उसकी सलाह लेनेके लिये उत्सुक था। उसने नेपियरको अपनी सेना भागलपुर भेजनेका हुक्म दे अपने हेड क्वार्टरमें जानेके लिये कहा। इस प्रकार युद्धमें भाग लेनेकी उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। इतना ही नहीं, बल्कि जब वह बड़ी तेजीके साथ गवर्नर-जेनरलके कैम्पमें ३ मार्चको पहुँचा, तो पता लगा, कि अलीवालकी विजयके बाद सोबरांवमें एक निर्णायक युद्ध हुआ, जिसने सिक्खोंकी शक्तिको नष्ट कर दिया और उनका अभिमान खतम हो गया।

चार्लस नेपियर जितना ही बड़ा योद्धा था, उतना ही उदार हृदय तथा वीर पुरुष था। लड़नेका अवसर न मिलनेके लिये चाहे उसको कितना ही खेद हुआ हो, लेकिन कभी इसकी शिकायत उसके मुंहसे नहीं सुनी गई। जब उसको लड़ाईकी बातें सुनाई गईं और उसने पता पाया, कि कितने सम्मानके साथ ब्रिटिश सैनिक शक्तिने यश कमाया है, तो उसने दिल खोलकर सर ह्यू गफकी प्रशंसा की, फिर सर हेनरी हार्डिंग ( जिसने गवर्नर-जेनरल होते हुये भी द्वितीय कमाण्डरके तौरपर काम किया था, ) कि भी तारीफ की। नेपियरने प्रधान सेनापतिके बारेमें कहा—"गफ प्रतापी पुराना दोस्त है। वह ऐसे तीन सिंहोंके बराबर बहादुर है, जिनमें प्रत्येकके पास दोहरे दांत और दो पूँछें हैं।"

नेपियर अब अपने असैनिक पदको सँभालनेके लिये सिन्ध लौटा, और वहाँ अगले सालके अन्त तक रहा। इस समय तक उसके और उसकी पत्नीके स्वास्थ्यने जवाब दे दिया। अमीरोंके सम्बन्धमें कुछ अपने मनकी कार्रवाइयाँ करनेको लेकर कम्पनीके डायरेक्टरों और दूसरोंने उसकी आलोचना की, जिससे कम्पनीके साथ उसके सम्बन्ध बिगड़ गये। उसे यह जानकर बड़ा क्षोभ हुआ, कि जिन्होंने उसकी अपेक्षा बहुत कम किया था, उन्हें सिक्ख-युद्धमें सैनिक-सेवाओंके लिये इनाम और सम्मान दिये गये, जब कि उस सम्बन्धमें उसका नाम भी नहीं लिया गया। वह परिवर्तन और शान्तिका दृढ़ इच्छुक था, और अक्तूबर १८४७ ई० में, उसने इंगलैण्डके लिये प्रस्थान किया।

इंगलैण्डमें उसके सम्मानमें अनेक भव्य स्वागत-महोत्सव मनाये गये। कम्पनी और दूसरे उच्च पदोंपर आसीन लोगोंने उसके साथ जो बर्ताव किये थे, उससे उसको चाहे जो भी असंतोष हुआ हो, लेकिन इंगलैण्डमें जिस जोशके साथ स्वागत किया गया था, उसने बतला दिया, कि उसके देशवासी अपने हृदयमें नेपियरके वीरतापूर्ण कामोंको इज्जतसे देखते हैं।

इसके बाद फिर समय आया, जब कि इस फौलादी योद्धाकी भारतमें आवश्यकता पड़ी। १८४६ ई० में सिक्खोंको जबर्दस्त हार खानी पड़ी थी। उससे समझ लिया गया था, कि अब लम्बे अर्से तक कोई खतरा नहीं। लेकिन, ऐसा नहीं हुआ। पंजाबी विजेताओंके जूयेको उठानेमें असमर्थ हो गये, और फिरसे हिम्मत करके १८४८ ई० में उन्होंने विद्रोह करके द्वितीय सिक्ख-युद्ध शुरू कर दिया। इस विद्रोह का मुकाबिला करनेके लिये अंग्रेजोंने जबर्दस्त तरीके अख्तियार किये। प्रधान सेनापति लार्ड गफके संचालनमें अंग्रेजोंकी "पंजाबकी महासेना" अक्तूबरके अन्तमें दुश्मनके देशमें घुसकर युद्ध करने लगी। आरम्भमें प्रगति धीमी हुई, यद्यपि दो बार भिड़न्त हो चुकी थी। अगली जनवरीसे पहले कोई महत्वपूर्ण लड़ाई नहीं हुई। उसी महीनेकी १४ तारीखको चिलियांवाला गांवमें भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सिक्ख हटनेके लिये मजबूर हुये। इसके बारेमें

अंग्रेजोंने लिखा है, "भारतमें जितनी बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हुईं, उनमें यही ऐसी लड़ाई थी, जिसको हारके अत्यन्त समीप कहा जा सकता है।" संघर्ष बड़ा भयंकर रहा, जो रातके अंधेरा होते तक चलता रहा। थकी-मांदी अंग्रेजी सेना जब उस रातको आराम करने लगी, तो उसे २४६६ हताहतों, तीन रेजिमेन्टोंके' रंगरूटोंसे हाथ धोना पड़ा।

उसका चमत्कारिक जीवन अब अन्तके नजदीक पहुंच रहा था। इतना मजबूत शरीरका होनेपर भी बीमारीने उसे पकड़ लिया, और वह दिन आया, जब कि उसे जनताने अन्तिम बार देखा। सेंट पालके गिर्जेमें अपने यशस्वी नायक ड्यूक वलिंगटनकी अर्थीको उठानेवालोंमें वह भी एक था। इसी समय उसे सर्दी लग गई, जिससे फिर छुटकारा नहीं मिला, और २६ अगस्त १८६३ ई० में २२वीं रेजिमेंटकी पुरानी पताकाओंके नीचे इस शेरदिल योद्धाने अपनी अन्तिम यात्रा पूरी की। और कई लोगोंके गवाँसे का शोक करना पड़ा।

जब इस लड़ाईकी खबर इङ्गलैंड पहुँची, तो इसपर बहुत अफसोस और गुस्सा प्रकट किया गया, तथा लार्ड गफके खिलाफ आवाज उठाई गई। लोग सारे दाफक इस सत्यानाशके सारे दोषकी जिम्मेवारी उसीके ऊपर रख रहे थे, और नये खतरेको देखते हुए समझते थे, कि प्रधान सेनापतिका बदलना अत्यावश्यक है। सभी आंखें अब सिंधके वीरकी ओर थीं। ईस्ट-इण्डिया कम्पनीने बहुत रुकावटें डालीं, लेकिन जनताकी मांगके सामने झुकना पड़ा। इसके बाद नेपियर बड़ी शीघ्रताके साथ भारतकी ओर चला। पहले वह द्विविधा में था, कि इस पुकारको सुनूँ या नहीं। लेकिन, जैसा कि उसने खुद कहा है— "जब ड्यूक वेलिंगटनने मेरी नियुक्तिके बारेमें पहलेपहल कहा और मैंने बतलाया, कि भारतमें मेरे बहुतसे शत्रु हैं, जो मुझे उपयोगी नहीं होने देंगे। उसने हंसते हुए अपनी बातपर और जोर देते हुये कहा—अगर तुम नहीं, तो मुझे जाना होगा।" नेपियरने इसके बाद जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। यह कर्तव्यके लिए आह्वान था, जिसके सामने उसे सिर झुकाना था।

लेकिन, लड़ाईमें उसकी सेवाओंकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि नेपियरके भारतमें पहुँचनेसे पहले ही लार्ड गफने गुजरातमें एक जबर्दस्त जीत और कई सफलतापूर्ण भिड़न्तोंमें सिक्खोंकी शक्तिको सदाके लिए नष्ट कर दिया। जब नेपियर भारतके तटपर उतरा, तो देखा कि गवर्नर जेन-रलने एक घोषणा निकाल कर पंजाबके राज्य और उसकी सारी भूमिको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया।

—२६ मार्च १८४६ को पंजाबको अंग्रेजोंने लिया। इसी समय कोह-नूर हीरेको इंगलैंड की रानीको समर्पित किया गया। इस ऐतिहासिक रत्नने भारतके कितने ही सम्राटोंके मुकुटकी शोभा बढ़ाई थी। भाग्यके बहुतसे उतार चढ़ावको देखते वह पंजाबके शासक रणजीतसिंहके हाथमें आया, जिसके बाद वह उनके पुत्र महाराजा दलीपसिंहको मिला जो कि अबसे अंग्रेजी सरकारका पेंशनर था। उसीने इस हीरेको रानी विक्टो-रियाको अर्पित किया।

युद्धके इस प्रकार सफलतापूर्वक समाप्तिके लिये जो आम खुशी प्रकट की जा रही थी, उसके लिये नेपियरको किसीसे कम प्रसन्नता नहीं हुई, जो अब गफकी जगह पर प्रधान सेनापति बनने जा रहा था। इङ्गलैंडसे चलनेके पहले चिलियाँवाला लड़ाईके बारेमें लार्डगफके खिलाफ जो वावेला मचाया गया था, उसे बुरा कहा। जब कलकत्ता पहुँचने पर उसने देखा, कि जिस कामके लिये मैं भेजा गया था, वह पूरा हो गया। और लार्डगफकी कीर्ति फिर पूर्ववत् हो गई, नेपियरने लिखा—"तुम सुनोगे, कि भारतमें युद्ध खतम हो गया, और लार्ड गफ विजयकी पताका फहराते उससे बाहर आया। यह बातें मुझे बहुत प्रमोदित करती हैं।...और मुझे फिर पुराने गफके साथ आनन्द प्रकट करने दो। वह इतना भला, इतना ईमानदार और इतना भव्य दिमागका आदमी है।"

नेपियर भारतमें दो साल तक रहा। इस समय उसने प्रधान सेनापति के तौरपर सेनामें पैदा हुई बुराइयोंको सुधारनेमें अपनेको लगाया। अपने कार्यकालके अन्तमें ५७ वर्षकी उमरमें उसने भारतको अन्तिम विदाई दी और इङ्गलैंडमें जाकर चुपचाप शेष जीवन बितानेके लिए लौटा।

## ८—सर जान लारेंस (१८११-५७ ई०)

(१८५७ का साल भारतके इतिहासमें सदा स्मरणीय रहेगा। इसी साल महान् सिपाही-विद्रोह फूट पड़ा, और ) सम्पूर्ण भारतमें भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ, जिसने सारे देशको हिला दिया। महीनों विद्रोहका झण्डा फहराता रहा, महीनों आग और तलवार अपने खूनी कामको करती रही। इतिहासके किसी समयमें भी अंग्रेजी शासनने इससे भयानक दिन नहीं देखे।

पहले यह देखना है, कि बाहरसे देशके संतुष्ट दीखने और प्रायः एक शताब्दी तक अंग्रेजी शासनके स्थापित होनेके बाद अंग्रेजी साम्राज्यकी रक्षा कैसे एकाएक खतरेमें पड़ गई। विद्रोहके वास्तविक कारणोंका बतलाना आसान नहीं है। इसके कई कारण थे। इसमें सन्देह नहीं, कि ब्रिटिश राज्यके बड़ी तेजीसे विस्तार ( १८५६ ई० में अवधके बड़े प्रदेशको भी अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया) के कारण देशियोंको भय होने लगा, कि बहुत दिन नहीं बीतेगा, जब हिन्दू और मुसलमान धर्मको खतम कर दिया जायगा, और ईसाई धर्मको जबर्दस्ती स्थापित कर दिया जायेगा। यह विश्वास इतना मूलबद्ध हो गया था, कि हरेक अफवाह पर लोग कान देनेके लिये तैयार थे। बदनीयत आदमियोंने लोगोंके सीधे-सादे विश्वाससे लाभ उठाते अंग्रेजोंके मनसूबेके बारेमें तरह-तरहकी झूठी बातें फैलानी शुरू कीं। उनमेंसे एक थी नई एनफील्ड बन्दूकोंके सम्बन्धमें, जो कि सेना-में अभी-अभी बांटी जानेवाली थीं। कहा जाने लगा, कि इनके कारतूसों-में, गाय और सूअरकी चर्बियाँ लगी हैं। इन कारतूसोंकी फुनगीको दाँतसे काटकर ही दागा जा सकता था। इसके बारेमें बतलाया जाने लगा, कि इसीलिये गाय और सूअरकी चर्बी लगाई गई है, कि जिसमें हिन्दू और मुसलमान सिपाही अपने धर्मको खो बैठें। जनवरी १८५७ ई० में यह अफवाह फैल चुकी थी। बंगाल पैदल रेजिमेंटका एक ब्राह्मण सिपाही

अपने चौकेमें था। छोटी जातके एक आदमीने उससे लोटेमें पानी मांगा। ब्राह्मणने जवाब दिया :

"मैंने अभी इसको मांजा है, तुम्हारे छूनेसे यह खराब हो जायगा।"

दूसरेने जवाब दिया— "तुम जातका बड़ा ख्याल करते हो। अच्छा थोड़ा ठहरो, साहेब लोग गाय और सूअरकी चर्बी लगे कारतूसोंको तुम्हें मुंहसे काटनेके लिये कहेंगे, तब तुम्हारी जात कहाँ जायेगी ? इसी समय ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी, कि १८५७ ई० में कम्पनीका राज्य खतम हो जायेगा। "अंग्रेजोंने एक शताब्दी पहले पलासीकी लड़ाई में भारतको जीता, लेकिन अब भाग्यने उनके अन्तको निश्चित कर दिया है। अब उन्हें धरती चाटनेके सिवा और कोई रास्ता नहीं है।" इस भविष्यवाणीपर लोगोंका पूरा विश्वास था। सिपाही भी अब अपना मूल्य समझने लगे थे। वह विश्वास करते थे, कि हमारी ही बहादुरीसे अंग्रेजोंने विजय प्राप्त की, मुल्क जीते। वह यह भी जानते थे, कि भारतमें गोरी सेना बहुत कम है। उनको विश्वास था, कि अंग्रेजी राज्यका भविष्य हमारे हाथमें है। इनके अतिरिक्त हालमें ही अंग्रेजी राज्यमें मिलाये अवधमें दूसरी तरहका असंतोष था, जिसका कारण वहाँके अंग्रेज चीफ-कमिश्नर जेक्सनके बर्तावोंके प्रति लोगोंका असंतोष था। दिल्लीमें अब भी नामका मुगल बादशाह रहता था। अंग्रेज अब उसे भारतके किसी दूसरे हिस्सेमें भेज देनेकी धमकी दे रहे थे। इसके कारण भी असंतोष फैला हुआ था।

विद्रोहके कुछ कारण ये थे, और १८५७ ई० के आरम्भमें यह थी स्थिति। बहुत समय नहीं बीता, कि प्रहार आरम्भ हो गया। जनवरीमें बारकपुरमें आग लग गई। अफसरोंने समझानेकी कोशिशकी, कि चर्बीवाले कारतूसों और देशी लोगोंके धर्मपर प्रहार करनेकी बातें बिलकुल झूठी हैं। लेकिन, इसका कोई फल नहीं हुआ। भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें सिपाहियोंकी पल्टनोंपर पल्टनें इससे प्रभावित हो गईं, और मईमें विद्रोहने भयंकर रूप धारण किया। १० जनवरीकी इतवारकी शामको मेरठमें प्रथम भयंकर विस्फोट हुआ। सिपाहियोंने अपने अफसरोंको गोली मार दी, फिर जो भी

मिलता स्त्री या पुरुष, बालक या बूढ़ा, यूरोपियन मिला, किसी प्रकारका भेद किये बिना उसे मारकर वह वहांसे ४० मीलपर अवस्थित दिल्लीके लिये रवाना हुये। वहां पहुंचनेपर वहांकी छावनीके भी सिपाही भी मेरठवालोंके साथ मिल गये। इसके बाद भयंकर विनाश और हत्याका काम शुरू हुआ। कुछ थोड़ेसे ही अंग्रेज बच निकलनेमें सफल हुये, बाकी सभी स्त्रियों-बच्चों सहित निर्दयतापूर्वक गोलीसे उड़ा दिये। शहरपर अधिकार करके उन्होंने अन्तिम मुगल बादशाहको भारतका बादशाह घोषित किया। इसी बीच इस तरहके भयंकर अत्याचारोंके साथ चारों ओर विद्रोह की आग फैल गई। बहुत समय नहीं बीता, कि सिपाहियोंने हजारोंकी संख्यामें अंग्रेजी झण्डेको छोड़कर अपने हथियारोंको अंग्रेजोंकी ओर कर दिये।

यह साफ मालूम होने लगा, कि विद्रोहका केन्द्र दिल्ली होगा। इसलिये सबकी आंखें उधर लगीं। अंग्रेज समझने लगे, कि दिल्ली पर फिरसे अधिकार करना हमारे साम्राज्यके लिये अत्यावश्यक है। जब तक राजधानी विद्रोहियोंके हाथमें है, तब तक अंग्रेजोंकी शक्तिपर लोगोंका विश्वास नहीं हो सकता, और भारत शत्रुओंकी दयापर निर्भर रहेगा।

लेकिन, प्रश्न था, कैसे दिल्लीपर अधिकार किया जाये? कई हजार सैनिकोंके साथ भी सात मीलके घेरेवाली इसकी मजबूत किलाबन्दीको तोड़ना साधारण काम नहीं था। इस समय भारतमें अपेक्षाकृत कम अंग्रेजी सेना थी, और उनकी मांग देशके भिन्न-भिन्न भागोंसे बराबर आ रही थी।

प्रतिदिन नये आनेवाले विद्रोहियोंसे शत्रुकी शक्ति बराबर बढ़ रही थी, लेकिन उसकी पर्वा न करके अंग्रेजोंने जितनी भी प्राप्त हो सके, उतनी सेनाको शीघ्रतापूर्वक दिल्ली भेजनेका निश्चय किया। ८ जूनको एक छोटी थोरी सेनाने दिल्लीसे दो मीलपर अवस्थित पहाड़ी-रिज-पर मोर्चाबन्दी कर ली। इस सेनामें पहले सिर्फ तीन रेजिमेन्ट थीं, जिसमें कुछ और सैनिक टुकड़ियां आ मिलीं। इस सेनाने शत्रुके एक डिवीजनको हराकर दिल्लीसे दो मील पर अवस्थित रिज (पहाड़ी) में मोर्चाबन्दी की। इस समय तक

दिल्लीमें कितने ही हजार सिपाही आ पहुँचे थे। जब मेरठसे वह पहले-पहल शहरके दरवाजोंपर पहुँचे, तो कहीं उनके हाथमें भारी बारूदखाना और हथियार न चला जाये इसके लिये उसके वहाँ नियुक्त अफसर लेफ्टनेंट विलोबाईने करीब-करीब अपने साथियोंके जीवन की आहुति दे उड़ा दिया। इसमें शक नहीं इस अफसर और उसके आठ साथियोंने इतनी कुर्बानी करके गोला-बारूदको विद्रोहियोंके हाथमें जानेसे बचा लिया। अब वहां मोर्चाबन्दी करके अंग्रेज कलकत्तासे कुमक आने या उचित अवसर पानेकी प्रतीक्षा करने लगे।

जिस वक्त अंग्रेज इस तरह बहादुरी के साथ पहाड़ीमें अपने पैरोंको मजबूतीसे रक्खे पड़े थे, उसी समय एक ऐसी ओर से सहायता पहुँचानेकी तैयारी हो रही थी, जहाँसे उन्हें मुश्किलसे कोई आशा हो सकती थी। आठ ही साल पहले १८४९ ई० में पंजाबको अंग्रेजोंने अपने राज्यमें मिला लिया था। इस समय वहाँका शासक सर जान लोरेंस था। जैसे ही उसे यह खबर मिली, कि विद्रोहियोंने दिल्ली पर अधिकार कर लिया, तो उसे केवल स्थितिकी गंभीरता हीका पूरी तौरसे पता नहीं लग गया, बल्कि वह समझने लगा, कि नगरपर फिरसे अधिकार करनेके लिये मुझे भी अपनी सारी शक्तिसे काम करना होगा। जान लारेंस इस कामको पूरा करनेमें सफल हुआ। अंग्रेजोंके लिये जो पहले सबसे खतरनाक थे, वह पंजाबी सिक्ख कैसे अंग्रेजी शासनकी रक्षाके साधन बने, इसे जाननेके लिये हमें इस आदमीके पहलेके जीवनके बारेमें कुछ जाननेकी आवश्यकता है।

जान लारेंसका बाप टिपू सुलतानकी लड़ाईमें एक अंग्रेज अफसरके तौर पर लड़ा था। जानने स्वयं भी अपने तीन बड़े भाइयोंकी तरह सैनिक बनना चाहा। उसमें असफल होनेपर १८ वर्षकी उमरमें १८२९ ई० में वह लेखक (राइटर) बन गया। भारतमें उसके आरम्भिक वर्ष पश्चिमोत्तर प्रदेशमें मजिस्ट्रेट और मालगुजारी उगाहकके तौरपर बीते। इसी समय उसने देशी लोगोंके स्वभाव और स्थितिका गम्भीर परिचय प्राप्त किया, जिससे उसे पीछे बहुत सहायता मिली। अंग्रेजी राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंमें तत्परतासे काम करते वह अपनेसे बड़ोंकी प्रशंसा और छोटोंके सम्मानका पात्र

बना। प्रथम सिक्ख-युद्ध (१८४६ ई०) के अन्तमें उसे अपनी सेवाओंके बदले गवर्नर-जेनरल द्वारा नए जीते हुये जलन्धर जिलेके कमिश्नरका पद मिला। सिक्ख-युद्धके समय तत्परतासे उसने दिल्लीसे रसद भेजी थी। यदि वह न मिलती, तो गफ सोबरांवके निर्णायक युद्धमें विजय न प्राप्त कर सकता। जलन्धरके कमिश्नरके तौरपर उसने अपने कामको बहुत अच्छी तरहसे किया—शासनमें उसने कई तरहके सुधार किये, न्याय की नई व्यवस्था की, सड़क, पुल और दूसरी सार्वजनिक इमारतें बनवाईं। लड़ाई के जख्मको थोड़े समयमें भरकर उसने लोगोंमें संतोष पैदा किया। और जान लारेन्स साहबका यश घर-घरमें गाया जाने लगा। फिर परिवर्तन हुआ। द्वितीय सिक्ख-युद्ध आरम्भ हो गया। पहले इसमें सन्देह किया जाने लगा, कि शायद उसने जो काम आरम्भ किया है, वह बरबाद हो जायेगा। लेकिन जब द्वितीय युद्धके परिणामस्वरूप सारा पंजाब अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया, तो उसे अपनी योग्यताका परिचय देनेके लिए और बड़ा क्षेत्र मिला। पंजाबके शासनके लिये एक बोर्ड कायम किया गया था, जिसका प्रेसीडेंट उसका बड़ा भाई सर हेनरी लारेंस था। जान भी बाकी दोमेंसे एक मेम्बर था। दोनों भाइयोंकी मेहनतसे तीन सालमें ही पंजाबकी स्थिति बिल्कुल बदल गई। अशान्ति और अव्यवस्था हटकर सब जगह शान्ति और सुव्यवस्था देखी जाने लगी। १८५२ ई० में नीति-संबंधी कुछ बातोंमें दोनों भाइयोंमें मतभेद हो गया। दोनोंने इस्तीफा दे दिया। इसपर बोर्डको खतम कर दिया गया। अब गवर्नर जेनरलने तीन संयुक्त शासकोंकी जगह पंजाबमें एक चीफ-कमिश्नर रखनेका निश्चय किया, और जान लारेंसकी इस पदपर नियुक्ति की। जान लारेंस बड़े उत्साहके साथ नई विजित भूमिके शासन संगठनमें पूरी तौरसे जुट पड़ा। और उसके अधीन कप्तान ट्राटरके अनुसार 'पंजाब सचमुच एक आदर्श प्रदेश बन गया। हिंसात्मक अपराध कम और कम होते गये। हरेक जिलेमें देशी अफसर अपनेको अंग्रेज उच्च अफसरोंके प्रति बड़े विश्वासपात्र और सहायक साबित करने लगे। व्यापारमें खूब वृद्धि हुई।...अधिकांश जनता खुशहाल

और संतुष्ट दीखने लगी। "दूसरे शब्दोंमें कहा जा सकता है, कि जिस साल गदर फूट पड़ा, उस साल तक सर जान लारेंसने अपने वैयक्तिक प्रभाव और प्रताप, तथा अपने साथी सैनिक और असैनिक योग्य अफसरोंकी मदद-से सिक्ख सरदारों और जनसाधारणका इतना स्नेह और सम्मान प्राप्त कर लिया था, कि वही लोग जो कुछ साल पहले अंग्रेजोंके साथ इतनी निष्ठु-रताके साथ लड़े थे, अब उनके विश्वासपात्र मित्र हो गये थे।

इस सफलतापर लारेंसको १८५६ ई० में के० सी० बी० की उपाधि मिली। उसके एक पुराने साथीने लारेंसके बारेमें अपने एक पत्रमें लिखा था : "उसके स्वभावमें जरा भी हीन भाव, ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। उसके जैसे महानतम् आदमीको मैंने नहीं देखा। सीमान्तपर हम उसे राजा जान कहा करते थे, अब भी वैसे ही सोचते मैं उससे स्नेह करता हूं।"

जब पंजाबमें विद्रोहकी खबर पहुँची, तो जान लारेंसने क्या किया ? तार तब तक लग चुके थे। जिस समय तार द्वारा यह खबर पहुँची, उस समय वह लाहौरसे कुछ दूर स्वास्थ्य सुधारके लिये गया हुआ था। पंजाबकी सुरक्षाके लिये जिन कार्रवाइयोंकी आवश्यकता थी, उसे राबर्ट मोन्टगोमरीने पूरा किया, जिसके हाथमें जान लारेंसने कामको सौंपा था। पंजाबमें उस समय भिन्न-भिन्न जगहोंमें ३६ हजारसे कम, ( पुरबिये ) सिपाही नहीं थे, जो सभी विद्रोहके लिये उतारू थे। और गोरी सेनाकी संख्या ११०००, अनियमित सिक्खोंकी १४००० थी। खुद लाहौरमें "तीन पैदल और एक सवार देशी रेजिमेंट थी, जो मेरठकी घटनाकी खबर पाते ही उनका अनुसरण करनेके लिये तैयार थी। मेरठ और दिल्ली-के अत्याचारोंको न दोहराये जानेके लिये यह जरूरी था, कि बिना देर किये उसके बारेमें कुछ किया जाये। इसके लिये पहला यह सोचा गया, कि पंजाबकी राजधानी लाहौरमें मौजूद देशी रेजिमेंट तोड़ दी जाये। इसके अनुसार खबर पानेके दूसरे दिन सबको परेड करनेका हुकुम हुआ। सदा-के अनुसार तीन हजार सिपाही मैदानमें खड़े हुये। फिर ६०० गोरोंकी पल्टनने १२ तोपोंको लेकर एकाएक उनको घेर लिया। सिपाहियोंको हथि-

धार रखनेका हुकुम दिया गया। उन्हें इन्कार करनेकी हिम्मत नहीं हुई, जब उन्होंने देखा, कि गोरा तोपखाना और रिसाला उनपर प्रहार करनेके लिये तैयार है। इस प्रकार लाहौरको विद्रोहियोंके हाथमें जानेसे बचा लिया गया। इसके बाद पंजाबमें दूसरी जगहोंमें अवस्थित अन्य सिपाही रेजिमेंटोंको बेहथियार किया गया; यद्यपि सभी जगह यह काम लाहौरकी तरह आसानीसे नहीं हुआ। इस प्रकार जान लारेंसने इन कार्रवाइयोंसे अपने प्रदेशको पूरी तौरसे सुरक्षित करके दिल्लीकी ओर ध्यान दिया।

लारेंसकी दृढ़ न्यायानुमोदित और सहानुभूतिपूर्ण दृढ़ शासनका ही यह परिणाम था, जो कि पंजाब इस समय अंग्रेजोंका इतना भक्त रहा। अब उसने सिक्ख राजाओंसे सहायता मांगी। १४००० पंजाबी पहले ही अंग्रेजोंकी सेनामें थे, जो बराबर उनके अनुरक्त रहे। लारेंसकी आज्ञा मानकर सिक्ख राजाओंने कई हजार सैनिक तैयार किये। जैसे ही संगठित हो कवायद-परेड सीख ली, तैसे ही उन्हें जल्दी से जल्दी दिल्ली और कुछ दूसरी जगहोंमें भी भेज दिया गया।

लारेंसने किस तरह इस सहायताको बड़ी दूरदर्शितापूर्वक संगठित किया, इसका उदाहरण है—"उसने अपने भूतपूर्व सिक्ख शरीर-रक्षकको बुला, उसकी सहायतासे १८४८ ई० के विद्रोहमें हानि उठानेवाले मुख्य-मुख्य राजाओं और सरदारोंकी एक सूची बनाई। फिर उसने उनमेंसे हरेकको लिखकर कहा, कि अपने चुने हुये अनुयायियोंके साथ आकर अपनी भक्ति प्रदर्शित करो। ये सरदार अपने अनुयायियोंके साथ आये, जिन्हें लारेंसने तुरन्त दिल्ली भेज दिया। इस कार्रवाईका दोहरा प्रभाव पड़ा। दिल्लीमें घिरी हुई अंग्रेजी सेनाको अच्छी मदद मिल गई, और पंजाब उन लोगोंसे मुक्त हो गया, जिनके असंतोषसे उसे खतरा हो सकता था। विद्रोहियोंके आदमियोंने बहुत भड़कानेकी कोशिश की, लेकिन वह अपने घरको छोड़ चुके थे, और अंग्रेजोंकी सेवा करनेके सिवा कोई और चारा नहीं था।

इस प्रकार कुछ सप्ताह बीते। अब वह दिन नजदीक आने लगा, जब कि जान लारेंसकी मेहनत फल देनेवाली थी। दिल्लीके बाहर रिज (पहाड़ी)

पर शहरकी तोपों और शत्रुके छापामारों द्वारा जबर्दस्त प्रहार हो रहा था, पर अंग्रेज अपनी जगह मजबूतीसे कायम थे। यद्यपि दिल्लीको अभी अंग्रेज नहीं ले सके थे, लेकिन सर जान लारेंस लगातार सैनिक, घोड़े, तोपें तथा दूसरी आवश्यक चीजें भेज रहा था, जिससे उनकी स्थिति काफी दृढ़ हो गई थी।

अब पंजाबकी सबसे बड़ी देन दिल्ली पहुँची। जान लारेंसके सहायक प्रसिद्ध अफसरोंमें ब्रिगेडियर निकोल्सन भी था। जिस समय सिपाहियों (उत्तर प्रदेश, बिहारवालों), की रेजिमेन्टें तोड़ी जा रही थीं, उसी समय दो हजार सैनिकोंकी एक घुमन्तू सेना तैयार की गई, जिसका कमाण्डर निकोल्सन था, जिसका काम था, जहां भी जरूरत पड़े, वहां जल्दी पहुँचकर काम करे। जुलाईके अन्तमें लारेंसने देखा, कि दिल्ली अब भी विद्रोहियोंके हाथमें है, और यह भी कि प्रतिसप्ताह भिन्न भिन्न जगहोंसे नये-नये सैनिक भरती हो हमारी छावनीमें आ रहे हैं। उसने सोचा, कि ब्रिगेडियर निकोल्सनकी सेनाको पंजाब से छोड़ा जा सकता है। उसने निश्चय किया, कि निकोल्सन उसे ले दिल्ली जाये, और वहां स्थित अंग्रेज जेनरलको जोर देकर कहे, कि और प्रतीक्षा किये बिना शहरपर तुरन्त आक्रमण कर दिया जाये।

इसीके मुताबिक काम किया गया। अपने आदमियोंसे एक सप्ताह पहले ८, अगस्तको निकोल्सन अंग्रेज-जेनरलसे सलाह करनेके लिये उसके पास पहुँचा। "उसके लम्बे गर्वीले शरीर और दृढ़ किन्तु सुन्दर चेहरेको देखकर ही रिजके युद्धसे व्याकुल अफसरोंमें नई हिम्मत पैदा हो गई। उसके बाद निकोल्सनके नेतृत्वमें जब उसकी सेना आ पहुँची, तो सभीने उसे विजयका वाहक समझा।"

जब पंजाबसे आनेवाले सभी सैनिक आ गये, तो साढ़े तीन महीने बाद दिल्ली शहरपर प्रहार शुरू हो गया।

एक सप्ताह तक लगातार शहरके ऊपर गोलाबारीके बाद १३ सितम्बर को दीवारमें एक काफी बड़ा छेद होनेका पता लगा। इसके बाद सबसे भयंकर

संघर्ष आरम्भ हुआ। १४के बड़े तड़के प्रहार करनेके लिये अंग्रेजी सेना कई कालमोंमें बढ़ी, जिनमेंसे एकका संचालन निकोल्सन कर रहा था, और जो गिरनेवालोंमें सबसे पहला था। यह सेना टूटी हुई जगहसे भीतरकी ओर दौड़ी। फिर प्रसिद्ध कश्मीरी दरवाजेको उड़ा दिया गया। इस कामको १६ इंजीनियरोंने किया। जिनमेंसे ४ को छोड़कर सभीने अपने प्राण गँवाये। अब सारी सेना नगरके भीतर घुस पड़ी। छः दिन तक दिल्लीकी सड़कोंपर लड़ाई होती रही। दोनों ओरके सैनिक जीजानसे लड़ते रहे। किसीने एक दूसरेके प्रति कोई दया नहीं दिखलाई।

२० सितम्बरको नगरपर अंग्रेजोंका अधिकार हो गया, जिसके लिए उनके ३५-३७ सैनिक हताहत हुए। यह महान् विजय उससे पहले ही प्राप्त की जा चुकी थी, जबकि अभी भारतके दूसरे भागों या इङ्गलैंडसे कोई कुमक दिल्ली नहीं पहुँची थी। विद्रोहियों पर यह ऐसी चोट थी, जिसे वह फिर कभी संभल नहीं सके। लार्ड लारेंसकी जीवनीलेखक बोसवर्थ स्मिथने लिखा है—'दिल्लीके पतनसे विद्रोहियोंकी आशायें ध्वस्त हो गईं। खतरे की भयानकता खतम हो गई, क्योंकि विद्रोह अपने हृदयमें नष्ट कर दिया गया। हमने जिस मोर्चाबन्दीको स्वयं बनाई या मरम्मत की थी, जिस गोले बारूदको हमने स्वयं जमा किया था, जिस मुगल-राजधानीकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा और स्वाभाविक शक्तिको हमनेही पुनः स्थापित किया था, वह सब हमारे प्रहारको बर्दाश्त करनेमें असफल हुई। जब दिल्लीकी हालत यह हुई, तो कोई भी दूसरा नगर या (विद्रोही) सेना अधिक सफलताकी क्या आशा रख सकती थी? पश्चिमोत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेशमें अभी कई महीनों तक लगातार संघर्षका सामना करना था, लेकिन विद्रोहियोंके लिये यह विजयका नहीं, बल्कि केवल अपने प्राणोंके लिए संघर्ष था। लखनऊको छोड़कर कहीं भी हिम्मतके साथ आक्रमण न कर वह हमारे सामने आये और फिर लुप्त हो गये। इसके बाद हमारे लिये यही काम था, कि उन्हें चुन चुन कर शिकार करें। उनको पाकर पांट देने भरसे संतोष न करें।

इसी समय एक स्मरणीय घटना घटी। जिस दिन दिल्ली पर अंग्रेजोंने अधिकार किया, उसके अगले दिन कप्तान हाडसन कुछ अनियमित सवा-

रोंके रिसाला—(पीछे हाक्सन रिसाला) जिसने मुहासिरेके समय अपनी बहादुरीके कारनामोंके कारण बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी, ५० सैनिकोंके साथ बहादुरशाहको पकड़ने गया। बहादुरशाहको विद्रोहियोंने भारतका बादशाह घोषित किया था। उसने नगरसे कुछ मील दूर हुमायूँके मकबरेमें शरण ली थी। दो घंटे तक अपनी रानी और एक प्रिय पुत्रके जीवन रक्षाके बारेमें बातचीत करनेके बाद घसीट कर बाहर निकाल उसे बैलगाड़ी पर चढ़ा हडसनने उक्त अफसरोंके हाथमें दे दिया। अगले दिन सबेरे हडसनने बहादुरशाहको गिरफ्तार किया। जब वह उन्हें लिए दिल्लीकी ओर जा रहा था, तो उसे डर लगा, कि शायद लोग उन्हें छुड़ानेकी कोशिश करेंगे, इसलिए उसने अपने ही हाथोंसे शाहजादोंको गोली मार दी।

अगले साल १८५८ ई० की जनवरीमें अपनी राजधानीके महलमें ही बहादुरशाहपर विद्रोहियोंको प्रोत्साहन और सहायता देने तथा ४९ अंग्रेज अफसरों, स्त्रियों और बच्चोंको दिल्लीमें हत्या करनेके अपराधमें मुकदमा चलाया गया। उसे दोषी ठहराया गया, लेकिन जान बख्श कर (रंगून) में आजीवन निर्वासनका दण्ड दिया गया, जहाँ मुगलोंके इस अन्तिम मुकुटधरने अपने जीवनके अन्तिम दिन बिताए।

दिल्लीकी इस असाधारण विजयका मुख्य कारण होनेका यश केवल एक आदमी—जान लारेंस—को है। यदि वह पंजाबसे इतनी बड़ी सहायता पहुँचानेके लिए पूरी लगनसे काम न करता, तो दिन-पर-दिन जिस तरह विद्रोहियोंकी हिम्मत और शक्ति बढ़ रही थी, उससे वह रिजपर मौजूद छोटी सी अंग्रेज सेनाको मार भगानेमें सफल होते, और इसके कारण विद्रोहही आगे नहीं बढ़ता, बल्कि अंग्रेज भारतको भी अपने हाथसे खो देते। इसीलिए अंग्रेज जान लारेंसको "भारतका त्राता" कहते हैं।

अपनी सेवाओंके लिये १८५७ ई० में जान लारेंस को जी० सी० बी० की उपाधि मिली। फिर १८५९ ई० में दो हजार पोंड वार्षिक पेन्शन के साथ बैरोनेटकी उपाधि मिली। जब १८६४ ई० में लार्ड एलगिन मर गया, तो जान लारेंसको भारतका वायसराय और गवर्नर जेनरल बनाया गया। अपनी मृत्युसे दस साल पहले जब वह इङ्गलैंड लौटा, तो उसे "पंजाब और ग्रेटलीका बैरन लारेंस" की उपाधि दे लार्ड बना दिया गया।

जान लारेंसकी मृत्यु १८७९ ई० में हुई।

## ९—सर हेनरी लारेंस (१८०७-५७ ई०)

विद्रोह होने ही वाला था, इसी समय मार्च १८५७ ई० में जेक्सनकी जगह पर सर हेनरी लारेंसको अवधका चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया। गवर्नर-जेनरलको मालूम होने लगा, कि इस प्रदेशमें स्थिति बदतर होती जा रही है। जो असंतोष और कठिनाइयाँ वहाँ जमा हो गई थीं, उनके हटानेके लिये हेनरीको अधिक योग्य समझा गया। सर जान लारेंसका बड़ा भाई हेनरी लारेंस अंग्रेज अफसरोंमें बहुत योग्य माना जाता था। १६ वर्षकी उमरमें १८२३ ई० में हेनरी कम्पनीकी सेनामें तोपखाने का कैडेट बना। उसके ऊपरके अफसरोंने हेनरी की योग्यताकी बड़ी प्रशंसा की। बड़े होते बड़ी तेजीके साथ योग्यता, बुद्धि और उच्च विचारोंके लिये उसकी ख्याति बढ़ी। उसने भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपने देशकी सेवा की। पहले बर्मा की लड़ाईमें लड़ा। फिर उसने अफगानिस्तानमें योग्यता दिखलाई। फिर असैनिक अफसरके तौरपर सिक्ख युद्धमें काम किया, और तब लाहौरमें अंग्रेज रेजीडेंटके महत्वपूर्ण पदपर उसकी नियुक्ति हुई। इस पदपर उसने दो साल तक बड़ी योग्यताके साथ काम किया, और स्वास्थ्यके खराब होनेसे इंगलैंड जानेके लिये मजबूर हुआ। १८४८ ई० में भारत लौटनेके बाद उसने फिर लाहौरमें अपना काम संभाला। अब पंजाब अंग्रेजी राज्यमें मिलाया जा चुका था, इसलिए वहाँ रेजीडेंटकी आवश्यकता नहीं थी। पंजाबके शासन प्रबन्धके लिए जो तीन आदमियोंका बोर्ड बनाया गया था, उसका उसे प्रेसीडेंट नियुक्त किया गया। पंजाबके अंग्रेजी राज्यमें मिलाए जानेके चंद वर्षोंमें हेनरी और उसके भाई जानने कैसा अच्छा काम किया, यह हम बतला चुके हैं। बोर्ड तोड़नेके बाद छोटा भाई जान पंजाबका चीफ कमिश्नर बनाया गया, और हेनरी लारेंस राजपूतानाकी रियासतोंके लिए अंग्रेज प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। यहाँ उसने चार साल काम किया। स्वास्थ्य खराब होनेके कारण वह देश लौटने ही वाला था, जब

कि गवर्नर-जेनरलके कहने पर वह अवधके चीफ कमिश्नरके पदको संभालने के लिये लखनऊ गया।

जैसा कि जल्दी ही पता लगा, उसकी नियुक्ति देरसे हुई। हेनरी लारेंसके पूर्वके अधिकारीने अवधके लोगोंको मित्र बनानेकी जगह विरोधी बना लिया था। नये कमिश्नरने लखनऊ पहुँचकर देखा, "हरेक बात जो नहीं करनी चाहिये थी, उसे कर दिया गया था, और जिसे सबसे पहले करना चाहिये था, उसे बिलकुल नहीं किया गया था। सारे प्रदेशमें विद्रोहके बीज डाल दिये थे" इन सबसे बढ़कर बात यह थी, कि सिंहासनच्युत नवाबके हजारों भूखे सिपाही और अनुचर नगरमें भरे हुये थे।

हेनरीको यह जाननेमें देर नहीं लगी, कि संकटका समय सिरपर मंडरा रहा है. उसने कठिनाइयोंसे मुकाबिला करनेमें जरा भी देरी करना पसन्द नहीं किया। लखनऊ पहुँचते ही उसने पिछली गलतियोंको दूर करनेका काम शुरू किया, लोगोंकी शिकायतें हटाने, बाकी रही पेन्शनको अदा कर और देशी राजाओं और सरदारोंके प्रति हर तरहसे सम्मान प्रदर्शित करना — यह तरीका अख्तियार किया।

दिन बीतते गये, और विद्रोह के चिन्ह और भयंकर रूपसे प्रकट होने लगे। जान पड़ा, कि लोगोंमें विश्वास पैदा करनेके लिये उसके सारे प्रयत्नोंका कोई फल नहीं होगा। बाहरसे अपनेको बेपर्वा सा दिखलाते हेनरी ने अनिवार्य आनेवाले मुहासिरेकी तैयारियां शुरू कर दीं। रेजीडेंसी को उसने काम चलाऊ किला बना दिया। और वहां रसद तथा गोला-बारूद जमाकर वह तूफानके आनेका इन्तिजार करने लगा।

अधिक समय तक प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं पड़ी। ३ मईको विद्रोहका पहला प्रयत्न किया गया, तो उसने बड़े कौशलसे दबा दिया। ३० मई को छावनीमें सिपाहियोंकी पांच पल्टनोंने विद्रोह कर दिया। उन्होंने छावनीमें गोली चलाई, और अपने अफसरोंको मार डाला। यह आम बलवे की सूचना थी। फिर अवधके भिन्न भिन्न भागोंमें खून और

हत्यायें हुईं। जूनके अन्तसे पहले ही लखनऊ ही नहीं, बल्कि सारा प्रदेश खुला बागी हो गया।

हेनरी लारेंसने लखनऊ और उसके पड़ोसके ऊपर अपना अधिकार बनाये रक्खा, लेकिन ३० जून तक ही। अगले दिन सबेरे उसने एक बड़ी साहसपूर्ण योजना काममें लानेकी कोशिश की, जिसका परिणाम अत्यन्त खतरनाक हुआ!

लखनऊकी स्थितिको अच्छी तरह जाननेके लिये हमें कानपुर की घटनाओं पर एक नजर डालनी जरूरी है। नवाबपर अंकुश रखनेके लिये अंग्रेजोंने यहाँ पर अपनी बड़ी छावनी रक्खी थी, इसलिये उसे "अवधकी कुंजी" कहा जाता था।

विद्रोह होनेके समय कानपुरमें ३८०० सैनिक रहते थे, जिनमें सिपाहीयोंकी रेजिमेंटें और एक अंग्रेजी तोपखाना था। वहांके सेनापति जेनरल सर ह्यू ह्वीलरके पास सब मिलाकर सिर्फ दो सौ गोरे सिपाही थे। साथ ही कानपुरमें रहनेवाले सारे युरोपियन तथा लखनऊमें रहती ३२वीं रेजिमेंटके परिवारका जिम्मा उस पर था।

जब मईमें ह्वीलरको विद्रोही भावनाके बढ़नेका पता लगा, तो उसने दो सौ वर्गगजकी एक जगहकी मोर्चाबन्दी की। वहाँ एक महीनेकी रसद जमा की, और आवश्यकता पड़नेपर अंग्रेजोंके साथ वहां चले जानेकी तैयारी कर ली। ५ जूनको विद्रोह आरम्भ हुआ, और एकके बाद एक देशी रेजिमेन्टें हाथसे जाती रहीं। उन्होंने खजानेमेंसे १७ लाख रुपये (१७०००० पौंड) को लूटा, घोड़ों, हथियारों और गोला-बारूदको हाथमें ले जेलको खोल दिया। फिर साहबोंके बंगलोंमें आग लगाकर दिल्ली जानेकी तैयारी की, पर वहां नहीं जा सके और अंग्रेजोंके खिलाफ षड्यंत्रके सबसे बड़े अगुवा नाना साहबके नेतृत्व को स्वीकार किया।

नाना साहब एक ब्राह्मणके लड़के थे। उन्हें मराठोंके भूतपूर्व पेशवा बाजीरावने गोद लिया था। अंग्रेजोंके खिलाफ उनके द्वेषका मुख्य कारण यह था, कि उन्होंने बाजीरावको मिलनेवाली पेंशन ८ लाख सालाना उन्हें

देनेसे इन्कार कर दिया, यद्यपि अपने अधीनके तौरपर दो सौ सिपाहियों और कानपुरसे दस मीलपर अवस्थित शिवपुरमें एक किले बन्द महलको नानाके हाथमें रहने दिया। हालमें पश्चिमोत्तर प्रदेशमें स्थान-स्थानमें घूमते उन्होंने सिपाहियोंकी रेजीमेन्टोंमें विद्रोहकी भावना पैदा की। जब बलवाई सेना दिल्लीकी तरफ कूच करने जा रही थी, इसी समय उन्होंने पहली बार खुलकर उनका संचालन अपने हाथमें लिया, और सिपाहियोंको कानपुर लौटनेके लिये कहा। और वहां पर मौजूद छोटी सी अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। स्वीकृति पा नाना मराठोंका झण्डा खड़ा कर कानपुरकी ओर जल्दीसे बढ़े।

जेनरल ह्वीलर मोर्चाबन्दीकर हातेमें अब शरण ले चुका था। उसके साथ नौ सौ युरोपियन थे, जिनमें दो तिहाई स्त्रियां, बच्चे और हथियार न उठानेवाले लोग थे। इस कमजोर मोर्चाबन्दीके चारों तरफ विद्रोहियोंने घेरा डाल दिया था। नाना साहबकी सेनामें हर घड़ी इलाहाबाद और दूसरी जगहोंसे बलवाई आकर उसको बढ़ा रहे थे, और जल्दी ही ह्वीलरके आदमियोंसे दस गुने विद्रोही वहां जमा हो गये। घिरावा ७ जूनको शुरू हुआ, और तीन सप्ताह तक जारी रहा। मोर्चाबन्दीके ऊपर लगातार गोले-गोलियाँ बरस रही थीं, वहाँ अंग्रेज अकथनीय यातनाओं और तकलीफोंको भुगत रहे थे।

अंग्रेजोंने बड़ी बहादुरीसे मुकाबिला किया, और पुरुषों ही ने नहीं, स्त्रियोंने भी बड़ी हिम्मतसे काम लिया। लेकिन, परिणाम अनुकूल होनेकी आशा नहीं थी। २६ जूनको नाना साहबने ह्वीलरके पास संदेश भेजा, कि यदि तुम आत्म-समर्पण कर दो, तो हम तुम्हें नदी द्वारा इलाहाबाद जाने देंगे। लड़कों और बच्चोंके ख्यालसे जेनरलने नानाकी शर्तोंको कबूल कर लिया। गंगाके ऊपर नाना साहबने शपथ लेकर वचन दिया, इसपर अंग्रेजोंने आत्मसमर्पण कर दिया।

२१ दिनोंके बाद पहली बार तोपों, मार्टरों और बन्दूकोंकी आवाज़ बन्द हुई। ह्वीलर और उसके साथियोंको यह स्वप्नमें भी खयाल नहीं आया,

कि जिस आदमी पर वह विश्वास कर रहे हैं, उसने तीनही सप्ताह पहले फतेहगढ़से विद्रोहियोंसे बचकर कानपुर भाग आये १३० मर्द, औरत, बच्चे शरणार्थियोंके खूनसे हाथ रंगा है। उन्हें इसका कुछ भी ख्याल नहीं था, कि हमारे साथकी बहादुर स्त्रियों और असहाय बच्चोंका आगे क्या होनेवाला है। उस भयंकर प्रातःकालको विश्वासघातकी पराकाष्टाका ऐसा काम किया गया, जैसा कभी नहीं देखा गया।

८ बजे सवेरे बचे हुये अंग्रेजों—जिनमें बहुतसे घायल अत्यन्त निर्बल थे—गंगाके किनारे पहुँचे। बिना किसी रुकावटके वह नावोंमें चढ़े। वह समझते थे, वह हमें इलाहाबाद ले जायेंगे। लेकिन, जैसे ही नावें खुलीं, पहलेसे ही छिपाकर रक्खी तोपें संकेत पाते ही गोला बरसाने लगीं। गंगा के दोनों किनारों पर पांतीसे सिपाही खड़े थे। उन्होंनेभी गोलियाँ चलानी शुरू कीं। मल्लाह पहलेसे ही नाव छोड़ गये थे। इसके बाद भी कुछ नावें बचकर गंगाके परले पार पहुँचीं। वहाँ सिपाहियों और सवारोंसे उनका मुकाबिला हुआ, और एकको छोड़कर सारी नावें पकड़ ली गईं। अंग्रेज पुरुष या तो डुबा दिए गए, नदीमें गोलीसे मारे गये, या नाना साहबके पास पकड़कर ले जाये गये, और उनके सामने बड़ी बर्बरतासे उनकी हत्या की गई। दो सौके करीब स्त्री बच्चे तत्कालके लिए एक घरमें बन्द कर दिए गए। जो नाव बच निकली थी, वह २८ जूनको किनारेके बालूमें फंस गई। सिपाही बराबर उसका पीछा करते नौकारोहियों पर गोली बरसाते रहे। १४ अफसर और सैनिकोंने उनसे बड़ी बहादुरीसे मुकाबिला किया, और साफ बच निकलनेमें सफलता पाई। वह आगे रास्ता भूल गए, और एक मन्दिर में शरण लेनेके लिए मजबूर हुए। इस जगह उनके ऊपर प्रहार हुआ। वह बाहर निकले। सिपाहियोंसे लड़ाई करते उनमेंसे पाँच बचकर गंगाके किनारे पहुँचे। नदीमें नीचेकी ओर तैरते चारने अपने पीछा करने वालोंको दूर छोड़ दिया। जिस जगह वह नदीमें कूदे थे, वहाँसे सात मील जानेपर उन्हें एक अंग्रेज भक्त राजाके नौकरने निकाल कर उनका प्राण बचाया।

उस हृदयद्रावक हत्याकाण्डवाले दिनके बाद नाना साहबने बड़े उत्सव और चहल-पहलके साथ अपनेको पेशवा घोषित किया, और इस प्रकार सबसे पहले—पर शोक, सबसे नृशंसतापूर्ण अपराधकी समाप्ति हुई।

नाना साहब कानपुर पर अधिकार कर बन्दी अंग्रेज स्त्री-बच्चोंको नाव पर अपने साथ ले गये।

लखनऊमें इस समय क्या बीत रही थी? कानपुरकी सफलताओंसे विद्रोहियोंका साहस बहुत बढ़ गया, उनमेंसे कितनेही लखनऊकी ओर चले। हेनरी लारेंसको खबर मिली, कि विद्रोही काफी संख्यामें इधर आ रहे हैं। ३० जूनको उसने साहसके साथ मुकाबिला करनेका निश्चय किया। वह उनपर आक्रमण करनेके लिए एक सेना लेकर गया। लेकिन दुर्भाग्यसे उसे उनकी संख्याका पता नहीं था। विद्रोही सिपाहियोंकी संख्या कई हजार थी, जब कि उसके पास कुल ७०० सैनिक थे, जिनमें आधे गोरे और बाकी विश्वासपात्र देशी सिपाही थे। उसकी कठिनाइयाँ और बढ़ गईं। जिन देशी तोपचियोंको उसने विश्वासपात्र समझा था, उन्होंने धोखा दिया। रस्सियोंको काटकर तोपोंको खंदकमें फेंककर वह घोड़ोंपर सवार हो विद्रोहियोंसे मिलने चले गये। बहादुर हेनरी पीछे हटनेके लिये मजबूर हुआ, और तब तक उसे छठे हिस्से आदमियोंका ही नुकसान नहीं उठाना पड़ा, बल्कि उसकी वह धाक भी जाती रही, जिससे नगर दबता था। हेनरी और उसके अनुयायी फिर लौटकर रेजिडेंसीमें चले आये।

हजारोंकी तादादमें विद्रोही शहरकी तरफ बढ़े, और उन्होंने तुरन्त उसे घेर लिया। उसी अपराह्णको हेनरी लारेंस अपने १६९२ गोरे और देशी सिपाहियों, ३५० युरोपियनों—जिनमें स्त्री-बच्चे भी थे—को लेकर रेजीडेंसीमें किलेबन्द हो गया, अब वह प्रतिरक्षा-आरम्भ हुई, जो चार महीने तक चलती रही, और जो कि ५७ ई० के विद्रोहकी बड़ी अद्भुत घटना है।

केवल हेनरी की दूरदर्शितासे ही भयंकर खतरेके मुकाबिलेके लिए सारी तैयारियाँ की गई थीं। उसीकी योजनाके अनुसार किलेबन्द लोगोंने रात

और दिन प्रहार करते शत्रुओंको पास नहीं फटकने दिया। लेकिन, उसके भाग्यमें यह नहीं बदा था, कि प्रतिरक्षाकी उस विजयको देखता, जब कि हैवलक, उटरम और कोलिन कैम्पबलने रेजीडेंसीको मुक्त किया। मुहासिरे के दूसरे दिन हेनरी रेजीडेंसीके एक अरक्षित कमरेमें अपने मातहतोंको आदेश दे रहा था, उसी समय एक गोला उसके पास आकर फटा, जिसने उसके शरीरको चूर-चूर कर दिया। वह फिर खड़ा नहीं हो सका। दो दिनों तक भारी पीड़ा सहता रहा। उसने उसे भूलनेकी बहुत कोशिश की, जिसमें कि अपने साथवालोंकी सुरक्षाके लिए कुछ तदबीर बतला सके। पर, अन्तमें इस वीर सैनिकका अन्त हो गया।

अपनी कब्रके ऊपर उत्कीर्ण करनेके लिए उसने स्वयं यह वाक्य लिखा था "यहां हेनरी लारेंस पड़ा हुआ है, जिसने अपने कर्त्तव्यके पालन करने की कोशिश की।" इस वाक्यके अनुसार उसने अपने सारे जीवनमें काम किया, इसे उसका जीवन और मृत्यु पूरी तौरसे साबित करता है। अपनी जातिके लिये मरने वाले इन वीरोंसे भारतीय बहुत कुछ सीख सकते हैं।

अपने मृत मुखियाके लिये शोक करते और उसके अन्तिम वचन "कभी हिम्मत न छोड़ना" का पालन करते घिरी हुई रेजीडेंसीके लोग पूरे साहसके साथ दिन-पर-दिन होनेवाले भयंकर गोलाबारीका मुकाबिला करते अवर्णनीय तकलीफोंको खुशीसे सहन करते रहे। इसी समय कानपुर और लखनऊकी ओर सहायता की सेना कूच कर रही थी। किस तरह इसके प्रसिद्ध नेताओंने सफलता पाई, अब इसकी बात सुनें।

## १०—सर हेनरी हेवलक (१७९५-१८५७ ई०)

"मुझे भयभीत होनेके लिये अवसर नहीं था। मुझे और भी बहुत करना था। मुझे डर सिर्फ यही था, कि सुन्दर चिड़ियोंका अण्डा कहीं चूर्ण न हो जाये, इसीलिए मुझे अपने गिरनेके बारेमें सोचनेका समय नहीं था।"

हेवलक उस समय ७ वर्षका लड़का था, जबकि अण्डोंकी तलाशमें वह एक लम्बे पेड़पर चढ़ते हुए सबसे ऊपरकी डालीसे नीचे लुढ़क पड़ा। उस वक्त पूछे जानेपर डालियोंके भीतरसे सिरके बल गिरते तू भयभीत नहीं हुआ, उसने उपरोक्त जवाब दिया था। उसके साथ सदा यही बात रही। उसने अपने बारेमें कभी ख्याल नहीं किया। जो भी काम उसके ऊपर सौंपा गया उसे उसने अपनी सुरक्षाका बिल्कुल ख्याल न करके पूरा किया।

पीछेके जीवनमें हेवलक अक्सर कहा करता था, कि अपने कर्त्तव्यका बड़ी कठोरतासे पालन—आज्ञाकारिताके लिए तत्पर रहना और दूसरोंको भी उसे पूरी तौरसे पालन कराना—यह बात उसे चार्टर हौसके अनुशासन से प्राप्त हुई थी। इसमें सन्देह नहीं, कि सिर्फ यही नहीं, बल्कि उसका सारा व्यक्तित्व वहीं बना और वहीं दृढ़ हुआ।

हेनरी हेवलक सण्डरलैण्डके पास बिशपवैयरमौथमें ५ अप्रैल १७९५ ई० में पैदा हुआ। उसका बाप वहां जहाज बनानेका काम करता था। हेनरीके बापने लन्दनके प्रसिद्ध स्कूल चार्टर हौसमें पढ़नेके लिए उसे ६ वर्ष की उम्रमें भेजा। वहांकी अपनी सात वर्षकी पढ़ाईमें उसने होनहार होनेका काफी परिचय दिया। वह बड़ी मेहनतसे पढ़ता था, उसके साथी उसे "बूढ़ा, फ्लोस"—( बूढ़ा दार्शनिक ) कहते थे, क्योंकि वह हमेशा गम्भीर और विचारमग्न रहा करता था। अपने उदार स्वभाव और पुरुषोचित बर्तावसे उसके साथी उससे स्नेह रखते। वह हमेशा सबलके खिलाफ दुर्बलकी सहायता करनेके लिये तैयार रहता। चार्टर हौसके बाद वह गोडलमिंगमें पढ़ने भेजा गया था।

चार्टर हौसके दिनोंमें ही दो बातें उसके स्वभावमें दिखलाई पड़ीं, जो उसके सारे जीवनमें रहीं—धर्मके प्रति उसका अनुराग और सैनिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली हरेक बातसे दिलचस्पी। एक ओर हम उसे नेपोलियन बोनापार्टको अपना प्रिय आदर्श बनाते देखते हैं, और हरेक बड़ी लड़ाईसे सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक पुस्तकको बड़े आग्रहके साथ पढ़ते देखते हैं, तो दूसरी ओर माँकी गोदमें बैठे जो धार्मिक छाप उसके हृदय पर पड़ी थी, उसे अधिकाधिक गहरी होते देखते हैं। उसने अपने विचारोंके प्रदर्शन करनेकी कोशिश नहीं की। उन्हें वह अपने आनन्दका स्रोत मानता था, इसलिये उनसे चिपका रहता था। किसी साथीके व्यंग करनेसे वह अपने विश्वासके अनुसार आचरण करनेसे बाज नहीं आ सकता था।

उसकी मांकी इच्छा थी, कि हैवलकको कानूनकी शिक्षा दी जाये। इसीलिये लड़केकी इच्छाके विरुद्ध चार्टर हौस छोड़नेके बाद उसे बैरिस्टरों के विद्यालय मिडलटेम्पलमें दाखिल कर दिया गया। बापसे किसी बात पर बिगाड़ हो गया, जिसके कारण घरसे उसकी सहायता बन्द हो गई, इस प्रकार छ महीने बीतते-बीतते उसे अपने पैरोंपर खड़ा होनेकी नौबत आई। उसका भाई विलियम हैवलक अभी-अभी वाटरलूके मैदानसे लौटा था। इसके कारण हेनरीका ख्याल सेनाकी ओर दौड़ा। भाईकी सलाह और उसके प्रभावसे हेनरी ६५-वीं राइफलमें द्वितीय लफ्टनेंटका पद पानेमें सफल हुआ।

भावी जीवनका काम निश्चित हो गया। उसका सारा ध्यान अब सैनिक विद्या पर अधिकार प्राप्त करनेकी ओर लग गया। मार्शमैनने लिखा है—"जो भी सैनिक स्मरण पत्र उसे हाथ लगते, उन्हें वह पढ़ता। भविष्यके पथ-प्रदर्शनके लिए एक भारी निधि उसने जमा की। प्राचीन या अर्वाचीन प्रत्येक बड़ी लड़ाई और मुहासिरेसे उसने परिचय प्राप्त किया। युद्धक्षेत्रमें होती प्रत्येक चालके विवरण और परिणामका उसने सैनिककी दृष्टिसे परीक्षण किया।" इस प्रकार उसने आगे आने वाले अपने कामके लिये तैयारी करते आठ वर्ष बिताये। इस वक्त अधिकांशतया वह इङ्गलैंडके

भिन्न-भिन्न भागोंमें रहा। अब युद्धमें भाग लेनेकी इच्छासे उसने अपनेको भारत की ओर जानेवाले एक पैदल रेजिमेन्टमें बदलवा लिया। लन्दनमें रहते हिन्दुस्तानी और फारसी पढ़नेके बाद जनवरी १८२३ ई० में वह कलकत्ता के लिये रवाना हुआ।

भारतमें आनेके बाद सैनिक कर्त्तव्योंको पालन करते हुये भी हेवलकने हर तरहके धार्मिक कामोंमें व्यावहारिक दिलचस्पी ली। उसने सिरामपुरके मिश्नरियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ा, कलकत्तामें रहने वाले पादरियों और दूसरोंसे परिचय प्राप्त करनेकी कोशिश की। इसी समय उसने अपनी रेजि-मेन्टके आध्यात्मिक और आचार संबंधी भलाईके कामों पर ध्यान देना शुरू किया। छुट्टीके समय वह अपने सैनिकोंको इकट्ठा करता। वहां वह धार्मिक बातचीत करते अथवा पूजा प्रार्थना करते। इस प्रकार उनके ऊपर और भी अच्छा जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। उसके चारों तरफ ऐसे आदमी बहुत थे, जो उसकी खिल्ली उड़ाते थे। पहले पहल यह काम आसान नहीं था, लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी, और सारे जीवन उसने इस प्रकारकी धार्मिक पूजा-उपासनाको जारी रक्खा।

जिस साल वह भारत आया, उसी साल उसे बर्माकी लड़ाईमें नौकरी बजानी पड़ी। रंगूनपर अधिकार करनेके बाद डर था, कि विजयी सेना अत्याचार करनेपर न उतर आये। हेवलक सिपाहियोंको सीमाके भीतर रहनेके लिये कहनेपर ही संतुष्ट नहीं रहा। नगरके महान् बौद्ध चैत्यमें प्रार्थनाके लिये अपने आदमियोंको एकत्रित करनेकी उसे आदत थी। एक अफसर बतलाता है:—"एक दिन मैं उस जगह घूम रहा था। दूर मुझे बाइबलके गीतकी आवाज सुनाई दी। ढूंढ़ते हुए जब उस जगह पर पहुँचा, तो देखा, कि बगलके छोटेसे मन्दिरमें बुद्धकी मूर्तियाँ पांतीसे रखी हुई हैं। हरेक मूर्तिकी गोदमें जलता हुआ एक-एक तेलका दीपक रक्खा हुआ है, और १३वीं पल्टनके श्रद्धालु सैनिक हेवलकको बीचमें किये वहां खड़े एक ईसाई प्रार्थना गीत गा रहे हैं।" हेवलककी शिक्षाके व्यावहारिक परिणाम क्या होते रहे, इसके बारेमें उसी समयकी एक घटना

उल्लिखित की जा सकती है। एक रात शत्रुके नजदीक आनेकी खबर पा सेनाको एकाएक जगाया गया, और एक टुकड़ीको एक खतरनाक जगहमें जानेके लिये कहा गया। लेकिन, रेजिमेन्टके आदमी इतने अधिक शराब में धुत थे, कि उन्होंने हुकुम नहीं माना।

तब जेनरलने आवाज दी—"हैवलकके सन्तोंको पुकारो। वह हमेशा होशमें रहते हैं, उनपर विश्वास किया जा सकता है, एवं हैवलक स्वयं सदा तैयार रहता है।"

बिगुल बजा, और सन्तोंने शत्रुको मार भगाया।

अपने पास रहने वालोंकी भलाईकी इच्छाको हैवलक शिक्षा और उपदेश तक ही सीमित नहीं रखता था। यद्यपि अभी वह एक मामूली छोटा अफसर था, लेकिन तब भी अपनी हल्की तनख्वाहका एक-तिहाई वह भलाईके कामोंमें देता था। जीवनके पिछले सालोंमें यद्यपि परिवारका खर्च बढ़ गया था, तब भी वह अपनी आमदनीका दशांश ऐसे कामों में लगाता था।

इस प्रकार धर्मभीरु होनेका सबूत जहां वह एक ओर देता था, वहां दूसरी ओर भव्य सैनिक गुणोंकी भी उसमें बहुतायत थी। अपनी स्थिरता, हिम्मत और सैनिक ज्ञानके कारण सभी उसकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा करते थे। कुछ लोग कहते थे, कि वह कठोर अनुशासन चाहता है। यद्यपि वह अपने मातहतोंसे बड़ी आज्ञाकारिता चाहता था, लेकिन उतनी ही मात्रामें जितनी मात्रामें कि वह स्वयं उसे माननेके लिए तैयार था। कर्तव्यको पूरी तरह वैसे माननेवाले बहुत कम ही आदमी होंगे। इसका उदाहरण उसके अपने ब्याहके दिनकी बात है। १८२६ ई०में बर्मासे वह भारत लौटा। उसे सिरामपुरमें प्रतिष्ठित मिशनरी डा० मार्शमैनकी लड़कीसे वहां ब्याह करना था। लेकिन ऐसा हुआ, कि उसी दिन दोपहरको उसे कलकत्तामें एक कोर्ट मार्शल (फौजी अदालत) में उपस्थित होनेका सम्मन मिला। अब वह क्या करे? उसके मित्रोंने जोर दिया, कि इस वजहको देकर अनुपस्थित हो जाओ, इतनी महत्वपूर्ण बातके कारण उसका कोई

ख्याल नहीं किया जायेगा। लेकिन, उनका सब समझाना-बुझाना बेकार गया। उसने कहा, कि—"चाहे कितनी ही कठिनाई हो, सैनिकके तौरपर मुझे आज्ञाको शिरोधार्य करना ही पड़ेगा।" बड़े तड़के ब्याहकी रस्म अदा कर दी गई। इसके बाद एक तेज नावसे वह कलकत्ताकी ओर दौड़ा। अदालत में उपस्थित हुआ, और फिर ब्याह-भोजके लिये समयपर सिरामपुर लौट गया।

हेवलककी १३वीं रेजिमेन्ट भारतमें एक जगहसे दूसरी जगह घूमती रही। इस समय तक वह भारतीय भाषाओंपर काफी अधिकार प्राप्त कर चुका था, इसलिये १८३४ ई०में थोड़े समयके लिये कानपुरमें उस समय रहती १६वीं रेजिमेंटमें दुभाषिया बन गया। अगले साल १३वीं रेजिमेंटमें फिर अड्जुटेंट बनाकर उसकी नियुक्ति हुई। जब उसकी नियुक्ति होने जा रही थी, उसी समय कुछ अफसरोंने गवर्नर-जेनरल लार्ड विलियम बेन्टिकके पास उसके धार्मिक स्वभावको लेकर विरोध-पत्र लिखे।

बेन्टिकने पता लगानेपर जब जान लिया, कि हेवलक सैनिक रेजिमेंटमें सबसे अधिक अच्छे चालचलनका है, तो उसने कहा—"लेकिन उसके साहस, भक्ति या सदाचारके ऊपर दूसरे कोई दोष नहीं है?"

"सो बिलकुल ठीक है, लेकिन वह बपतिस्त है।"

बेन्टिकने जवाब दिया—"मैं केवल यही चाहता हूं, कि सारी रेजिमेंट ही बपतिस्त हो।" हेवलककी नियुक्ति उस पदपर हो गई।

सारी योग्यताओं और कामोंके होते हुए भी हेवलककी तरक्की बहुत धीरे-धीरे हुई। वह बहुत धनी नहीं था, कि ऊंचे पदको पैसेके जोरपर खरीदता। २३ वर्ष तक फौजमें वह रहनेके बाद कप्तान बनाया गया। १८३८ ई०में कप्तानके दर्जेको पाकर वह शाह शुजाको फिरसे गद्दीपर बैठानेके लिये काबुल भेजी जानेवाली सेनाके साथ हुआ। उसने इस अभियानमें अपनी अद्भुत वी[illegible] वह सदा उस जगह मौजूद मिलता, जहांपर लड़ाई [illegible] और शत्रु सबल मालूम होता। १८४१ ई०में जेनरल सेलकी मातहत जलालाबादकी प्रतिरक्षामें

भी उसने भाग लिया, और बहुत कुछ उसीकी साहसपूर्ण कार्रवाइयोंके कारण किलेको घेरनेवाले शत्रु अपने काममें सफल नहीं हुए। उसने इस समय बड़ी भारी सेवा की थी, लेकिन, उसे पारितोषिक मिला मेजरका पद और सी० बी० का मामूली तमगा।

इसके बाद द्वितीय सिक्खयुद्धमें वह मुख्य सेनापति गफका दुभाषिया था। मुड़कीके मैदानमें दो घोड़े इसके नीचे गोलीसे मरे। सुबरांवकी लड़ाई में एक तोपका गोला जीनके भीतरसे घुसा, जिससे उसकी जान एक इंचपर बाल-बाल बची।

इसके थोड़े ही दिनों बाद दूसरे अङ्गरेज वीरोंकी तरह भारतमें हेवलक का स्वास्थ्य खराब हो गया। यद्यपि उसकी पहले इच्छा नहीं थी, तो भी स्वास्थ्य और विश्रामके लिए १८४६ ई०में उसे अपनी जन्मभूमिमें लौटना पड़ा। वह दो साल तक वहां रहा, पहले इंगलैण्ड में और फिर जर्मनीके बौन शहरमें। बौनमें अपनी स्त्री और बच्चोंको छोड़कर वह कर्नल बनकर भारत लौटा, और बहुत समय नहीं बीता, कि उसे भारतमें महारानीकी सेनाओंका क्वाटर मास्टर जेनरल और अड्जुटेंट-जेनरल बना दिया गया। अगले पांच वर्षोंमें उसे भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें अपने कामके लिये जाना पड़ा। इसके बाद बम्बईमें उसकी पत्नी अपने एक या दो बच्चोंके साथ आने वाली थी। लेकिन, सो नहीं हो पाया। जिस समय पति-पत्नीके मिलनेका समय निश्चय किया जा रहा था, इसी समय एकाएक अप्रत्याशित तौरसे हेवलकके लिये कर्तव्यकी पुकार आई। बहादुर सैनिकने प्रियतमाकी मुलाकातको स्थगित कर दिया, और वह कभी अपनी पत्नीसे फिर नहीं मिल सका।

१८५७ ई० के आरम्भमें ईरानके साथ लड़ाई छिड़ गई। सर जेम्स उटरमकी सिफारिशपर हेवलकको एक डिवीजन सेनाका कमाण्डर नियुक्त किया गया। हेवलकने लिखा है—"जब तार द्वारा मुझे यह सम्मान और खतरेका दर्जा प्रदान किया गया, तो बूढ़ा होनेपर भी मैंने एक क्षणके लिए भी हिचकिचाहट नहीं की।" हेवलक तुरन्त बम्बईके लिये रवाना हुआ,

जहांसे जनवरीमें ईरानके लिये जहाज पकड़ा। इस युद्धमें—जिसमें उसके सबसे बड़े लड़के हेनरी ने भी भाग लिया था—अपने कौशल और बहादुरीके लिए सर जेम्स उटरमने उसकी भारी प्रशंसा की। अंग्रेजोंकी सैनिक कार्रवाईकी सफलतामें उसका भारी भाग था। यह सैनिक कार्रवाई दो महीने तक चली। ईरानी हारे, और उन्होंने शान्ति-सन्धिपर हस्ताक्षर किया। इसी सैनिक अभियानमें हेवलकके साहसका एक दूसरा प्रमाण मिला। जब उसकी सेनाको ले जानेवाला अग्निबोट ईरानके तटके नजदीक पहुँच रहा था, तो उसने जान लिया, कि एक किलेसे तोपोंकी भारी गोला-बारीका खतरा है। इसपर उसने अपने आदमियोंको जहाजके डेकपर लम्बे पड़ जानेके लिये कहा। फिर जहाज चालककी जगहपर इस ख्यालसेवह स्वयं चला गया, कि शायद मेरी आवश्यकता पड़े। उसकी जानके लिये भारी खतरा था, उसके चारों ओर गोलियोंकी वर्षा भी हुई, पर हेव-लकका बाल बांका नहीं हुआ।

ईरानकी लड़ाई अभी मुश्किलसे खतम हुई थी, कि भारतमें विद्रोह शुरू हो गया। मईके अन्तमें जब हेवलक बम्बई लौटा, तो उसे पता लगा, कि मेरठमें सिपाहियोंने विद्रोह कर दिया, दिल्ली विद्रोहियोंके हाथमें है, और उत्तरके प्रदेशमें सभी जगह असंतोष फैला हुआ है। उसने जरा भी देर किये बिना प्रधान सेनापतिके हाथमें अपनी सेवायें अर्पित कर दीं। वह इस उद्देश्यसे बम्बईसे जहाजपर चढ़ लंकाके गाल बन्दरगाहपर पहुँचा, जहाँ से सबसे पहले जानेवाले कलकत्ताके स्टीमरको पकड़ा। इस यात्रामें वह डूबनेसे बाल बाल बचा था। जिस समय स्टीमर लंकाके पाससे जा रहा था, उसी समय वह एक चट्टानसे टकराकर चूर-चूर हो गया। प्रत्येक क्षण डर लग रहा था, कि वह सिरके बल समुद्रतलके नीचे जानेवाला है। इस आफतके समय कप्तान भी होश खो बैठा। इसपर नाविक पहले हताश और पीछे अनाज्ञाकारी हो गये। जब जहाज फिर टकराया, तो हालत अत्यन्त खराब हो गई। इस समय हेवलकने नाविकोंको हिम्मत दिलाई—"अब, मेरे भाइयो, यदि तुम केवल मेरी बात मानो और शराबकी बोतल-

से अलग रहो, तो हम सब बच जायेंगे।" उसकी बातका इतना असर हुआ, कि भयके मारे होश खो बैठे नाविक शान्त हो गये, और एक भी प्राणकी हानि नहीं हुई।

जूनके मध्यमें कलकता पहुँचनेपर हेवलकने सुना, कि कानपुर खतरेमें है, और लखनऊपर भारी प्रहार हो रहा है। उसे तुरन्त ब्रिगेडियर-जेनरल-का पद देकर इन दोनों स्थानोंके बचावके लिये भेजी गई सेना का संचालन दिया गया। वह तेजीके साथ इलाहाबादकी ओर दौड़ा, जहां आनेपर उसे जेनरल व्हीलरके आत्म-समर्पण और उसके बादके रोमांचकारी हत्याकाण्ड-की खबर मिली। थोड़े ही दिनोंके भीतर हजार गोरे, १३० सिक्ख सैनिकों तथा ६ तोपोंको लेकर वह कानपुरकी ओर बढ़ा। उसके पास इतनी थोड़ी सेना थी, और जिस इलाकेसे जाना था, वह सारा विद्रोहका समुद्र बना हुआ था। इसके भीतरसे हेवलको काम करना था। एक या दो दिनमें मेजर रिनौडके अधीन कुछ सौकी एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी और उससे आ मिली, जब कि हेवलक फतेहपुरमें पहुँचा। बड़ी भयंकर यात्रा थी। वर्षाका मौसम आ गया था, जिसमें साथ-साथ देहको जला देनेवाली धूपका भी सामना करना पड़ता था। नदियां भरी हुई थीं, बहुत सी जगहों पर पानी भरा हुआ था, जिसके कारण उनकी गति मन्द हो रही थी। फतेहपुरमें अब भी वह अपना डेरा डाले ही थे कि भेदियोंसे पता लगा, कि कई हजार विद्रोही इधर बढ़ रहे हैं। इसी समय जेनरलके पास एक गोला आ गिरा। हरेक आदमी अपनी जगह लेनेके लिये दौड़ा। तुरन्त भारी गोलाबारी शुरू हुई। यद्यपि विद्रोहियोंकी संख्या चार हजार थी; लेकिन वह अंग्रेजोंका मुकाबिला नहीं कर सके, और कुछ ही समयमें अपनी ११ तोपोंको छोड़कर भाग गये।

अब उन्होंने कानपुरकी ओर बढ़ना शुरू किया। तीन दिन बाद एक दूसरी लड़ाई लड़नी पड़ी, जिसमें शत्रुको बिलकुल नष्ट कर दिया गया। इस समय गर्मी इतनी सख्त थी, कि उसके कारण हेवलकके १२ आदमी

मर गये, और सारी सेना जिस तकलीफ और थकावटको अनुभवकर रही थी, वह वर्णनातीत थी।

अब वह अपने लक्ष्य-स्थानके नजदीक पहुँच रहे थे। कानपुर पहुँचनेसे पहले ही उन्हें पाण्डु नदीके पुलको पार करना था। उन्होंने देखा, कि भारी तोपोंसे उसकी प्रतिरक्षा की जा रही है और शत्रु दूसरे किनारेपर मोर्चाबन्दी किये हुये हैं। फिर हेवलकके आदमी आगेकी ओर दौड़े, और हर जगह शत्रुओंको हटनेके लिये मजबूर होना पड़ा। अब सेना उस पुल-को पार कर कानपुरकी ओर चली। अगले दिन मोर्चाबन्दी किये हुये अपने ५००० सैनिकोंके साथ नाना साहब मुकाबिलेके लिये पड़े दिखाई पड़े। वह इतनी अच्छी तरहसे रक्षित थे, कि उनपर आक्रमण करना बेकार मालूम होता था। हेवलकने जरा भी हिचकिचाहट नहीं की और जल्दी ही "कमाण्डरकी प्रशंसनीय सैनिक सूझ और ब्रिटिश सैनिकों—विशेषकर ७८वें हाइलैण्डरों के दुर्दम्य साहसने एक जबर्दस्त विजय प्राप्त करनेमें सहा-यता की।" दोपहर बाद दो बजे लड़ाई शुरू हुई। शाम आई, रातका अन्धेरा नजदीक आने लगा। हेवलकने देखा, कि अब एक क्षण भी बरबाद करनेका समय नहीं है। अपने हाइलैण्डरोंके पास पहुँचकर शत्रुओंकी कुछ तोपोंको दिखलाते हुये उसने आवाज दी—"उन तोपोंको संगीनके बलपर लेना होगा, और जवानो, याद रक्खो, मैं तुम्हारे साथ हूँगा।" इस कमाण्डको सुनते ही भेड़ियोंके झुण्डकी तरह वे बहादुर ताली बजाते आगेकी तरफ दौड़े। उसकी चाल इतनी प्रभावशाली रही, कि संगीनोंकी मारकी प्रतीक्षा किये बिना ही विद्रोहियोंने हिम्मत छोड़ दी, और बुरी तौरसे पिटकर पीछे हटे।

अगले दिन १७ जुलाईके सवेरे हेवलक और उसकी सेना इस भारी आशाके साथ कानपुरमें दाखिल हुई, कि १२६ मीलकी भयंकर यात्राके बाद नाना साहबकी कैदमें पड़े दो सौ स्त्रियों-बच्चोंको छुड़ा सकेंगे। लेकिन, उनकी आँखोंके सामने कैसा रोमांचकारी नजारा था? जब नानासाहबको खबर मिली, कि हेवलकने पाण्डुका पुल ले लिया और वह शहरकी तरफ

बढ़ रहा है, तो वह अब तकके किये हुये सभी अत्याचारोंसे अत्यन्त अमानुषिक कामपर उतर आये। उन्होंने अपने बन्दियोंको पकड़कर उन्हें नृशंसतापूर्वक हत्या करके उनके शरीरको टुकड़े-टुकड़े करके एक गहरे कुयेमें डाल दिया। जब हेवलक और उसकी सेना उस घरमें दाखिल हुई, जिसमें ये असहाय स्त्री और बच्चे बन्द किये गये थे, तो अब उनके मुक्त करनेका समय नहीं रह गया था, उन्होंने अत्यन्त हृदयद्रावक दृश्यको अपनी आंखोंसे देखा। जिन तीन कमरोंमें बन्दियोंको बन्द रक्खा गया था, उनमें दो इंच गहरा खून बह रहा था, जिसके चारों ओर उस शोकजनक घटनाकी बीसों परिचायक चीजें पड़ी थीं—बच्चोंके छोटे-छोटे जूते, पोशाकके टुकड़े, बाइबलके पन्ने, केशोंकी अलकें और और भी दूसरी चीजें। उससे नातिदूर वह भयंकर कूआं था, जिसमें कुछ अधमरे और बाकी मरे हुये अभागे प्राणी निष्ठुरतापूर्वक डाल दिये गये थे। यह दृश्य देखकर गोरे सैनिकोंकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। उन्होंने दांत दबाकर इस निष्ठुर हत्याकांडके बदला लेनेकी कसम खाई।

और गोरोंने इसका बदला कई गुने भयंकर अत्याचारों के साथ लिया, इसमें शक नहीं। वर्तमान उत्तर-प्रदेशका पूर्वी भाग उस वक्त उनके रोमांचकारी जुल्मोंसे कराहने लगा। बचपन की एक घटना याद आती है। आदमियोंको बिना भी किसी सन्देहके गोरे पेड़ोंपर लटकाते या गोली मार देते थे। सुन्दर जवान स्त्रियोंके ऊपर अपनी काम-वासना तृप्त करते और उनमेंसे बहुतोंको अपने साथ ले चलते। इन्हीं अभागिनोंमें एक उच्चकुलीन सुन्दरी तरुणी को दो तीन और स्त्रियोंके साथ गोरे एक्के पर बैठाकर उसे अपने साथ ले जा रहे थे। उनके अमानुषिक अत्याचारोंके कारण साथिनें किसी नदीके पास पहुँचनेपर उसमें कूदकर मर गईं, लेकिन उक्त तरुणी को अपने प्राणोंका कुछ अधिक लोभ था, जिसके लिये वह आजीवन पछताती रही। जब कितने ही समय बाद गोरोंको उसकी आवश्यकता नहीं रह गई, तो आजमगढ़में उसे उन्होंने छोड़ दिया। शायद अब वह वेश्या बननेके लिये मजबूर होती, पर उसी समय वहां मौजूद एक गोसाईं साधुने

उसे रख लिया। पीछे वृद्धापनमें बल्हवलके पासके उस साधु गोसाईंके मठमें रहती वह कहा करती थी—"मैंने अपने जीवनका मोह करके बुरा किया, नहीं तो मैं भी अपने साथियोंकी तरह भावी भयंकर जीवनसे बच जाती।"

कानपुरके बन्दिनोंको बचानेका समय बीत चुका था। हेवलक अब केवल लखनऊकी ओर बढ़ सकता था, जहांसे हेनरी लारेंसके मरनेकी शोकपूर्ण खबर आई थी। हेवलकने बिठूरमें नानासाहबके महलको जलाकर मिट्टी में मिला दिया। नाना साहब अपनी सेनाले वहांसे भाग गये। २५ जुलाईको अंग्रेज आगे बढ़े। इस बीच थोड़ी सी सेना लेकर आये कर्नल नेलके हाथमें कानपुरकी जिम्मेवारी छोड़ दी गई।

लेकिन, अब तक जो कठिनाइयां हेवलकके रास्तेमें पड़ी थीं, उनसे कहीं बड़ी अब सामने आईं। २९ जुलाईको गंगा पार कर उंनाओमें उसने कुछ हजार शत्रुओंको हराकर उनकी १५ तोपें छीन लीं। फिर बशीरतगंजमें उसने दूसरी विजय प्राप्त की। इस समय तक उसके ८८ अफसर और सैनिक काम आये थे, लेकिन उससे भी भारी मुकाबला था रोगसे। ३८ मील दूरपर अवस्थित लखनऊके जितने ही नजदीक जा रहे थे, उतनीही उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं। हेवलकने लौटकर मंगलेवरमें कलकत्तासे आनेवाली कुमक की प्रतीक्षा करनेका निश्चय किया। कुमक नहीं आई, हेवलकको फिर आगे बढ़नेका दूसरीबार प्रयत्न करना पड़ा। बशीरतगंज पहुँचकर फिर २० हजार विद्रोहियोंसे उसका मुकाबिला हुआ, जिसमें भारी संख्यामें वह तलवारके घाट उतारे गये। इसी समय हैजा फूट पड़ा, और आगे बढ़ना रुक गया। हेवलक कानपुर लौटा। यह अच्छा ही हुआ, जो कि वह पीछे लौट आया, क्योंकि इसी समय नाना साहब बिठूरमें फिर चले आये थे, और कर्नल नेलके लिये खतरा पैदा हो गया था। हेवलकने कानपुर पहुँचते ही बिठूरकी ओर कूच कर दिया, और ४००० विद्रोहियोंको मार भगाया।

इस विजयके बाद अपनी थकावट और परेशानीके होते भी उसके सैनिकोंने हेवलकको साधुवाद दिया, तो उसने कहा—"मेरे जवानो, मत मुझे साधुवाद दो, यह सब कुछ तुमने खुद किया है।" उसके अगले दिनके

सबेरे उसने यह प्रसिद्ध सैनिक आदेश दिया था, जिसमें निम्नवाक्य मौजूद है—"यदि इन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियोंमें विजय प्राप्त की जा सकती है, तो उस समयकी विजय और दराडकी बात क्या कहनी, जब कि चीन, गुडहोप अन्तरीप और इंगलैराडसे सेनायें आकर इस भूमिमें छा जायेंगी ? योद्धाओ, उस समय तुम्हारी मेहनत, तुम्हारी तकलीफें, तुम्हारी परेशानियों और तुम्हारी बहादुरीको कृतज्ञतापूर्वक माननेवाला देश नहीं भूलेगा। अपने सबसे कठिन गाढ़के समय भारतमें अंग्रेजोंके तुम स्तम्भ और अवलम्ब स्वीकार माने जाओगे।"

हेवलककी सेना लड़ाई और रोगसे बहुत क्षीण और निर्बल हो गई थी। उसे पांच सप्ताहोंके लिये कानपुरमें बेकार बैठे रहनेके लिये मजबूर होना पड़ा। इस समय तक जिस कुमकके आने की प्रतीक्षा थी, वह भी आ गई। इसी बीच एक अप्रत्याशित और आश्चर्यपूर्ण खबर हेवलकके पास पहुंची। उसे पदसे नीचे गिराया जानेवाला था। उसने लड़ाइयों के बाद लड़ाइयां जीतीं, और अत्यन्त भारी कठिनाइयोंको पार किया, तो भी सरकारने उसको अपनी कमानसे वंचित करना उचित समझा, और उसकी जगह सर जेम्स उटरमके हाथमें सेनाकी कमान देदी। कुछ साल पहले स्वास्थ्य खराब होनेके कारण उटरमने अवधके चीफ-कमिश्नरके पदको छोड़ दिया था; इस सेनाके कमाराडरके पदके साथ-साथ वह पद भी हेनरी लारेंसके मरनेके कारण उसे मिला था। यह बड़ी ही क्रूर चोट हेवलकके ऊपर थी। क्यों ऐसा किया गया, यह समझना मुश्किल है, लेकिन यही सरकारी निर्णय था। चाहे वह बेवकूफीसे किया गया हो, या और किसी कारणसे, हेवलकने इसके सामने हिम्मतके साथ सिर झुकाया।

लेकिन, इस प्रकार उसे हटाकर जिस आदमीको उसकी जगह रक्खा गया, वह साधारण आदमी नहीं था। उस समय उटरमके उदार और वीरतापूर्ण आचरणके बारेमें अभी क्या कहा जा सकता था, पर तो भी हेवलकको इसका संतोष था, कि जो आदमी उसकी जगहपर नियुक्त किया जा रहा है, वह एक सच्चा वीर है।

हेवलकके जीवनको अब उटरमके साथ जाननेकी जरूरत है।

## ११—सर जेम्स उटरम (१८०३-६३ ई०)

यह महान् सैनिक और राजनीतिज्ञ १८०३ ई० में पैदा हुआ था। भिन्न-भिन्न पदोंपर रहकर इसने अपने देशकी सेवा की, और हर जगह अपनी सैनिक और शासनिक योग्यताओं में ही नहीं, बल्कि वैयक्तिक गुणोंके लिए भी ख्याति प्राप्त की। इस समय से १८ साल पहले काबुलमें अपने कामों से इसने नाम कमाया। जब वह अभागा अभियान असफल होकर लौटा, तो उटरम गुजरातमें पोलिटिकल एजेंट और पीछे सिंधमें ब्रिटिश रेजीडेंट नियुक्त हुआ। सिन्धमें रहते समय उसने नेपियरकी नीतिके विरुद्ध मत प्रकट किया। क्योंकि वह देश पर आक्रमण करनेकी नीतिको अच्छा नहीं समझता था। लेकिन अपने वैयक्तिक विचारोंको उसने अपने कर्त्तव्यमें दखल देनेका मौका नहीं दिया। मतभेदके रहते हुये भी नेपियरने उटरमकी सेवाओंको बहुत उत्कृष्ट स्वीकार किया। उसके इन गुणोंके कारण नेपियरने उसे "भारतीय बयार्ड" की उपाधि दी। उटरमने अपने उच्च आचरणका सबूत उस वक्त भी दिया, जबकि सिन्ध-युद्धकी लूट विजेताओंके चरणोंमें पड़ी, और उसे बांटनेका समय आया। उटरमको ३०००० रुपया मिला, जिसे उसने बम्बई में किसी सार्वजनिक हितके काममें दान दे दिया। उसके बाद उसने कई पद भारतमें पाये। वह ईरान भेजे जाने वाले सैनिक अभियानका कमांडर नियुक्त किया गया था, जिसमें हेवलकने भी भाग लिया था।

ईरानसे लौटनेके बाद उसे हेवलककी जगहपर लखनऊको मुक्ति दिलाने वाली सेनाका कमाण्डर बनाया गया। कानपुर पहुँचनेसे पहले ही लखनऊ की ओर बढ़नेकी सारी तैयारी हो चुकी थी। उटरमने उस वक्त हेवलकको लिखा था—'मैं कुमकके साथ तुम्हारे साथ आ मिलूँगा। लेकिन लखनऊको मुक्त करनेका यश तुम्हारे ही हाथोंमें रहेगा, जिसके लिये कि तुमने इतना संघर्ष किया। मैं तुम्हारे साथ अपने असैनिकपद—अवध-कमिश्नरके रूपमें ही चलूँगा। मेरी सैनिक सेवायें तुम्हारे अधीन हैं। यदि तुम्हें

पसन्द होगा, तो एक स्वयंसेवकके तौरपर तुम्हारे नीचे मैं काम करूँगा।" कानपुर पहुँचनेके बाद उसने अपने इस निश्चयको डिवीजनके आदेशके तौर पर सेनाके सामने घोषित किया। उटरमके उदार हृदयमें हेवलकके प्रति ये भाव थे। युद्ध के भीषण इतिहासमें इस तरह का आत्म त्याग देखना बहुत मुश्किल है। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि उटरमकी उदारताको हेवलकने बड़ी कृतज्ञताके साथ स्वीकार किया।

सारी तैयारियां पूरी हो जानेके बाद करीब-करीब ३००० गोरों के साथ सेना १६ सितम्बर को कानपुरसे चली, और उसने उस "अग्नि-यात्रा" का आरम्भ किया, जिसने कि हेवलकके नेतृत्वमें महान् काम पूरा किया। गंगा पार करके जब सेना आगे बढ़ी, तो मंगलेवरमें उपस्थित मजबूत विद्रोही सेनासे उसका मुकाबिला हुआ। लेकिन, सुसंचालित आक्रमणने उन्हें हटा दिया। फिर मूसलाधार वर्षाके बीच बड़ी कठिन यात्रा शुरू हुई। हरेक घण्टा बहुत मूल्यवान् था, क्योंकि कोई नहीं कह सकता था, कि लखनऊमें घिरे अंग्रेजोंकी इस वक्त क्या हालत होगी। सभी तक-लीफों और कठिनाइयोंकी पर्वा न करके सेना बड़ी तेजीसे आगे बढ़ी। २३ सितम्बरको—कानपुरसे चलनेके पाँचवें दिन—रेजीडेंसीके चारों ओर तोपोंकी आवाज साफ सुनाई दी। हेवलकने इस सलामीको इसलिये दागा, कि जिसमें दुर्गबद्ध लोगोंको सेनाके आनेका पता लग जाये। इसी दिन दिल्लीके फिरसे अंग्रेजोंके हाथमें जानेकी खबर सुनकर गोरे सैनिक बहुत प्रसन्न हुए। यह बड़ा काम चन्द दिनों पहले हुआ था। अब वह आलम-बाग पहुँचे, जहाँ पहले नवाब का ग्रीष्म-प्रासाद था, और रेजीडेंसीसे कुछ मील दूर था। शत्रुओंने यहाँ अंग्रेजोंको रोकनेके लिये अपनी मोर्चाबन्दी की थी। लेकिन हेवलक की भारी तोपोंका उनके पास जवाब नहीं था। रास्ता साफ कर लिया गया। उटरमने कुछ सवार लिए बड़ी बहादुरीसे शत्रुओंको अधिक संख्याकी पर्वा न करके उनका पीछा किया। एक दिनके लिए विश्राम करना अत्यावश्यक था। उसके बाद अन्तिम भिड़न्त खुद शहरके ऊपर हुई। ऐसा करनेसे पहले बीमारों और आहतोंकी देख रेखका

इन्तिजाम करना पड़ा। उन्हें ३०० के गारदके साथ आलमबागमें छोड़ दिया गया।

आलमबागसे रेजीडेंसी पहुँचनेके तीन रास्ते थे। उस रास्तेसे चलनेका निश्चय किया गया, जो कि नहरके ऊपर बने एक पुलके ऊपरसे जाता था। पुलके ऊपर दुश्मनकी छ तोपें लगी हुई थीं, और सड़ककी ओर मुंह किये दीवारोंमें बन्दूकके छेदोंवाली अस्थाई कितनी ही किलेबन्दियां की गई थीं। आज्ञा मिलते ही भयंकर गोलाबारीके भीतरसे गोरी सेना आगे बढ़ी। इसके कारण उनकी स्थिति भीषण हो गई, लेकिन आगे बढ़नेको कोई नहीं रोक सकता था, "एक आवाज हुई, सभी दौड़े। थोड़ी देरके लिए संघर्ष और फिर तोप उनके हाथमें थी।" हाइलेण्डर पुलपर अधिकार करके वहां जम गये। मैदानमें गिरे हुओंको छोड़कर बाकी गोरे सामने दौड़े। और "तब लखनऊ अपने सभी सुनहले मीनारों, समृद्ध गन्धोलों, भव्य मस्जिदों और बहुत से प्रासादोंके साथ, घरोंसे घनी सड़कें, लेकिन सभी जगह सुन्दर बगीचे, राजकीय उद्यान और पेड़ोंकी हरियालीसे युक्त लखनऊ उनके सामने था।"

आगे बढ़ते हुए जल्दी ही गोरे सैनिक कैसरबागके किलेबन्द महलपर पहुँचे, जहांपर शत्रु अपनी सारी शक्तिके साथ अन्तिम संघर्षके लिए तैयार था। लेकिन, अंग्रेजोंकी भारी तोपोंकी गोलाबारी और उनकी बहादुरीके सामने उसे भी नतमस्तक होना पड़ा। अब अंग्रेजी सेना रेजीडेंसीसे पांच सौ गजपर रह गई। शाम नजदीक थी। दिन भर सेना बिना विश्रामके लड़ती रही थी, मुश्किलसे उनके मुंहमें अन्न पड़ा था। कुछने सोचा, कि रातके लिए यहां रुक जाना अच्छा है, लेकिन हैवलक ऐसा करनेमें खतरा समझता था, क्योंकि अगली सुबहसे पहले ही ५० हजारकी संख्यामें विद्रोही आकर शायद उन्हें हटाने या नष्ट करनेमें सफल हो जायें। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम था, कि रेजीडेंसीमें घिरे लोगोंकी हालत बहुत खराब है, आग और मौतके बीचसे सैनिक फिर आगे बढ़े। "तब" प्रत्येक दीवार, प्रत्येक छत, और प्रत्येक कोनेसे लगातार गोलियां बरसने लगीं।

क्रोधमें पागल शत्रु अपनी संख्या और दीवारोंके पीछे सुरक्षित अपनी मोर्चाबन्दियोंसे ऊपर या सुरक्षित स्थानोंसे अपने सिरोंको दिखलाकर मुट्ठी भर गोरोंके ऊपर अपनी कई हजार बन्दूकोंको दागते गालियां दे रहे थे। हतों या मरणासन्नोंसे रास्ता भरा पड़ा था। सेनाके साथ आया बहादुर नेल यहीं मरकर गिरा, लेकिन हमारे आदमियोंको कोई चीज नहीं रोक सकी। सभी बाधाओंको दूर करते, अन्तमें बचे हुए बहादुरोंके सामने रेजी-डेंसीके फाटक दिखलाई पड़े। ठीक समयपर वह वहाँ पहुँचे थे। एक दिन और देर होती, तो कानपुरका हृदयद्रावक काण्ड यहां भी दोहराया जाता, क्योंकि शत्रुओंने रेजीडेंसीकी दीवारोंमें अपनी बारूदी सुरंगे लगा दी थीं, और प्रतिरोध करना असम्भव हो गया होता।

रेजीडेंसीके घिरावेको छोड़ दिया गया। सैनिकोंने फाटकोंके भीतरसे लड़ते हुए प्रवेश किया। एक प्रत्यक्षदर्शीने लिखा है—"गेरिसनकी देरसे अवरुद्ध उत्सुकता और अनिश्चितताका बांध फूट पड़ा। बहरा करनेवाली तालियां लगातार गूंजने लगीं। प्रत्येक गड्ढे, खाई और तोप, टूटे हुए घरोंके ऊपर रक्खी बालूकी बोरियोंके पीछेसे, अब भी थोड़े से दुर्दम्य हिम्मतवालोंकी, सुरक्षित प्रत्येक जगहसे तालियां और तालियोंकी आवाज उठने लगी। अस्पताल से भी बहुत से घायल रेंगकर उनके साथ ताली बजाते हमारी सहायताके लिए इतनी बहादुरीसे आये भाइयोंके स्वागतके लिये निकल आये। यह कभी भी न भूलने लायक दृश्य था। प्रत्येक बहादुर हाइलेण्डर इस आत्मविभोर कर देनेवाले समयका आनन्द लेनेके लिये बारह लड़ाइयाँ लड़ चुका था, और पिछले चार दिनोंमें अपनेसे एक-तिहाईको खो चुका था, उसके आनन्दकी सीमा न थी।...रूखी दाढ़ीवाले ये सैनिक आगे दौड़े। ऊँचे और बार-बार दोहराये जाते हर्षोद्रेकको दिखलाते उन्होंने महिलाओंसे हाथ मिलाया। उनकी गोदसे बच्चोंको लेकर बड़े प्यारसे उनपर हाथ फेरा और बारी-बारीसे एक हाथसे दूसरे हाथमें दिया। जब उत्साहका प्रथम वेग समाप्त हो गया, तब वह भरे हृदयसे अपनी भारी हानिके बारेमें आपसमें कहने लगे, और रास्तेमें काम आये अपने साथियोंके नाम पूछने लगे।"

इस प्रकार ४६० हताहतोंकी हानिके साथ लखनऊको मुक्त करा लिया गया, घिरे हुए १६०० सैनिकों और शरणार्थियोंको बारह सप्ताहके घिराव-के बाद किसी समय भी उनके ऊपर आनेवाले भयंकर खतरेसे छुड़ा लिया गया।

रेजीडेंसीमें प्रवेश करनेके अगले दिन हेवलकने सेनाकी मुख्य कमानको जेनरल उटरमके हवाले कर दिया। उटरमका ध्यान सबसे पहले स्त्रियों-बच्चों और घायलों तथा बीमारोंकी ओर गया, उन्हें वह कानपुर भेजना चाहता था। लेकिन, जल्दी ही पता लग गया, कि यह सम्भव नहीं होगा। यद्यपि रेजीडेंसीपर अधिकार हो गया था, लेकिन शत्रु पहलेसे भी बहुत अधिक संख्यामें जमा थे, और मुक्ति सेना स्वयं अब उनके घिरावेमें थी। छः सप्ताह तक, जब तक कि सर कौलिन केम्पबेल उनके बचानेके लिये अपनी सेना लेकर नहीं चला आया, तब तक वह नगरसे बाहर निकलनेमें अस-मर्थ रहे।

यह दूसरी सहायता जब आ गई, उसी समय हेवलक बीमार पड़ गया। इस वक्त तक उसे के० सी० ई० की उपाधि मिल चुकी थी, पीछे बहुत देरसे, जब कि उसे वह जान नहीं सकता था, एक हजार पौंड वार्षिक पेन्शनके साथ उसको बेरोनेट—(खानदानी सरकी उपाधि) मिली। लखनऊकी ओर कूच करते जो जबर्दस्त परिश्रम और कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं, उसने हेवलकके पहले हीसे कमजोर शरीरको और कमजोर कर दिया। पेचिशके आक्रमणसे २० नवम्बरको बहादुर सिपाहीने चार-पाई पकड़ ली और २४ तारीखके सबेरे उसका देहान्त हो गया। मृत्युसे थोड़ा ही पहले उसने अपने रणके साथीसे—जिसका भी अन्त छः सालके भीतर ही होनेवाला था—कहा था "४० वर्षसे अधिक समय तक मैंने अपने जीवनको इस तरह संयत किया, कि जब मौत आये, तो मैं बिना भयके उसका सामना कर सकूं।" इस युद्धमें प्रमुख भाग लेनेवाले अपने बड़े लड़केसे भी अन्तिम बिदाई लेते हुए उसने कहा था—"आओ और

देखो, कैसे एक ईसाई मरता है ।" इस प्रकार वह "सुखी योद्धा" अनन्त निद्रामें विलीन हुआ ।

बहुत साल पहले उसके एक मुखियाके कहे हुये निम्न वाक्यको हेवलक की कब्रपर उत्कीर्ण किया गया—"एक-एक इन्च सैनिक, किन्तु एक-एक इन्च ईसाई ।"

## १२—कोलिन केम्पबेल (१७९२-१८६३ ई०)

"कितनी जल्दी तुम भारतके लिये रवाना हो सकते हो?" इङ्गलैंडके युद्ध-सचिव लार्ड पेनमरने ११ जुलाई १८५७ ई० के अपराह्नमें केम्पबेल-से पूछा था। क्योंकि अभी-अभी भारतसे भयंकर खबरें आई थीं। चारों ओर विद्रोह ही नहीं फैल गया था, बल्कि भारतमें अंग्रेजी सेनाके प्रधान-सेनापति जेनरल ऐन्सनका हैजेसे देहान्त हो गया था।

"जरूरत हो, तो इसी शामको।" केम्पबेलने तुरन्त ही यह जवाब दिया था। दूसरे ही दिन केम्पबेलको जेनरल ऐन्सनका उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया गया, और वह उसी दिन कलकत्ताकी ओर तेजीसे दौड़ा।

केम्पबेल बड़ा बहादुर पुराना सैनिक था। कर्तव्यकी पुकार सुन, संकटके समय अपनी रानी और देशकी सेवाके लिये वह तुरन्त आगे बढ़ा। इस समय वह ६५ वर्षका था। अपने जीवनकी करीब आधी शताब्दी उसने हथियारोंके बीच बिताई थी। कोलिन केम्पबेलका जन्म २० अक्तूबर १७९२ ई० में ग्लासगोमें हुआ था। १६ वर्षकी उमरमें १८०८ ई० में वह सेनामें शामिल हुआ, और तीन महीनोंके भीतर लेफ्टनेंट बना दिया गया। उसने पेनिन्सुलाकी लड़ाइयोंमें भाग लिया था, जब कि विमियेरामें उस समय सर आर्थर वेलजली और पीछे ड्यूक वेलिंगटनने फ्रांसीसियोंको हराया था। कहा जाता है, यहींपर जब कि लड़ाई अभी-अभी शुरू हुई थी, कप्तानने कोलिनको एकाएक अपने पास बुलाया, और उसका हाथ पकड़कर शत्रुकी गोलाबारीके सामने ले जाकर कई मिनट तक ऊपर-नीचे टहलता उसकी हिम्मतकी परीक्षा करते, और उसमें आत्मविश्वासकी प्रेरणा दी। उसका उद्देश्य पूरा हो गया, और हाथ छोड़कर उसे अपनी रेजिमेंटमें जानेके लिये कहा।

उसके बाद कौलिनने सर जान मूरके नीचे काम किया, जहां चार्लस नेपियर भी था। करुनामें जब अंग्रेजी सेनाको पीछे हटना पड़ा, तो कौलिन वहां मौजूद था। इसीकी रेजीमेंटको चुपचाप और रात्रिके समय अपने प्रमुखके शवको रखनेके लिए किलेकी दीवारमें कब्र तैयार करनेका शोकपूर्ण सौभाग्य मिला था। पेनिन्सुलामें जिन-जिन जगहोंमें गौरवपूर्ण कार्य किये गये, उनमें सानसबस्तियानपर अधिकार करनेवाली पार्टीका नेता केम्पबेल ही था। यहीं उसे कूल्हेके पीछे गोली लगी, जिसके कारण वह दीवारकी ढुटानसे गिर पड़ा। पर तुरन्त ही उठकर फिर आगे दौड़ा, यद्यपि उसकी जांघमें खतरनाक घाव लगी थी। इस संघर्षमें उसके साहसकी बड़ी तारीफ हुई, और २१ वर्षके होते-होते वह कप्तान बना दिया गया। इसके बाद वह नोवास्काटियामें गया। फिर वेस्ट इण्डीजमें और इङ्गलैंडमें काम करता रहा, १८४१ ई० में लफ्टनेंट-कर्नल होकर उसने चीनकी लड़ाईमें भाग लिया, और उसे सी० बी० की उपाधि मिली। छः साल बाद भारत भूमिमें उसने पहली बार तलवार निकाली, और चिनियावाला तथा गुजरातमें सिक्ख युद्धके समय उसने जो हिम्मत और योग्यता प्रदर्शित की, उसके लिये उसे के० सी० बी० की उपाधि मिली।

सेवाओंमें कुछ साल बितानेके बाद उसके जीवनका बहुत महत्वपूर्ण समय आया। रूसके साथ लड़ाई छिड़ गई। १८५४ ई० में मेजर-जेनरलके तौर पर हाइलैण्ड ब्रिगेडके कमाण्डर के तौरपर उसे क्रिमिया भेजा गया। अलमाकी लड़ाईमें उसका काम बड़ा महत्वपूर्ण था। वह और उसके बहादुर हाइलैण्डरोंने रूसियोंको हराया ही नहीं, बल्कि उनकी उपस्थितिसे शत्रुओंमें भयका संचार हो गया था। फिर बलकलावाका संघर्ष आया। यहां केम्पबेलको जहाजसे अंग्रेजी सेनाके उतरनेकी जगहकी प्रतिरक्षाका काम मिला था। यहाँ साधारण रीतिसे शत्रुके रिसालेके प्रहारका मुकाबिला करनेकी चौकार पांती न बना, उसने अपनी सेनाकी अभेद्य पांती खड़ी की। लड़ाई शुरू होनेसे तुरन्त पहले तैयार खड़े अपने सैनिकोंसे उसने कहा—"याद रखो, अब तुम्हारे लिए पीछे हटनेका कोई अवसर नहीं है। तुम्हें

वहीं मरना है, जहाँ पर तुम खड़े हो।" तालीके साथ जवाब मिला—"हां, हां सर कोलिन, हम वही करेंगे।" सचमुच ही वह पीछे नहीं हटे। जब रूसी सैनिक उनपर आ पड़े, तो उस अमर "पतली लाल पांक्ति-रेखा ने"—अपने कोटके रंगके कारण सैनिक इस नामसे पुकारे जाते थे—शत्रु-का गोलियोंकी बाढ़से ऐसा स्वागत किया, कि जो मार नहीं गिराये गये, वह भागनेके लिये मजबूर हुये।

पीछे कोलिनने देखा, कि उससे छोटा अफसर जेनरल विलियम कोडरिंगटन प्रधान-सेनापति बना दिया गया, उसे यह काम इतना अपमानजनक मालूम हुआ, कि वह इस्तीफा दे इंगलैण्ड लौट गया। मगर जब रानी विक्टोरियाने उसे क्रिमिया लौटनेके लिए कहा, तो वह फिर वहां चला गया। कहा जाता है, विंडसर-प्रासादमें जाने पर परमभट्टारिकाने उसके प्रति इतना अनुग्रह दिखलाया, कि उसने रानीसे कहा आपकी आज्ञासे मैं फिर जाने तथा एक जमादारके नीचे भी काम करनेके लिये तैयार हूं। इस युद्ध में की गई सेवाओंके लिए कैम्पबेलको जी० सी० बी० की उपाधि मिली। जब युद्धकी समाप्तिके बाद वह इंगलैंड लौटा, तो उसके देशभाई उसके प्रति आदर दिखलानेमें थकते नहीं थे। इसमें आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं। हर तरहसे उसने अपनेको वास्तविक वीर साबित किया, और ऐसे कारनामे दिखलाए थे, जिनसे लोगोंके हृदय मोहित हो गये थे। एक लेखकने उसके बारेमें लिखा है—"वह ऐसा आदमी था, जोकि सर चार्लस नेपियरकी तरह युद्धके लिएही युद्धको प्यार करनेसे अपनेको रोक नहीं सकता, यद्यपि वह उसकी क्रूरताओंको जानता था, वह ऐसा आदमी था, जिसका हृदय युद्धके दिन और भी मजबूतीसे गतिशील होता था, ऐसा जेनरल था, जो अपने सैनिकोंमें अपनी हिम्मतको भर सकता था,क्योंकि वह अपनी आवाजके कम्पनसे बतलाता था, कि उसका अपना अन्तःस्थल कितना अधिक आन्दोलित है।"

ऐसा योद्धा था कैम्पबेल, जिसे सन् १८५७ ई० के विद्रोहसे हुई खतरनाक स्थिति में (साम्राज्यकी) नावकी पतवार पकड़ाई गई, और जैसाकि

घटनाओंने पीछे सिद्ध किया, इसके लिए उससे बढ़कर योग्य पुरुष नहीं मिल सकता था। भारी सामानसे लदे बिना केम्पबेल १३ अगस्त १८५७ ई० में भारत पहुँचा। सभी बातोंकी पूरी तरहसे जानकारी प्राप्त करके उसने विद्रोहको ध्वस्त करनेके लिए तुरन्त तैयारी की। जब खबर आई, कि हेवलक और उटरम लखनऊको मुक्त करके पुरानी गेरिसनके साथ अब स्वयं घिर गये हैं, तो उसने एक बड़ी सेना ले उनको मुक्त करनेके लिये स्वयं जानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे इसी समय भारतमें नई कुमक आ गई। उसने सेनाको संगठित करनेमें एक जराकी भी देरी नहीं की। कानपुरसे ६ नवम्बरको वह लखनऊकी ओर चला। क्रिमियासे ही ९३वीं हाइलैण्डर उसके साथ थे। सब मिलाकर ५००० सैनिक थे। यह सेना सब प्रकारसे अच्छी तरह हथियार बद्ध थी। यद्यपि लखनऊ पहुँचनेकी बहुत जल्दी थी, लेकिन हर चीजकी तैयारी और हर एक योजना बड़ी सावधानीसे बनाई गई थी।

केम्पबेल बहुत तेजीके साथ आगे बढ़ा, और तीन दिनके भीतर वह लखनऊ में आलमबाग पहुँच गया, जहांपर कि हेवलक और उटरमके बढ़ावको शत्रुओंने रोकना चाहा था, और जहांपर ३०० गारदके साथ अंग्रेज बीमारों और घायलोंको छोड़ दिया गया था। एक ऊंचे स्थानसे केम्पबेलने अपने आनेकी सूचना ब्रिटिश रेजीडेंसीको दी। यद्यपि तारसे सम्बन्ध तोड़ दिया गया था, लेकिन शत्रुओंने सिगनल देनेकी इस ऊंची जगहको ध्वस्त नहीं किया था।

जब केम्पबेलकी सेनाके आनेकी खुशखबरी उस गैरिसनको मिली, उसी समय एक आयरिश असैनिक टामस हेनरी कवानगने एक अद्भुत साहसका परिचय दिया। कवानग भी घिरे हुये आदमियोंमेंसे था। रेजीडेंसीमें यह अत्यन्त जरुरी समझा गया, कि घिरे हुये गेरिसनकी स्थिति तथा आगे किस रास्ते बढ़ा जाये, इसकी ठीक-ठीक सूचना केम्पबेल को मिलनी चाहिये। लेकिन, लखनऊमें हजारों विद्रोही भरे हुये थे, और हरेक रास्तेपर सैनिक पहरा था। सूचना देना आसान काम नहीं था। बहादुर कवानगने

अपनी सेवायें अर्पित कीं। वह रास्तेके सर्वनाशको जानता था। यदि वह विद्रोहियोंके हाथमें पड़ता, तो बड़ी सासतके साथ प्राण देने पड़ते। लेकिन वह यह भी जानता था, कि सारे गेरिसनका जीवन और मरण निर्भर करती है केम्पबेलके सफलतापूर्वक रेजीडेंसी पहुँचने में। उटरमने पहले कवानगको इस भयंकर खतरेमें डालनेमें हिचकिचाहट दिखलाई। लेकिन, अन्तमें उसने स्वीकार किया।

कवानग अपने इस साहसिक कार्यके बारेमें लिखता है—"मैंने नगरके बदमाश या अनियमित सिपाहीका भेस बनाया, ढाल-तलवार लटकाई, देशी जूते, चूड़िदार पायजामा, छपे मलमलके जामेके ऊपर एक पीला रेशमी कुर्ता पहना, अपने कन्धोंपर पीले रंगकी छींटकी चादर डाली, एक सफेद कमरबन्द, एक मक्खनी रंगकी पगड़ी और एक सफेद कमरबन्द बांधा। चेहरेपर कन्धे तक, और कलाई तक मेरे हाथ चिरागकी कालौंसे रंग दिये गये थे। उसमें थोड़ा तेल मिला लिया गया था, जिसमें रंग मिटे नहीं।" एक देशी पथ-प्रदर्शकके साथ इस तरह भेस बदलकर शामके वक्त कवानग रवाना हुआ। साढ़े ४ फुट गहरी और सौ गज चौड़ी गोमतीको पार करके रातको अन्धेरेमें वह अंग्रेजी केम्पकी ओर चला। रास्तेमें कई जगह शत्रुके पहरेदारोंने उसे आवाज दी। बड़ी मुश्किलसे पता न लगने दे वह आगे बढ़ा। वह आलमबागके नजदीक पहुँचने लगा। अब उसका पथ-प्रदर्शक इतना भयभीत हो गया, कि उसने कवानगसे आगे न बढ़नेकी प्रार्थना की, लेकिन उसे न मानकर वह बढ़ता ही गया। अधिकाधिक खतरा उसके सामने आता गया। रातके ४ बजनेवाले थे, जब कि वह अंग्रेजी केम्पके नजदीक पहुँचा। इस समय वह लिखता है—"मैं एक टीले या पेड़ोंके झुरमुटके कोनेमें एक घण्टा सोनेके लिये रुक गया। मेरे पथ-प्रदर्शक कनौजीलालने मुझे बहुत कहा, कि ऐसा न करो, लेकिन, मैं समझता था, कि वह खतरेको बढ़ा-चढ़ाकर बतला रहा है। लेटते हुये मैंने उससे कहा, कि बगीचेमें अगर कोई मिले, तो उससे पता लगाओ, कि हम इस वक्त कहां हैं। बहुत दूर नहीं जाना पड़ा, कि मैंने अंग्रेजी चैलेंज सुना "हू कम्स

दियर" (कौन वहाँ आ रहा है)? बोलनेका ढंग देशी था। हम एक अंग्रेजी रिसाले की चौकीपर पहुँच गये। खुशीके आंसुओंके साथ मैंने चौकीके सिक्ख अफसरसे हाथ मिलाया। वह बूढ़ा योद्धा मेरी ही तरह खुश हुआ, जब उसे मालूम हुआ, कि मैं कहांसे आ रहा हूं। उसने मेहरबानी करके अपने दो आदमियोंके साथ मुझे आगेके गारदके कैम्पमें भेज दिया। पंचमहारिकाकी नवीं भालाबरदार रेजिमेन्टका एक अफसर उस समय पहरोंकी जाँच करनेके लिये आया था, वह मुझे रास्तेमें ही मिला, और अपने तम्बूमें ले गया। वहां मुझे सूखे मोजे और पतलून मिले, जिनकी बड़ी जरुरत थी। एक ग्लास वरांडीका भी मिला, जिसे करीब दो महीनेसे मैंने चखा नहीं था।"

हिम्मती आयरिशके आनेपर अंग्रेजी कैम्पमें असीम उत्तेजना और उत्साह फैल गया। अपनी दृढ़ स्वभावता और प्रशंसामें कंजूसीके लिये मशहूर कैम्पबेल भी उत्साहके मारे फूल उठा; जबकि कवानगने उसकी मेज पर बैठकर रातकी साहस-यात्राकी अद्भुत कहानी सुनाई। "उसकी सूचनायें इतनी महत्वपूर्ण थीं, कि प्रधान सेनापतिने उसके बादही लखनऊ के ऊपर होनेवाले चढ़ाईके समय कवानगको अपने पास पथ-प्रदर्शक के तौरपर रक्खा। अन्तमें इस और बादकी सेवाओंके पारितोषिकके तौर-पर कवानग को २० हजार रुपया ( दो हजार पौंड ) इनाम तथा अवधके असिस्टेंट कमिश्नरका पद, साथ ही इन सबसे बढ़कर विक्टोरिया क्रासका तमगा लगा।

१४ मईको अंग्रेजी सेना शहरकी ओर बढ़ी। रेजीडेंसीके मीनारसे केम्पबेल और उसके ५००० हजार आदमियोंकी प्रगति को सांस रोके बड़ी दिलचस्पी से देखा जा रहा था। इस बार हेवलक और उटरमसे अलग ही रास्ते को पसन्द किया गया। नहर पार करनेकी जगह केम्पबेलने पहले शत्रुओं की एक बहुत मजबूत जगहकी ओर मुंह किया। यह रेजीडेंसीसे तीन मीलपर अवस्थित नवाबों का शिकारी महल दिलकुशामें था। एक भारी मुठभेड़ हुई, लेकिन शत्रुओंको मार भगाया गया, और उसका पीछा करते

हुये अंग्रेजोंने मार्टिनीयर कालेज और दिलकुशापर अधिकार कर लिया। दिलकुशाको कैम्पबेलने अपना हेडक्वार्टर बनाया। १६ तारीखके सबेरे अपने सामानको वहां छोड़ वह सिकन्दरबागकी ओर बढ़ा। यह शत्रुका सबसे जबर्दस्त मोर्चाबन्द स्थान था। यहां एक चौकोर बहुत बड़ी इमारत थी, जिसके चारों तरफ बन्दूकके छेदोंवाली मजबूत पक्की दीवारें थीं। स्पष्ट हो गया, कि बड़े जबर्दस्त सैनिकबलके साथ शत्रु भयंकर प्रतिरोधके लिये एकत्रित है। सिकन्दरबागके बाहर बारकोंकी पाँती थी, जिससे शत्रुओं को हटाना सबसे पहला काम था। इसे पूरा करके अंग्रेजोंने सैनिक चौकी-की बैरक बना दिया, फिरमुख्य इमारत पर भिड़े।

अब एक ऐसा भयंकर संघर्ष शुरू हुआ, जो बयानमें नहीं आ सकता। यह बहुत हृदयद्रावक दृश्य था, लेकिन जब हम नाना साहब और उनके अनुयायियोंके घोर अत्याचारोंका ख्याल करते हैं, तो यह आश्चर्यकी बात नहीं है, यदि अंग्रेजोंने अपने क्रोधका यहां परिचय दिया। डेढ़ घण्टे तक वहाँकी दीवारों को तोड़नेकी कोशिश करनेमें वह बहुत सफल नहीं हुये, और केवल दो वर्ग फीटका एक छोटा सा छेद भर ही अन्तमें कर सके। इसके बाद फिर आक्रमण करनेका हुकुम हुआ, जिसके लिये हाइलेण्डरों और कुछ अंग्रेज भक्त सिक्खोंको चुना गया।

हरेक पहले पहुँचनेकी इच्छासे उस छोटे छेदकी ओर दौड़ा। जहां तक सम्भव था, ये उसमें से होकर भीतर घुसे। एक बार भीतर जानेके बाद उन्होंने जंगलोंके लोहेके छड़ोंको तोड़ दिया, और चकित प्रतिरक्षकोंके ऊपर सीधे कूद पड़े। शत्रुके बचनेके लिये अब कोई रास्ता नहीं था, क्योंकि इमारत से बाहर जानेके सभी रास्तोंपर अंग्रेजी तोपें लगी हुई थीं। हाइ-लेण्डरों और सिक्खोंने अपनी संगीनोंसे भयंकर प्रहार शुरू किया। उसके सामने प्रतिरोध करना बेकार था। एक लेखक लिखता है—"यह भयंकर सर्वनाश था। किसीने त्राण नहीं मांगा, और कुछको छोड़कर किसीको वह दिया भी नहीं गया। कठोर हाइलेण्डरोंने दयाकी भिक्षा मांगनेवालेके कानमें 'कानपुर' कहा, और दूसरे ही क्षण अपनी संगीनको उसकी छातीमें

घुसेड़ दिया।......बदला लेनेका समय आ गया था।"......यद्यपि लड़ाई खतम हो गई थी, लेकिन मौतका काम तीन लम्बे घण्टों तक चलता रहा। फिर सर्वत्र खामोशी छा गई। जब बदला लेने वाले वधस्थानसे बाहर निकले, तो उन्होंने जो भयंकर कृत्य वहां किया था, उसका सबूत उनके शरीरपर मौजूद था। उस इमारतमें जो दृश्य उस समय दिखाई पड़ता था, उसे बहुत कम देखना चाहते थे। फर्श खूनसे भरा हुआ था, और कोनों तथा रास्तोंमें दो हजार मरे हुये आदमी पड़े थे। इस प्रकार कानपुरका बदला लिया गया। लेकिन, सबेरेके वक्त जो हर्ष दिखाई पड़ रहा था, वह अब शोक और गम्भीरतामें बदल गया था, क्योंकि इतने बड़े भयंकर दण्डको भारी कुर्बानीके बिना नहीं किया गया था।

सिकन्दरबागको ले लिया गया, पर केम्पबेलकी सेना अभी रेजीडेंसी नहीं पहुँच पाई थी, आगे अब एक किलाबन्द मस्जिदने अंग्रेजोंके रास्तेको रोक दिया था। तो भी अंग्रेज एक जबर्दस्त मुठभेड़के बाद सफल हुये। अब अन्तिम कार्य शुरू हुआ।

केम्पबेल जिस समय रेजीडेंसीके नजदीक और नजदीक आ रहा था, उसी समय उसके काफी नजदीक आ जानेपर उटरम और हेवलक सुरक्षाके साथ सहयोग करनेकी तैयारी कर रहे थे। यह कल्पना करना मुश्किल नहीं है, कि कितनी उत्तेजित हो घिरी गेरिसन अपने भरोखोंसे आगके समुद्रसे घिरी मुक्ति-सेनाको आगे बढ़ते देख रही थी। सेना और नजदीक और नजदीक आती गई। १६ नवम्बरको ही गेरिसनने अपनी तरफसे रास्तेको साफ करना शुरू किया, अगले दिन वह केम्पबेलकी सेनासे मिल गई। उस दिन सबेरे केम्पबेलका विद्रोहियोंसे मुकाबला मेस हौसकी इमारतमें हुआ था। इसपर अधिकार हो जानेके बाद शत्रुओंने मोतीमहलमें डटकर लड़नेकी कोशिस की थी।

केम्पबेलने अपने भाषणमें कहा था—"और तब मुझे थोड़ी ही देर बाद अवर्णनीय प्रसन्नता हुई, जब कि सर जेम्स उटरम और सर हेनरी हेवलक मुझसे मिलनेके लिए आगे आये। इसके बाद काम खतम हो गया, घिरे हुये गेरिसनका मुक्त करना पूरा हो गया।"

उन वीर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंके हृदयमें उमड़ते हर्षको शब्दोंसे कैसे वर्णन किया जा सकता है, जो कि सप्ताहोंके कष्ट और चिन्तामें घुलते अन्तमें इन हर्षप्रद शब्दोंको बहादुर हाइलेण्डरोंके बैंडपर सुना, "केम्पबेल आ रहा है।" मुक्ति-सेना रेजीडेंसीके भीतर दाखिल होने लगी। उस अविस्मरणीय दिनमें लखनऊमें विजय और संतोषके नारे बुलन्द हुये। पर इस सारे हर्षके साथ एक गहरा शोक भी सम्मिलित था। इस यात्रामें ११२ अफसर और सैनिक मारे तथा ३४५ घायल हुये। कौन भुला सकता था, कि इतनी कीमतपर इस सफलताको प्राप्त किया गया? केम्पबेल गेरिसनके स्त्रियों बच्चों तथा करीब एक हजार घायलों और बीमारोंको रेजीडेंसीसे हटानेमें सफल हुआ। पता लगा, कि हैवलकने चारपाई पकड़ ली। अंग्रेजी केम्पपर नये तौरसे शोक हो गया।

केम्पबेलके कामका मुख्य भाग अब पूरा हो गया, लेकिन अब भी बहुत कुछ करना था। सबसे पहला काम था मुक्त किये हुये सैनिकोंको कानपुर पहुँचाना। अनुकूल परिस्थितिमें भी यह काम उतना आसान नहीं था। कानपुरमें आनेपर केम्पबेलने देखा, कि अभी वह स्थान शत्रुओंके हाथमें है। उसने बीमारों और घायलोंको कलकत्ता भेज दिया, जिसके बाद विद्रोहियोंके ऊपर आक्रमण किया, जिनकी संख्या २५००० थी। उसने उन्हें सभी जगह हराया।

केम्पबेलका दूसरा सैनिक अभियान १८५८ ई० में शुरू हुआ। इस साल उसने और उटरमने सिर्फ लखनऊको ही फिरसे नहीं जीता... केम्पबेलकी अनुपस्थितिमें लखनऊ फिर विद्रोहियोंके हाथमें चला गया था। अब सारे अवध प्रदेशमें अंग्रेजोंका शासन मजबूतीसे स्थापित हो गया। कई लड़ाइयोंमें केम्पबेलने अपना कौशल दिखलाया। मध्यभारतमें सर ह्यू रोज (पीछे लार्ड स्ट्रेथमेर्न) ने विद्रोहियोंका सफलतापूर्वक दमन किया। केम्पबेल और उसके योग्य जेनरलोंने एकके बाद एक शत्रुके सभी मजबूत गढ़ोंको ध्वस्त किया, और अन्तमें विद्रोहको उन्होंने बिल्कुल दबा दिया।

इस बीच उसकी सफलताओंके लिए केम्पबेलको २० हजार रुपया वार्षिक पेन्शनके साथ बैरन क्लाइडके नामसे लार्ड बना दिया गया।

लार्ड क्लाइड १८६० ई० तक भारतमें रहा। फिर वह देश लौट गया। उसे अब विश्रामकी आवश्यकता थी। वह बिल्कुल जीर्ण हो गया था, लेकिन, तो भी उसने कनाडाकी सम्भावनाओंके सम्बन्धमें कहा था—"अगर मुझे जानेको कहा गया, तो मैं बिल्कुल तैयार हूं।" लेकिन, उसकी सेवाओंकी आवश्यकता नहीं हुई, इसलिए उसकी प्यासी तलवार सदाके लिये म्यानमें चली गई। वह लन्दनमें रहने लगा, जहाँपर १४ अगस्त १८६३ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

---

## ख. साम्राज्य स्थापक पादरी

### १—विलियम केरी (१७६१-१८३४ ई०)

"किसी भी कामके आ पड़नेपर मैं उसमें लगकर तन्मय हो सकता हूँ। यही मेरी सारी सफलताओंकी कुंजी है।" अपने जीवनके अन्तिम समयमें किये हुये कामोंपर नजर डालते हुये विलियम केरीने यह वाक्य कहा था। यद्यपि इसमें उसने बहुत संकोच दिखलानेका दोष किया है, तो भी यह उसके स्वभावको अच्छी तरह बतलाता है। यह लगन ही थी, जिससे कि वह मोचीसे उपदेशक बन गया, यह लगन ही थी, जो कि उसने भारत-में अंग्रेजी मिशनरी उद्योगकी आधारशिला रक्खी, और तीस सालके भीतर सारे भारतमें बाइबलके फैल जानेका मुख्य साधन बना।

विलियम केरी बड़ी गरीबीमें पला था। नारथेम्पटनशायरके पौलर्सपरी गांवके अपने घरमें वह १७ अगस्त १७६१ ई० में पैदा हुआ था। उसका बाप पहले जुलाहा था, फिर वह इलाकेके गिर्जेका क्लर्क और स्कूलका अध्यापक बना। इसके कारण दूसरे गंवार लड़कोंकी अपेक्षा विलियमको कुछ अधिक सुविधायें थीं, लेकिन तो भी उसके मां-बाप बहुत गरीब थे, और जीवनके लिये उसे कोई बड़ी सम्भावना नहीं थी। लड़केका यह सौभाग्य था, जो लड़कपनसे ही उसे जिज्ञासु दिमाग और लगन प्राप्त थी। उसने अपने उदाहरणसे बतला दिया, कि जिन बाधाओंको दूसरे अपरिहार्य समझते हैं, वह उसे निराश नहीं कर सकतीं।

जब वह सिर्फ ६ वर्षका था, तो उसकी माँने परिवारके सो जानेके बाद रातको उसे इसलिये बहीखातेका हिसाब करते देखा, कि गणितकी कुछ बातें मालूम हो सकें। उन दिनों—१८वीं सदीके उत्तरार्धमें—किताबें दुर्लभ थीं। वह न मंगनी में और न भीखमें मिल सकती थीं। विलियमके हाथमें जो भी किताब आती, विशेषकर यात्रा, साहसिक कार्य या इतिहासके सम्बन्धकी, उसपर वह जल्दी अधिकार प्राप्त कर लेता। चिड़ियों, फूलों

और कीड़ोंको जमा करनेमें भी उसकी बहुत दिलचस्पी थी, जिसके द्वारा एकके बाद एक वह उनसे परिचित हो गया। विद्याकी जिस शाखाका ज्ञान प्राप्त करनेका साधन हाथ लगता उसका वह अध्ययन करता।

दूसरे लड़कोंकी तरह वह भी खेल-कूद और मनबहलावमें कम दिलचस्पी नहीं लेता था। लड़कोंके सभी खेलोंमें वह नेता बननेके लिये तैयार रहता। वह अपने साथीके बारेमें यह भी जानते थे, कि जिस कामके लिये उसका इरादा हो जाता, उसे वह पूरा किये बिना नहीं छोड़ता। अगर वह किसी मुश्किलसे चढ़े जानेवाले पेड़को देखते, तो विलियम पहला होता, जो उसपर चढ़ने की कोशिश करता और प्रायः सिर्फ वही सफल होता। उसके बारेमें एक घटनाबतलाई जाती है। एक बार चिड़ियोंके घोसलोंकी तलाशमें वह पेड़पर चढ़ते हुये गिर पड़ा। शरीरमें चोट लगी, वह मूर्छित भी हो गया, लेकिन होशमें आते ही उसने पक्का कर लिया, कि मैं फिर इस पेड़पर चढ़ूंगा और वहांसे चिड़ियोंको लाऊंगा। अन्तमें उसने यह करके छोड़ा।

लड़कपनके दिन इस तरह बीत गये। अब वह समय आ गया, जब कि विलियम केरीको जीविकाके लिये कोई पेशा चुनना था। १४ वर्षकी उमरमें अपने गांवसे दस मीलपर अवस्थित हेकलटन गांवके एक मोची निकलसके यहाँ उसे शागिर्दी करनेके लिये लगाया गया। यह पेशा इसलिये चुना, कि ७ वर्षकी उमरसे ही उसको चर्मरोगकी शिकायत थी, जिसके कारण वह धूपमें काम नहीं कर सकता था, और घरके भीतर रहकर काम करना ही उसके लिये अच्छा था। इस समय उसका विद्याप्रेम अत्यधिक बढ़ गया था, यद्यपि उसके पूर्ण करनेके अवसर बहुत कम थे। जब उसे यह मालूम हुआ, कि उसके मालिकके पास बहुतसी पुस्तकें हैं, जिन्हें मैं पढ़नेके लिए ले सकता हूँ, तो उसकी खुशीका ठिकाना नहीं रहा। उनपुस्तकोंमें इंजीलकी व्याख्या थी, जिसमें कितने ही ग्रीक शब्द लिखे हुये थे। इन शब्दोंको वह बिल्कुल नहींजानता था, लेकिन उन्होंने विलियमके ध्यानको अपनी ओर खींचा औरउसने उनके अर्थको जानना चाहा। जितना हो सका, उतने शब्दोंको उसने

उतार लिया। फिर घर जानेपर वहांके जुलाहे टाम जान्सको अर्थ बतलानेके लिये बाध्य किया। टाम पुरानी भाषाओंका कुछ ज्ञान रखता था। दूसरे तरीकोंसे भी जहाँ तक हो सकता था, विलियम ज्ञानका संचय करता रहा। इस बीच उसने अपने कामके पेशेकी ओर भी ध्यान दिया। लेकिन उसकी शागिर्दी दो ही साल तक चल सकी। उसका मालिक मर गया, फिर उसी गांवके मिस्टर ओल्डकी नौकरीमें उसने घुमन्तू एजेंटका काम शुरू किया। यह संदिग्ध है कि इस काममें वह चतुर था, उसका ध्यान हर वक्त पढ़नेकी ओर रहता था। कहा जाता है, वह कभी भी अपने गाहकके पैरोंके लिये दोनों जूतोंको ठीक-ठीक नहीं बना सकता था, न उन्हें खुश रख सकता था। अचरजकी बात यह है, कि वह अपनेको "बहुत अच्छा कारीगर" समझता था। कई सालों बाद भारतमें जब एक ऊंचे अंग्रेज अफसरने पूछा, कि आप एक बार मोची थे, तो उसने जवाब दिया—"नहीं साहब, मैं केवल गांवका चमार था।"

जिस वक्त केरी मिस्टर ओल्डकी नौकरीमें था, उसी वक्त उसकी दिलचस्पी धार्मिक कामोंमें हुई इसके पहले वह उनसे बेपर्वाह था। मिस्टरओल्डका एक दूसरा नौजवान नौकर भी था, जो इंगलिश चर्च विरोधी सम्प्रदायमें था। जब काम करनेके लिये बैठते, तो दोनोंमें अक्सर मतभेदोंपर बहस छिड़ जाती। इलाकेके गिर्जेके क्लर्कका लड़का होनेके कारण केरीने इंगलिश चर्चके अनुसार शिक्षा पाई थी। वह कहता है—"मैं सदा मतभेदियोंको घृणाकी दृष्टिसे देखता था।" पहलेपहल वह अपने साथीके तर्कोंके ऊपर बहुत कम ध्यान देता था, और बहसमें अपना ही वचन मनवानेपर जोर देता था। लेकिन जो कुछ सुनता था, कुछ समय बाद उनके बारेमें जब सोचने लगा, तो मालूम हुआ, कि उसका प्रतिद्वन्द्वी ठीक कह रहा है, और मैं गलतीपर हूँ। इसके कारण उसके दिमागमें बेचैनी बढ़ने लगी। उसने लिखा है—"मैं कोई चीज चाहता था, लेकिन यह नहीं समझता था, कि सारे विचारोंके परिवर्तनमें ही मेरी भलाई है।" उसके साथी कारीगरने उसके इस परिवर्तनको देखा। केरीके मतमें चुपचाप परिवर्तन हुआ। उसने गिर्जेकी

बैठकों और धार्मिक सभाओंमें भाग लेना शुरू किया। वह सोचता था। "इससे मेरे मनको आराम मिलेगा और भगवान मुझे स्वीकार करेंगे।" उसने अपनी सारी बुरी आदतें छोड़ नया जीवन बितानेका निश्चय किया।

दुविधा और मानसिक असंतोषकी स्थिति काफी समय तक रही। उसका जिज्ञासु और असंतुष्ट मन कोई रास्ता ढूंढ़ना चाहता था। अब वह अपने पुराने इंगलिश चर्चको छोड़कर-मतभेदी सम्प्रदायमें दाखिल हो गया। यही नहीं, १७८१ ई० में नौ मतभेदियोंका एक छोटा सा संगठन हैकलटनमें कायम किया गया, जिसकी सूचीमें केरीका नाम तीसरा था। उसने इङ्गलैंड चर्चको सदाके लिये छोड़ दिया। अब वह आसपासके गाँवोंमें जाकर उपदेश देने लगा। एक प्रकारके ऐसे सम्मेलन होने लगे, जिनमें बाइबलके किसी वाक्यपर उपदेश देनेके लिये बुलाया जाता। सुननेवाले अनपढ़ गंवार थे। कभी-कभी वह केरीकी प्रशंसा करते, जिससे उसे दुःख होता, क्योंकि ऐसी प्रशंसासे उसमें अभिमान बढ़नेका डर था। इसी साल उसने ब्याह किया। इसके थोड़े ही दिनों बाद मिस्टर ओल्डका कारबार केरीके हाथमें आ गया, और वह उसी गाँवमें बस गया।

पांच वर्ष और बीते। केरीके जीवनमें कई घटनायें घटीं। पहले वह हैकलटनके आसपास उपदेश देता रहा। उसके बाद वहाँसे ६ मीलपर अवस्थित अर्ल-बर्टनके छोटे से मन्दिरका पादरी बन गया। नारथेम्पटनमें डा० रैलेंडने नेन नदीमें सार्वजनिक तौरसे उसे बपतिस्मा दिया था। कारबारमें असफलताके कारण उसे पड़ोसके दूसरे गांव पिडिंगटनमें निवास बदलना पड़ा।

१७८६ ई० में अब उसे नार्थम्पटनशायरके मौलटनमें बपटिस्ट मन्दिर के पादरीका काम मिला। उसे आशा थी, कि वहाँ रहकर अपने पादरीके कर्तव्यको पालन करते मोचीका काम छोड़कर अध्यापकीको अपनायेगा। इसमें उसे हताश होना पड़ा। पहलेका स्कूलमास्टर जल्दीही अपने काम पर लौट आया, और यहभी देखा गया, कि केरी ज्ञानके अर्जन करनेमें ही दक्ष है, उसके प्रदान करनेमें नहीं। इसवक्त वह बहुत गरीब था। स्कूलसे

उसे साढ़े सात शिलिंग प्रति सप्ताह आमदनी होती थी। पादरीके काम के लिये सालमेंसिर्फ १५ पौंड मिलता था। इसप्रकार कुल आमदनी ३५ पौंड(३५० रुपया) वार्षिक थी। उसका परिवारभी बढ़रहा था, जिससे जीविका चलाना बहुत मुश्किल होरहा था। कुछ समय बाद फिर उसने मोचीका काम शुरू किया। नार्थम्पटनसे उसे कुछ आर्डर मिले। आजकी तरह उस समयभी यह जूतेके व्यापारका केन्द्र था। हर पक्षमें एकबार यह नाटासा आदमी सरकारी ठेकेदारके लिये जूतोंसे भरे थैलेको लिये उधर जाता दिखाई पड़ता। वहाँसे वह एक पक्षके लिये चमड़ेको ढोते घर लौटता। ऐसी गरीबी थी, जो साधारण आदमीको तीन महीनेमें चूर-चूर करदेती। पर उसने इसकी पर्वाह न की और कभी मांगकर और कभी-कभी कोई किताब खरीदकर अपनी पढ़ाई जारी रक्खी। अब वह खास तौरसे ग्रीक, लातिन और इब्रानी भाषाका अध्ययन कररहा था। अपने मन्दिरमें दिये जानेवाले प्रत्येक उपदेशके लिये बाइबलके जिस वाक्यको वह चुनता, उसेही पहले इन भाषाओंमें अच्छीतरह पढ़ लेता। किसी पड़ोसीने उसे एक पुरानी पोथी डच भाषामें प्रदान की थी, जिसके सहारे उसने इस भाषाका भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया।

मोलंटनमें रहते उसके दिमाग में पहले पहल वह बात आई, जिसके लिये उसने अपने जीवनको अर्पित किया। जिन पुस्तकोंकोउसने पढ़ा था, उनमें कूक की "समुद्र-यात्रायें" भी थीं, जिससे उसे समुद्रपारके भिन्न भिन्न देशों की साधारण परिस्थितियां मालूम हुईं। एकदिन वह अपने विद्यार्थियोंको भूगोल पढ़ा रहा था, उसी वक्त उसके दिमागमें ख्याल आया कि, संसारके कितने बड़े भागमें अभी बाइबलका संदेश कभी नहीं पहुँचा। उसने स्वयं चमड़े का एक भूगोल बना रक्खा था, जिस पर उङ्गली चलाते हुये वह बोल उठा—"ये काफ़िर हैं, और ये भी काफिर, और ये भी काफिर हैं।" उसी समयसे उसके हृदयमें यह भावउठा कि, काफिरों की भूमिमें बाइबलका ज्ञान फैलाया जाये।

(यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, केरीने जिस भारतको काफिर समझकर उसे अपने करुणाका पात्र माना, वहाँके काफिरोंके पास ऐसे उच्च दार्शनिक ज्ञान थे, जिनके सामने बाइबलकी कहानियाँ बच्चोंकी कहानियोंसे अधिक महत्व नहीं रखती थीं। लेकिन, केरीकी बात कौन कहे। अब भी ऐसे पादरियोंकी कमी नहीं है, जो आंख मूंदकर फिल-स्तीन के सीधे-सादे विश्वास रखनेवाले लोगोंके विश्वासोंको सबसे ऊंची शिक्षा मानकर उसे फैलानेकी कोशिश कर रहे हैं।)

केरीने अब पता लगानेका निश्चय किया, कि ज्ञात दुनियांके प्रत्येक देशकी आध्यात्मिक स्थिति क्या है, तथा यह भी सोचना चाहा, कि मिश्नरी कामके लिये वहां कितनी सम्भावनायें हैं। पहले उसने कई बड़े-बड़े टुकड़ोंको चिपकाकर एक बड़ा नकशा बनाया। फिर हरेक देशके ऊपर पुस्तकोंसे प्राप्त ज्ञानको नोट कर दिया। इस प्रकार उसे मालूम हुआ, कि ४० करोड़से कम ऐसे लोग नहीं हैं, जो काफिरोंके जीवनकी घोर काल-रात्रिमें अपना समय बिता रहे हैं। इन सारी ज्ञातव्य बातों को लेकर उसने एक पुस्तक लिखी—"काफिरोंके धर्म-परिवर्तनके लिये उपयुक्त साधनोंको इस्तेमाल करनेमें ईसाइयोंकी जवाबदेहीके विषयमें जिज्ञासा"। विलियम केरीका अब सारा ध्यान विदेशमें ईसाई मिशन स्थापित करनेकी आवश्यकतापर केन्द्रित हुआ। वह इतना तन्मय हो गया, कि कोई ऐसा उपदेश या बात-चीत नहीं होती, जिसमें वह इस बात का उल्लेख न करता। लेकिन अपने साथी पादरियोंसे उसे कुछभी प्रोत्साहन नहीं मिला। इसका यह मतलब नहीं, कि वह उसकी पर्वाह नहीं करते थे। दो साल पहले नार्थम्पटनशायरकी बपतिस्त पादरी सभा ने इस विषय पर बहस की थी, और यह आशा प्रकट की थी, कि काफिर देशोंमें बाइ-बलका प्रचार जल्दी होने लगेगा। लेकिन उन्होंने अनुभव किया, कि अभी ऐसे काममें हाथ लगानेका समय नहीं आया है। यह एक ऐसा लक्ष्य है, जो कि अभी हमारी पहुँचके बाहर है। छः वर्ष बीत गये। 'जिज्ञासा'

हस्तलेखके रूपमें उसके पास पड़ी रही, फिर वह उसके प्रकाशनके लिये दूसरोंको तैयार कर सका।

एक बार नार्थम्पटनमें बप्तिस्त पादरियोंकी सभा हो रही थी। डा० रेलैंडने तरुणोंको किसी विषय पर सुझाव रखनेके लिये कहा। केरीने उठ कर अपनी पुस्तकमें लिखे विषयको सामने रक्खा। उसने सुझाव को रक्खा ही था, कि चकित और खिन्न हो केरीको बैठ जानेके लिये कहते बतलाया—"जब भगवान्‌की इच्छा काफिरोंको धर्ममें लाने की होगी तो वह तुम्हारी या मेरी सहायताके बिना ही उसे कर देगा।"

इसी बीच १७८८ ई० में केरी लीसिस्टरमें वहांके बपतिस्त-मन्दिर का पादरी बनकर चला गया। यहां मौलटनकी अपेक्षा उसकी आमदनी अधिक थी। तो भी वह अपने पेशेको करता रहा। फिर धीरे-धीरे उसने एक स्कूल खोला, जो पहलेकी अपेक्षा अधिक सफल साबित हुआ। अब भी अपने बचे समयको वह नाना विद्याओं को अर्जनमें लगाता था।

समय आ गया, जबकि केरी जिस कामके लिये इतने दिनोंसे प्रयत्न कर रहा था, वह सफल हो। १७६१ ई० का सन् था। यद्यपि अभी कोई वैसा काम नहीं हुआ था, लेकिन जोलोग उसका विरोध करते थे, वह उसके उद्देश्य से सहानुभूति रखने लगे। उसी साल अक्तूबरमें बपतिस्त पादरियोंकी एक महत्वपूर्ण बैठकमें विदेशमें मिशन भेजनेके विषय पर बहस की गई। यद्यपि वहां उपस्थित लोगोंने काम करनेकी कोई निश्चित जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं ली, लेकिन उन्होंने केरीके प्रस्तावोंको ध्यान से सुनकर 'जिज्ञासा' को छापनेकी सिफारिश की। छपाईके खर्चके लिये दस पौंड पहले ही एक मित्रने दिये थे, इसलिये अगले साल वह छपकर प्रकाशित हुई।

'जिज्ञासा'के प्रकाशनने मिशनके विषयमें लोगोंकी दिलचस्पी बढ़ानेका बड़ा काम किया, जिससे केरीका स्वप्न जल्दी पूरा होने वाला था। अगले साल मई महीनेमें नटिंघममें बपतिस्त पादरियोंका

सम्मेलन हुआ, जिसमें विलियम केरीको उपदेश देनेका काम मिला। इस समयके लिये उसने यशायाह(५४ २,३)के इस वाक्यको उपदेशके लिये चुना—"अपने तम्बूके स्थानको बढ़ा, और उन्हें तुम्हारे निवासके पर्दों कोतानने दे, छोड़ो नहीं, अपनी रस्सियों को लम्बी होने दो और अपने खूंटों को मजबूत करो, क्योंकि तुम दाहिने और बांयें हाथ फैलाओगे और तुम्हारे बीच अपने लोगों के लिये उत्तराधिकारी होंगे, और टूटे नगरों को बसायेंगे।" उसका यह व्याख्यान बड़ा ही सजीव और प्रभावशाली था, जिसका श्रोताओंके ऊपर बड़ा ही अद्भुत प्रभाव पड़ा। यद्यपि कुछके मनमें अब भी सन्देह था, तो भी एक प्रस्ताव पास किया गया 'काफिरों में बाइबलके प्रचार के लिये सभा स्थापित करनेके लिये केटरिंग में होनेवाली अगली बैठकमें एक योजना तैयार की जाये।'

छः महीने बाद २ अक्तूबर १७९२ ई०को सम्मेलनकी फिरबैठक हुई। उस दिनकी सार्वजनिक प्रार्थना जब समाप्त हुई, केटरिंगनके बपतिस्त मन्दिरके एकमेम्बरके बैठकखानेमें एक स्मरणीय बैठकहुई, जिसमें शाम को मिडलैंडके १२ उपदेशक एकत्रित हुये। इस बैठकमें गम्भीरता से विचार करके उन्होंने प्रतिज्ञा की "कम से कम काफिर जगत् के किसी जगहमें बाइबलके पहुँचानेकी कोशिश जरूर करना है।" यहीं उपस्थित लोगों से १३ पौंड २ शिलिंग ६ पेंस का चंदा जमा कर बपतिस्त मिशनरी सोसायटी की स्थापना की। इतना ही नहीं, सोसायटीके प्रारम्भ होते ही विलियम केरी—जिसने कोई चंदा नहीं दिया था—अपनेको प्रदान करते हुये बतलाया, कि मैं सोसाइटीके प्रथम मिशनरीके तौर पर दुनियांके किसी भाग में जाने को तैयार हूँ।

बपतिस्त मिशनरी सोसायटीने अपने कार्यके आरम्भके लिये भारत कोअपना क्षेत्र चुना। जिस समय केटरिंगमें बैठक हो रही थी, उसी समय टामस नामक एक जहाजी सर्जन इंगलैंड लौटा था। उसने भारत में रहते देशियोंमें ईसाई धर्मका उपदेश करना शुरू किया था, और इस

आशासे देश लौटा था, कि वहाँकी धार्मिक जनतासे सहायता प्राप्त कर अपने अवशिष्ट जीवनको उस देशमें मिश्नरीके काममें बिताये। उसे कैरीकी योजनाका कोई पता नहीं था। जब १७६२ ई० के अन्तमें उसे बपतिस्त मिश्नरी सोसायटीकी स्थापनाका पता लगा, तो उसने उसकी कमेटीसे लिखा-पढ़ी करके अपने मिशनको स्थापित करनेका ख्याल छोड़ उसमें सम्मिलित होनेकी इच्छा प्रकट की। टामसका प्रस्ताव ठीक समय पर आया। जनवरी १७६३ ई० में उसपर विचार किया गया। टामसने भारतमें किये अपने काम के बारेमें सोसायटीको बतलाया, और यह भी कि उस देशमें धर्मकी कितनी जबरदस्त आवश्यकता है। इसपर विचार कर सोसायटीने निर्णय किया कि विलियम कैरी अपने साथ टामस को लिये जल्दी से जल्दी बंगालके लिये रवाना हो जाये।

धनकी कमी तो थी ही, इसके अलावा भी उनके रास्तेमें अनेक बाधायें उठीं। उनके ठीक हो जानेपर एक और कठिनाई पैदा हुई। उन दिनों, जैसा कि हमें मालूम है, ईस्ट इंडिया कम्पनीको बहुत भारी अधिकार प्राप्त थे। पता था, कैरी और उसके साथीको भारत जानेकी अनुमति नहीं मिलेगी। ऐसा ही हुआ भी। उसपर उन्होंने कम्पनीकी अनुमतिके बिना ही यात्रा करनेका निश्चय किया, जिसमें भारतसे लौटाये जानेका भी डर था। जब उनका जहाज वाइट द्वीपके सामने पहुँचा, तो जहाजके कप्तानको मालूम हुआ, कि ये दोनों बिना अनुमतिके जा रहे हैं। उसने उन्हें जहाजसे उतरनेके लिये मजबूर किया। थोड़ी देर तो पता लगा, कि अब हमारी सारी आशायें खतम हो गईं। अपना लटा-पटा लेके जब यह छोटी सी टोली तटपर उतरी, तो उनकी मानसिक पीड़ाकी सीमा नहीं रही। लेकिन, जल्दी ही काली घटायें दूर हुईं। वह पोर्टसमथकी बन्दरगाहपर बड़े दुःखके साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। दो ही एक दिन बाद एक डेनिश जहाजके बंगाल जानेका पता लगा। यह जहाज १३ जून १७६३ ई० को वहांसे रवाना हुआ। इसीमें दोनों मिश्नरी अपने बीबी-बच्चोंके साथ सवार होकर भारतकी ओर चले।

यात्रामें पांच महीने लगे। अधिकांश समयको केरीने देशी भाषाओंके सीखनेमें लगाया। बंगालकी भूमि दिखाई पड़ी। जिस तरहके बर्तावकी आशा थी, वैसा कुछ न होकर बिना विरोध उन्हें कलकत्तामें उतरने दिया गया। वह इतने नगण्य से व्यक्ति थे, कि उनकी ओर किसीने ध्यान भी नहीं दिया। वह बहुत गरीब और साथ ही परदेशमें थे। उन्हें अपरिचित भाषावाले लोगोंमें काम करना था। इस स्थितिमें सबसे कठिन प्रश्न था जीविकाके किसी साधनको प्राप्त करना। उन्हें यह जाननेमें देर नहीं हुई, कि जो थोड़ा सा पैसा हमारे पास है, उससे हम कलकत्तामें नहीं रह सकते। थोड़े समयके लिये भविष्य अत्यन्त अन्धकाराच्छन्न दिखाई पड़ा। अन्तमें टामसको कलकत्तामें सर्जनके तौर पर प्रेक्टिस करनेके लिये प्रयत्न करनेको छोड़कर वहांसे ४० मील दूर देहट्टामें काम पानेकी आशासे केरी चला गया।

खुली नावमें केरी और उसके परिवारको यह कठिन यात्रा करनी पड़ी। जब वह देहट्टा पहुँचे, तो उनके पास सिर्फ एक दिनके खर्चके लिये पैसे रह गये थे। पर सहायता तुरन्त मिली। देहट्टामें आनेपर उन्होंने एक अंग्रेजका घर देखा। अपनी अवश्यकताओंको बतलानेपर उक्त अंग्रेजने उनका स्वागत करते हुये बड़ी कृपा दिखलाई, और तब तकके लिये उन्हें एक घर देना स्वीकार किया, जब तक कि दूसरे घरका प्रबन्ध न हो जाये। केरीने जल्दी ही अपने लिये एक छोटा-मोटा घर पड़ोसमें बना खेती करके परिवारकी जीविका चलानेका इरादा किया। लेकिन, अगले ही महीने उसे अपनी यह योजना बदलनी पड़ी। उसके मित्र टामसने एक अंग्रेज मिस्टर अडनीसे परिचय प्राप्त किया, जिसने उसे मालदाके नजदीक महीपालदिगीकी एक नील फेक्टरीके सुप्रिंटेंडेंटके तौरपर काम करनेके लिये बुलाया, और साथ ही उससे ६ मीलपर अवस्थित मदनबाटीके नीलगोदाममें केरीके लिये भी काम देनेको कहा। केरी इस नौकरीको और भी अधिक प्रसन्नतासे स्वीकार करनेके लिये तैयार था, क्योंकि इसके द्वारा उसके परिवारकी जीविकाका ही सवाल हल नहीं होता, बल्कि अपने नीचे बहुत से देशियोंसे काम लेते समय वह अपने मिशनके कामको भी आगे बढ़ा सकता था।

जून १७६४ ई० में कैरीने काम संभाला। इसी समय मदनबाटीमें बसनेके साथ उसका धर्मप्रचारका काम शुरू हुआ। उसने इंगलैण्डमें अपने मित्रोंको लिख दिया, कि मुझे बपतिस्त मिशनरी सोसायटीकी सहायताकी जरूरत नहीं होगी; मैं चाहता हूँ, अपने अत्यावश्यक खर्चको निकालकर बाकी सारी तनखाहको मिशनके काममें लगाऊँ। नील फैक्टरीमें उसका काम बहुत अधिक नहीं था, इसलिये उसके पास छुट्टीका काफी समय था, जिसे वह बंगला सीखनेमें बाकी समय पढ़ाने, उपदेश करने और बाइबलको बंगलामें अनुवाद करनेमें लगाता। कुछ समय बाद उसने बंगला बाइबल छापनेकी तैयारी की। मिस्टर अडनीने उसे एक प्रेस प्रदान किया, जिसे कैरीने फैक्टरीमें लगा लिया। देशी लोग बड़े अचरजके साथ इस प्रेसको देखते थे। वह इसे अंग्रेजोंका देवता समझते थे।

(यद्यपि युरोपमें इससे ४०० वर्ष पहले ही प्रेस का रवाज हो गया था, और इस समय तो वहां हजारों पुस्तकें टाइपसे प्रेसोंमें छपती थीं, लेकिन भारतके लोग उससे बिल्कुल अनभिज्ञ थे।)

कैरीका जिला काफी बड़ा था। डा० कलरासके अनुसार उसमें समतल भूमिवाले जंगलके टुकड़ोंके भीतर दो सौके करीब गांव थे। कैरी लगातार इन गांवोंमें जाया करता। कभी-कभी वह देशके भीतर सौ मील तक चला जाता, जहां कोई युरोपियन नहीं गया था, न इससे पहले किसीने किसी मुक्तिके दूतको देखा था। वह अपनी यात्रायें नदी द्वारा किया करता। उसके पास दो छोटी-छोटी नौकायें थीं, एकमें वह सोता था। और दूसरेमें भोजन बनाता था। नदीके किनारे उतरकर वह एक गांवसे दूसरे गांव पैदल जाता। लोगोंमें बोलनेके लिये मिलने अवसरके अनुसार वह एक दिनमें दस से बीस मील तकका चक्कर लगाता। भगवानके दिन उसे पांच सौ आदमियोंका जमघट मिला, जिनमेंसे कुछको धर्ममें दीक्षित करनेकी आशासे उसे कभी बहुत हर्ष होता, लेकिन अक्सर निराश भी होना पड़ता।

इस प्रकार पांच साल बीते। इस समय भारतमें ईसाई मिशनने अपने शैशव के दिन बिताये। अब परिवर्तनकी अवश्यकता पड़ी। नीलकी कोठी सफल नहीं साबित हुई, और केरी मदनबाटी छोड़नेके लिये मजबूर हुआ। उसने वहाँसे दस मीलपर उसी तरहकी अपनी एक नई कोठी कायम की, जिसमें वह असफल रहा, और भविष्य फिर अन्धकारमय दीखने लगा।

इसी समय इंगलैण्डसे कुछ नये मिशनरी आये जिनमें विलियम वार्ड और जोशुवा मार्शमैन कई सालोंसे केरीके सहकारी रह चुके थे। वह मदनबाटी मिशनमें शामिल होना चाहते थे। लेकिन, जैसे ही उनका जहाज कलकत्ता पहुँचा, उन्हें उतरनेसे मना कर दिया गया। इसपर हुगली नदीके तटपर अवस्थित डेनमार्कवालोंकी सिरामपुरकी बस्तीमें वह शरण लेनेके लिये मजबूर हुये। सिरामपुर कलकत्तासे १४ मीलपर है। डेन गवर्नरने उनका बड़ा अच्छा स्वागत किया। कम्पनीके इलाकेमें मिशनकी स्थापना करनेके विचार को छोड़कर अब केरीने वार्ड और मार्शमैनके साथ मिलकर काम करनेका निश्चय किया। ऐसा ही किया, और अबसे मिशनका सदर-मुकाम सिरामपुर हो गया।

रहनेके लिये एक उपयुक्त स्थान पाकर मिशनरियोंने तुरन्त अपना काम शुरू कर दिया। अपने और अपने परिवारके खर्च चलानेके लिये उन्होंने पहला कदम यह उठाया, कि दो बोर्डिंग स्कूल स्थापित किये, जिनका संचालन-भार मार्शमैन और उसकी पत्नीने लिया। बहुत समय नहीं बीता, कि इन दोनों बोर्डिंग स्कूलोंसे उन्हें २०० से ३०० पौंड वार्षिक की आमदनी होने लगी। जीविकाकी ओरसे निश्चिन्त होकर अब उन्होंने देशियों में प्रचार करना शुरू किया। देशी भाषा सीखनेका काम भी उन्होंने जारी किया। साथ-ही मदनबाटीमें आरम्भ किये केरीके बंगला बाइबलकी छपाईके कामको भी फिरसे चालू किया। वार्ड इंगलैण्डमें प्रेसका मुद्रक रह चुका था, उसे यह काम दिया गया। काम इतनी तेजीसे बढ़ा, कि तीन महीनेके भीतर नवीन सुसमाचार (इंजील) के पहले फार्म छपकर केरीके हाथमें थे। यह भी बात कम दिलचस्प नहीं है, कि अपने छापेखानेमें

इन्हीं मिश्नरियोंने कुछ सालों बाद पहला बाष्प इंजन लगाया, जो भारतमें सबसे पहला था, और जो शायद अब भी सिरामपुरमें मौजूद है।

अपने विशाल काममें उपस्थित होनेवाली बहुत सी कठिनाइयोंको एकके बाद एक दूर करते वह अपने कामको आगे बढ़ाते गये। सिरामपुरमें आनेके एक वर्ष पूरा होनेसे पहले ही उन्होंने सारे नवीन सुसमाचार छाप देनेमें सफलता पाई। केरीने अपनी डायरीमें लिखा था—कलका दिन एक बड़ी खुशीका दिन था। मुझे यह जान आनन्द हुआ, कि मैंने पहले हिन्दूके बपतिस्मा द्वारा गंगाको अपवित्र किया।" इसके बाद और भी ईसाई बने।

सिरामपुरमें बारह महीना रहनेके बाद केरीने देखा, कि मेरा देशी भाषाओंका अध्ययन और एक अप्रत्याशित दिशासे विशेष ध्यान खींचनेका कारण बना। गवर्नर-जनरल लार्ड वेलजलीने कलकत्तामें हाल हीमें फोर्ट विलियम कालेज स्थापित किया था, जिसमें कम्पनी की सेवाके लिये छोटे सैनिक अफसर शिक्षित किये जानेवाले थे। वहाँ बंगलाके एक योग्य प्रोफेसर की आवश्यकता थी। पूर्वी भाषाओंके ज्ञाताके तौरपर केरीकी योग्यता अब तक प्रसिद्ध हो चुकी थी। कम्पनीके कुछ अफसरोंने विरोध किया, तो भी इस पदपर केरीको स्वीकार किया गया। वह बंगला, पीछे मराठी और फिर संस्कृतकाअध्यापक नियुक्त किया गया। वेतन ६०० पौंड वार्षिक था, जो पीछे बढ़ाकर १५०० कर दिया गया।

फोर्ट विलियमके साथ सम्बन्ध तथा बढ़ी हुई आमदनी—जिसे वह मिशनके फण्डमें दे देता था—अब मिशनके कामके आगे बढ़ानेमें सहायक हुई। बाइबलके अनुवादका काम काफी आगे बढ़ा। कालेजमें काम करने-वाले विद्वानों और दूसरे विद्वानोंने भी सहायता दी। बाइबलको सिर्फ बंगलामें प्रकाशित करनेसे संतुष्ट न हो केरी और उसके सहायकोंने भारतकी दूसरी भाषाओंमें भी उसके अनुवाद प्रकाशित करनेका निश्चय किया। कम्पनीके कितने ही अफसर इनके विरुद्ध थे। इंगलैण्डमें भी कुछ लोग इसका मजाक उड़ाते थे। कदम—कदमपर सारी कठिनाइयोंके होनेके बाद भी काम आगे बढ़ा। तीनों मिश्नरी, जिनके काममें अब और भी

कितने ही शामिल हो गये थे, अपने महान् उद्देश्यसे जरा भी विचलित नहीं हुये। दस वर्षके समाप्त होते-होते उनके कामोंका परिणाम संक्षेपमें था—"उन्होंने बंगालके कितने ही भागों, पटना और बर्मा तथा भूटान और उड़ीसाके सीमान्तोंपर मिशनके आवास स्थापित किये। पहाड़पर बसी प्रत्येक नगरीमें उन्होंने अन्धकार-राज्यमें भगवानके किले कायम किये। गिर्जेके सदस्योंकी संख्या दोसौसे अधिक हो गई। उनके लिये कलकत्तामें हजारों पौंडकी लागतसे एक पूजा-स्थान बनाया गया। बाइबल पूर्णतः या अंशतः छ भाषाओंमें अनुवादित हो चुकी, और छ औरमें अनुवादित हो रही थी। बाइबलके प्रचारमें सहायता देनेके लिये अनेक पुस्तकें और पुस्तिकायें प्रेससे छापकर निकाली गईं। ये सब सुफल आंखोंसे देखे जा सकते थे, जिससे कहीं अधिक महत्वके वह सुपरिणाम थे, जो अदृश्य और आध्यात्मिक थे, जिनको गिनकर नहीं बतलाया जा सकता। १८१२ और १८१३ के साल सिरामपुर मिशनके लिये बड़ा महत्व रखते थे। पहिला भारी संकट के साथ आरम्भ हुआ, और दूसरा विजयके साथ खतम हुआ। मार्च १८१२ ई० में छापेखानेमें जबर्दस्त आग लग गई, जिसमें प्रेस छोड़कर सभी चीजें नष्ट हो गईं—१४ भारतीय भाषाओंके टाइप, एक हजार रीमसे अधिक कागज, बहुत सी बाइबलकी प्रतियाँ और अनेक मूल्यवान हस्तलेख आगकी भेंट हुये। मिशनके कामको जबर्दस्त धक्का लगा। केरी और उसके साथियोंने बड़ी मजबूतीके साथ इस सबको सहा। अब उनके लिये चारों तरफसे सहानुभूति तैयार थी। सारे घाटेको पूरा कर दिया गया, और वह फिर दुगने उत्साहसे अपने काममें लग गये।

दूसरी एक घटना भी बहुत ही महत्वपूर्ण थी। १८१२ ई० में इंगलैण्डसे हाल हीमें आये दो मिश्नरी सिरामपुरमें केरीके साथ काम करने लगे। सरकारने एकाएक कलकत्ता बुलाया, और वहां जानेपर उन्हें तुरन्त देश छोड़ जानेका हुक्म दिया। इस तरहके मनमाने बर्ताव—वह भारतमें और अधिक मिश्नरियोंके न आनेदेनेका निश्चय कर चुके थे—के विरुद्ध जबर्दस्त आवाज उठी। अपने देशवासियोंके यहां आनेमें रोक ईस्ट

इ ंडिया कम्पनीको डालनेका जो इतना बड़ा अधिकार था, उसे न बर्दाश्त करनेका निश्चय हुआ। अगले साल कम्पनीके चार्टर अधिकार-पत्र के फिरसे नवीकरणका सवाल ब्रिटिश पार्लियामेन्टके सामने आया। यह इस प्रश्नको उठानेका सबसे अच्छा अवसर था। पार्लियामेंट में इसपर जबर्दस्त बहस हुई। अन्तमें कम्पनीके अधिकार-पत्रमें ऐसी बातोंको हटा दिया गया, जिससे वह अब तक बेजा दखल देती थी। इस प्रकार "भारतका दरबाजा बाइबलके लिये खोल दिया गया।"

—१८०७ ई० में सिरामपुर अब अंग्रेजोंके हाथमें आ गया था, जो १८१५ ई० तक रहा। १८०१ ई० में जब डेनमार्कसे लड़ाई छिड़ गई थी, तो उस समय १४ महीनेके लिये अंग्रेजोंने उसको दखल कर लिया था। अन्तमें १८४५ ई० में सिरामपुरको अंग्रेजोंने डेनमार्कसे खरीद लिया।

अपने बाकी जीवनमें विलियम केरीने बहुत से काम किये, जिनमें १५.००० पौंड (डेढ़ लाख रुपये) के खर्चसे देशी ईसाइयोंकी शिक्षाके लिये सिरामपुर कालेजकी स्थापना भी एक थी। शिक्षा द्वारा अब देशी ईसाई मिश्नरी बननेकी योग्यता प्राप्त कर सकते थे। केरीने अनेक देशी गिर्जे और स्कूल कायम किये, किसानोंकी सामाजिक स्थितिके सुधारनेकी कोशिश की। उसने मराठी, संस्कृत और पंजाबीके व्याकरण तैयार किये, तथा बंगला और मराठीके कोष भी छापे। ७१ वर्षकी उमरमें १८३४ ई० में जब वह मरा, तो वह "वीरोंके वीर" के रूपमें भारतमें ईसाई धर्मकी प्रथम विजयका मुख्य साधन होकर ही। उस समय तक सिरामपुर मिशन—गृह से भिन्न-भिन्न ४० भाषाओं और बोलियोंमें दो लाखके करीब बाइबल—पूरी या अधूरी छापी जा चुकी थी।

## २—हेनरी मार्टिन (१७८१-१८१२ ई०)

कितनी ही बार ऐसा होता है, कि बचपनकी दोस्ती आदमीके सारे जीवनको प्रभावित करती है। यह बात हेनरी मार्टिनके साथ हुई, जिसका सारा जीवन अपने एक सहपाठीकी मित्रतासे प्रभावित है, जो मित्रता प्रथम स्कूलमें कायम हुई थी।

हेनरी मार्टिनका पिता मूलतः एक खानका खनक था। अपने परिश्रम और दृढ़ आचारके कारण वह बढ़ते हुये ट्रूरोंके एक व्यापारीकी कोठीमें मुख्य-मुनीम (चीफ क्लर्क) हो गया। इस प्रकार वह ऐसी स्थितिमें था, कि अपने बच्चोंको अच्छी शिक्षा दे सके। हेनरी १८ फर्वरी (१७८१ ई०) में पैदा हुआ था। अपने भाई-बहनोंकी तरह वह भी बहुत दुबला पतला बच्चा था। सातवें और आठवें वर्षके बीच उसे ट्रूरो ग्रामर स्कूलमें डा० कारड्यूके अधीन पढ़नेके लिये बैठा दिया गया। अपने अध्यापकको वह होनहार लड़का नहीं मालूम हुआ। वह लजालु तथा बड़े ही संकोची स्वभावका था। न उसकी दिलचस्पी खेलके मैदानमें दिखाई पड़ती थी, और न पढ़नेमें ही।

ऐसे लड़केके लिये किसी बड़े स्कूलमें पढ़ना आनन्ददायक नहीं हो सकता और न "छोटे हेरी मार्टिन" ने उसे पसन्द किया। लड़कोंका संग छोड़ कर अलग-अलग रहनेवाले इस बच्चेको सयाने और अधिक मजबूत लड़के अब चिढ़ाने और धमकानेमें आनन्द लेने लगे। थोड़े समय तक मालूम हुआ, कि स्कूली जीवन उसके लिये असह्य हो जायेगा। सौभाग्यसे उसके साथियोंमें उससे बड़ा एक लड़का (केय) था। स्कूलके कमरेमें पाठ लेनेके लिये उसे उसके पास बैठना पड़ता था। उस बड़े लड़केका इसके प्रति असाधारण स्नेह हो गया। उस समयसे "छोटे हेरी" ने उस लड़केको अपना जबर्दस्त सहायक ही नहीं, बल्कि कृपालु सलाहकार पाया। इसी मित्रके प्रभावसे ही मार्टिन अपने जीवनमें कुछ कर सका, जिसके लिये वह

उसका कृतज्ञ था। दूसरे लड़के जब उसपर अत्याचार करना चाहते, तो उसकी रक्षाके लिये यह लड़का पहुँच जाता, और विरोधियोंसे लड़ पड़ता। अध्ययनमें वही इसको प्रोत्साहित करता। इसका परिणाम यह हुआ, कि १४-१५ वर्षमें पहुँचनेपर उसने पढ़नेमें इतनी प्रगति कर ली कि उसके बापने आक्सफोर्डके कोर्पसक्रिस्टी कालेजकी छात्रवृत्तिके उम्मीदवारके तौरपर उसे पेश करना चाहा। वह इसमें सफल नहीं हुआ, यद्यपि उसके कुछ परीक्षकोंने कहा, कि उसे चुना जाना चाहिये। वह फिर अपने पहलेके स्कूलमें पढ़ने लगा। दो सालकी पढ़ाईके बाद अब उसने केम्ब्रिज युनिवर्सिटीमें जानेका ख्याल किया, जहां उसका पुराना रक्षक और पथ-प्रदर्शक तरुण पहले ही पहुँचकर ख्याति प्राप्त कर रहा था। अक्तूबर १७९७ ई० में वहांके सेंट जान कालेजमें भरती हो उसने पढ़ना शुरू किया।

दोनों तरुणोंकी दोस्ती फिरसे नई हो गई। मित्रने अब फिर उसको रास्ता बतलाना शुरू किया। मार्टिनने अपने एक यात्रा-विवरणमें लिखा है—"मेरी पहली छमाहीमें अपने नये परिचितों द्वारा ( तंगड़ )मैं काफी बेकार रहा, लेकिन केयकी स्नेहपूर्ण सावधानीके कारण बच गया।" मार्टिन अब अध्ययनमें आगे बढ़ा और परीक्षाओंमें सफलतायें प्राप्त कीं, जिससे पता लगता है कि उसने अपने समयका बहुत अच्छा उपयोग किया। अपने स्कूलके साथियोंकी क्रूरता और अत्याचारके कारण जो चिड़चिड़ापन उसमें बढ़ गया था, वह अब भी मौजूद था, और कभी कभी वह अपने ऊपर काबू नहीं पाता था। एक दिन यह क्रोध एक मित्रके लिये खतरनाक साबित होने जा रहा था, जिसने कि उसे चिढ़ा दिया था। मार्टिनने एक चाकू लेकर उसके ऊपर बड़े जोरसे फेंका। सौभाग्यसे वह अपने लक्ष्यपर नहीं पहुँचा और दीवारको फाड़कर रह गया।

इस घटनासे जो धक्का लगा, उसे मार्टिन कभी नहीं भूल सका। सचमुच इसने उसके जीवनमें दिशा-परिवर्तनका काम किया। "अब तक उसका सारा ध्यान अपने और सांसारिक बातोंके ही ऊपर केंद्रित था।" लेकिन, अब अपने मित्रके पथ-प्रदर्शनमें उसमें बिना जाने धीरे-धीरे भारी परिवर्तन

हुआ। वह सोचने लगा, युनिवर्सिटीकी डिग्री ही सब कुछ नहीं है, धर्मका भी मेरे ऊपर कुछ दावा है। अब उसने उन उत्तम वस्तुओंकी ओर ध्यान देना शुरू किया, जो शायद ही कभी उसके ध्यानमें आती थी। १८०० ई० के आरम्भमें एक बड़ी शोकजनक घटना घटी, जिसने मार्टिनकी दिशाको बदल दिया। मार्टिन अपके पितासे बहुत प्रेम करता था। वह इसी समय मर गया। इसमें सन्देह नहीं, कि इसी शोकजनक घटनापर विचार करनेसे हेनरी मार्टिन एक नया आदमी हो गया। इसी समय केम्ब्रिजके ट्रिनिटी कालेजके अध्यक्ष पादरी चार्लस सिमियोनके प्रभावमें आया। इस भले पादरीकी शिक्षाने उसपर जो प्रभाव डाला, उसके बारेमें मार्टिनने लिखा है—"मैंने क्रमशः दिव्य वस्तुओंका अधिक ज्ञान प्राप्त किया।" इसके कारण उसने पादरी बननेके लिये अपने जीवनको अर्पित कर दिया।

इस बीच वह इतनी मेहनतके साथ पढ़ रहा था, कि कालेजमें कहा जाता था—"यह ऐसा आदमी है, जिसने एक घंटा भी बरबाद नहीं होने दिया।" उसने युनिवर्सिटी-जीवनकी सर्वोच्च आकांक्षाको प्राप्त किया, और जनवरी १८०१ ई० में सीनियर रैंगलर (ज्येष्ठ प्रतिष्ठित स्नातक) का प्रमाणपत्र प्राप्त किया। लेकिन, उसका दिमाग अब ऐहलौकिक चीजोंको उतना महत्व नहीं देता था, इसलिये उससे उसे उतनी खुशी नहीं हुई, जैसा कि उसने खुद कहा है—"मैंने अपनी सर्वोच्च आकांक्षायें पूर्ण कर लीं, लेकिन यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि मैंने एक छाया भर पकड़ पाई है।"

१८०२ ई० में हेनरी मार्टिनको सेंट जान कालेजका फेलो (प्रतिष्ठित सदस्य) चुना गया। उसने अब पुरोहित बननेका निश्चय कर लिया। इसलिये अगले सालके आरंभिक समयमें उसने पुरोहित-दीक्षा पानेकी तैयारी की। उसे अब उपदेश देनेका ही सम्मान नहीं, बल्कि मिस्टर सिमियोनकी घनिष्ट मित्रता पानेका सौभाग्य मिला। १८०३ ई० के अन्तमें, इंगलिश-चर्चके डेकोनकी दीक्षा पाजानेके तुरन्त ही बाद, जब उसने

दीक्षाके लिये ले जानेवाले भद्रपुरुषकी टिप्पणी सुनीतो अपने जीवनका सबसे बड़ा संकल्प किया—मैं मिशनरी (धर्मप्रचारक) बनूंगा।" उनके कार्योंमें मार्टिन सहायता करता था। इसी समय सिमियोनने उससे कहा विलियम केरीने भारतमें अकेले धर्म-प्रचारके लिये जो काम किया है, उससे जबर्दस्त लाभ हुआ है। मार्टिनका ध्यान तुरन्त उधर खिंचा, उसके दिलमें जोश भर आया। तबसे इस कामके भारी महत्वका ख्याल उसके दिलमें बैठ गया। उसके बाद ही डेविड ब्रेनर्डकी जीवनी हाथ लगी, जो बड़े आत्मत्यागके साथ उत्तरी अमेरिकामें इन दिनों धर्म-प्रचार करते ३२ सालकी उमरमें मर गया था। कहा जाता है—"ब्रेनर्डकी जीवनीसे वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। उस असाधारण आदमीके उदाहरणसे उसके हृदयमें दिव्य भावनायें भर गईं। बहुत ध्यान और तल्लीन हो प्रार्थना करनेके बाद उसने इस उदाहरणके अनुकरण करनेका निश्चय किया।" इस प्रकार उसने अपने भावी जीवनके कामको चुना।

पहले उसे ख्याल आया, कि हालमें स्थापित "अफ्रीका और पूर्वके मिशनकी सोसायटी" जो पीछे "चर्च मिशनरी सोसायटी" के नामसे प्रसिद्ध हुई—में शामिल हो जाये। उसने सोसायटीको अपनी सेवायें अर्पित कीं, लेकिन इसके थोड़े ही दिनों बाद उसे एक दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा। बापने जो थोड़ी सी सम्पत्ति छोड़ी थी, वह सब उसके हाथसे जाती रही। यह हानि इस कारण और भी भारी थी, क्योंकि इसमें उसकी छोटी बहन भी शामिल थी। वह सोचने लगा; कि अपनी बहिनको इस स्थितिमें छोड़ना मेरे लिये उचित नहीं है। इंगलैण्डमें रहते मैं उसे बचा सकता हूँ। इस तरह जब वह दुविधामें पड़ा था, उसी समय अपने महान् उद्देश्यकी पूर्ति लिये एक अप्रत्याशित सहायता आ पहुँची। उसके मित्र जानते थे, कि विदेश जानेके लिये वह कितना उतारू है। उन्होंने उचित समझा, उसे ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा स्थापित चेप्लिनका एक पद मिल जाये। यद्यपि कम्पनी अपने शासित क्षेत्रमें मिशनरियोंका काम पसन्द नहीं करती थी, लेकिन अपने नौकरों की धार्मिक देख-रेखके लिये उन्हें चेप्लेनों

(पादरियों) की आवश्यकता थी। मित्रों ने समझा, कि इस प्रकार पूर्वमें वह धार्मिक कार्य करनेमें विशेष सुविधा प्राप्त करेगा। मार्टिनको अपनी कठिनाइयों को दूर करनेके लिये यह योजना बहुत पसंद आई। उसने कम्पनीके प्रभावशाली डायरेक्टरोंकी सहायता प्राप्त की, और थोड़े समय बाद वह पुरोहितके तौरपर दीक्षित हो गया। हेनरी मार्टिनको यह सुसमाचार मिला, कि मुझे चेपलिनका पद मिल गया है, और अगले साल मुझे भारतके लिये प्रस्थान करना है।

हिन्दुस्तानी सीखकर अपनेको नये कार्यक्षेत्रके योग्य बनानेके ख्यालसे वह लन्दनमें रहने लगा। जुलाई १८०५ ई० में "दि युनियन" जहाज द्वारा वह पोर्टस्मथसे रवाना हुआ। उससमयकेकायदेके अनुसार जहाजोंका एक बड़ा बेड़ा साथ-साथ चल रहा था। एक महीने बाद जहाज फालमौथमें तीन सप्ताहके लिये रुका। इसके बाद हेनरी मार्टिनने सदाके लिये इंगलैण्डको छोड़ दिया।

भारतमें कामके शुरू करनेके लिये वह अधीर धर्मदूतके तौरपर वहां बड़ी वीरताके साथ काम करनेके लिये उत्सुक था, पर जन्मभूमिसे विदाई लेते समय उसके मनको कुछ रंज तो जरूर हुआ था। इसके और भी कारण थे। स्कूलमें पढ़ते वक्त उसकी तन्दुरुस्ती जैसी कमजोर थी, वैसी ही वह अब भी थी। यद्यपि उसने अपने पुराने चिड़चिड़ेपन और क्रोधको बहुत समय पहले से अपने बसमें कर लिया था, लेकिन तो भी जल्दी उत्तेजित हो जाना उसकी प्रकृतिमें था। अपने मित्रों और संबन्धियोंके लिये उसके दिलमें इतना स्नेह था, कि उन्हें छोड़ते वक्त वह अपनेको संभाल नहीं सकता था। जिससमय वहप्रस्थानके लिये निश्चय करके लन्दनमें रहरहा था,उसी समय उसके स्वभावकी भावुकता बार-बार उसके सामने आती रही। एक दिन उसका मन प्रसन्न रहता, दूसरे दिन खिन्न। मामूली सी भी बातमें वह एकाएक आंसू टपकाने लगता। वह एक काफिर देशमें बाइबल की शिक्षा के प्रचारके लिये, मनुष्यके जीवन पर दिव्य दयासे युक्त हो जा रहा था, लेकिन अब भी उसके दिल को कोई रस्सी बाँधे हुये थी, जो उसे देशमें

पकड़ रखना चाहती थी। उसने अपनी जीवन-यात्रामें लिखा था—
"आज अपने प्रस्थान के ख्यालपर मैं आंसू बहाता रहा। मैं उस तरङ्गित निर्घोषयुक्त समुद्रपर विचार कर रहा था, जो कि जल्दी ही मेरे और मेरे प्रिय भूभागके बीचमें पड़ जायगा।" पोर्ट् स्मौथ चलनेका दिन जितना ही नजदीक आरहा था, उतना ही उसके मनका अवसाद बढ़ता गया। उसके मनमें इस समय जो शोकपूर्ण भाव पैदा हुए, वह उसे जीवन भर याद रहे।

कार्नवालमें मरेजियोनमें ग्रेनफेलस नामक एक परिवार रहता था, जिससे मार्टिनका कुछ समयसे परिचय हो गया था, और कुमारी लिडिया ग्रेनफेल्से उसकी घनिष्टता हो गई। उसे जब पता लगा कि मेरा जहाज फालमौथमें कुछ सप्ताह रुकेगा, तो वह ऐसे प्रिय व्यक्ति से मिलने का लोभ संवरण नहीं कर सका। बीस मील दूर मरेजियोन वह गया; और उसने कितने ही दिन मित्रों की संगतिमें बिताए, लेकिन वे दिन हर्ष और शोक मिश्रित दिन थे। वह कुमारी ग्रेनफेलको प्यार करता था, लेकिन उसकी ओरसे वैसे भावका कोई पता नहीं लगा। सर जान केय ने लिखा है—"लिडियाके मनमें एक दूसरे पुरुषके प्रति अब भी स्नेह था, जो उसे छोड़ गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि अपनी अन्तिम भेंटके समय हैनरी मार्टिन बगैर सगाईकी बातके वहां से चला।" उसकी और चिंताओंके साथ साथ उस स्त्री का प्रत्याख्यान भी शामिल हो गया, जिसको उसने अपना दिल दिया था। जब वह जहाज पर लौटा तो उसके मनके अवसादकीसीमा नहीं थी।

लम्बे सफर में उसने जहाजके ऊपर कितनी ही बार उपदेश किये, जिसका अधिकांश यात्री मजाक उड़ाते थे। अन्तमें मई १८०६ ई० को मार्टिन कलकत्ता पहुँचा। कुछ समयके लिए वह एक सूने पड़े मन्दिरमें ठहरा, जो सिरामपुरसे नातिदूर अलदीनमें था, और जिसे उसके रहने लायक बना दिया गया था। उसका वेतन एक हजार पौंड वार्षिक था। अब वह सैनिक अधिकारियों के अधीन था, उसके ऊपर बहुत से निर्बन्ध

थे। इससे उसे बुरा लगना स्वाभाविक था, पर बाहर से वैसा मालूम नहीं देता था। वह अलदीनमें रहते हुए बराबर उस दिनकी अधीरताके साथ प्रतीक्षा कर रहा था, जब कि वह ऐसे स्थानोंमें जाकर मूर्ति-पूजक काफिरों को बाइबल का उपदेश करेगा, जहाँ अभी तक वह सुना नहीं गया था। वह कितने ही महीनों तक वहीं रहा। इस बीच वह कलकत्ताके न्यू चर्चमें उपदेश करने जाया करता, और एक ब्राह्मणकी सहायतासे बड़ी तत्परताके साथ हिन्दुस्तानी सीखता रहा।

जिस वक्त वह अलदीनमें था, उसी समय "उसने काफिरोंकी मूर्ति पूजाकी क्रूर रीतियोंको देखा। इन दृश्योंको देखकर उसके दिलमें उन लोगोंके प्रति बड़ी दया हो आई, जो कि ज्ञानके अभावमें सर्वनाशको प्राप्त हो रहे हैं।" सिरामपुरसे नातिदूर एक घने जंगलमें उसने एक दिन ढोल और शंखकी हृदयद्रावक आवाज सुनी। यह गरीब देशियोंका भूतोंकी पूजाके लिये आवाहन था। वहाँ एक मन्दिरके भीतर चारों तरफ जलते दीपकके बीचमें एक काली मूर्ति रखी हुई थी। मार्टिनने देखा, कि हमारे मानवबन्धु सिरको धरतीपर रखते उसके सामने दण्डवत् कर रहे हैं। इस दृश्यको देखकर दयाके मारे उसका हृदय कांप उठा। उसने इसके बारे में कहा है; "मैं कांपने लगा, मानों नर्कके पास खड़ा हूं।"

अलदीनमें छ महीना रहनेके बाद मार्टिनको यह सुनकर बड़ी खुशी हुई, कि मेरी नियुक्ति एक महत्वपूर्ण सैनिक छावनी दानापुरमें हुई है। अक्टूबर १८०६ ई० में तीन अंग्रेज मित्रोंके साथ वह वहांके लिये रवाना हुआ। यात्रा लम्बी थी। वह एक बजरेपर रवाना हुये, जो उस समय सब तरहके आरामके साथ यात्रा करनेके लिये बनाया जाता था। वह गंगासे जा रहे थे। मौसिम बहुत खराब था। उसके मित्र भी दूसरे ही दिन साथ छोड़कर उतर गये, और अब वह अकेला ही देशियोंके साथ यात्रा करनेके लिये मजबूर था।

इस एकांतयात्रामें भी तरुण मिशनरीने अपनेको काममें लगाये रक्खा। वह बड़ी तत्परताके साथ हिन्दुस्तानी, संस्कृत और दूसरी देशी

भाषायें पढ़ता रहा। उसने महावरोंको अनुवाद किये। जहां भी थोड़े समयके लिये बजरा ठहरता, वह उतरकर पास पड़ोसके गांवोंके लोगोंसे बातचीत करता. जिसमें जब तब उन्हें यह भी बतलानेकी कोशिश करता कि तुम झूठे धर्मपर चल रहे हो। एक बार जब देशियोंसे उसने इस तरह की बात कही, तो उन्होंने कहा—"हम इस धर्मको इसीलिये मानते हैं, कि दूसरे भी वैसा करते हैं। अगर हम गलती पर हैं, तो सारा बंगाल गलतीपर है।" "मुझे उन लोगोंकी आत्मा के प्रति बड़ी दया हो आई। मेरी इच्छा हुई, कि इन सीधे सादे गरीब लोगोंके सामने पवित्र बाइबिल के उपदेशकी घोषणा करूं। मैंने सोचा, कि जब मेरा मुंह इनके सामने खुलने लायक हो जायेगा, तो मैं रात-दिन इन्हें उपदेश दूँगा। मैं अनुभव करता हूँ, कि वह मेरे शरीर के भाई हैं, और उसी तलपर हैं, जिसपर कि मैं हूँ।"

इस प्रकार छ सप्ताह बीते, जब कि कलकत्तासे चलकर मार्टिन दानापुर पहुँचा। यहां अब मार्टिनका प्रचार-कार्य आरम्भ हुआ। उसके सामने तीन लक्ष्य थे—हिन्दुस्तानी पर इतना अधिकार प्राप्त करना, कि उसमें उपदेश दे सके; देशी स्कूल स्थापित करना और बांटनेके लिये बाइबल और धार्मिक पुस्तिकाओंके अनुवाद तैयार करना। उसके रास्ते में भारी कठिनाइयाँ थीं। यद्यपि उसने बहुत मेहनतके साथ पढ़ाई की थी, और भाषा सीखनेके लिये उसके पास मुन्शी भी था लेकिन उसे बहुत सी भिन्न-भिन्न बोलियों पर अधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता थी, क्योंकि एक जिलेकी बोली दूसरे जिलेवालोंकी समझमें नहीं आती थी। वह हतोत्साह नहीं हुआ, यद्यपि थोड़े दिनोंके लिये उसके मनमें अवसाद हुआ। कितनी तत्परताके साथ वह अपने काममें लगा, वह उसके एक दिन के बारेमें लिखी हुई निम्न पंक्तियोंसे मालूम होगा—

"प्रातः···संस्कृतमें लगा रहा। अपराह्णमें बिहारकी बोलीमें एक कहावत सुनता रहा। रातको बहुत देर तक कहावतोंमें लगा रहा। मेरा हृदय अपने कामके असीम महत्वसे बहुत प्रभावित है। मैं एक भी क्षणको बर-

बाद करना बुरा नहीं, क्रूरतापूर्णकृत्य समझता हूँ, जब कि इतनी अधिक जातियां मानों प्रतीक्षा कर रही हैं। अगली सुबहके आने के लिये मैं लालायित हो गया हूँ, वह आवे, जिसमें मैं फिर अपने काममें लग जाऊं। फर्वरी १८०७ ई० के अन्त तक उसने "सार्वजनिक प्रार्थना पुस्तक" का अनुवाद कर डाला। इसके बारेमें एक लेखक का कहना था-"यदि वह कुछ और न भी करता तो यह एक काम उसके जीवनके लिये पर्याप्त था। इसके बाद वह देशी भाषा में भगवानकी पूजा कराने लगा, जिसमें दो सौ आदमी—पोर्तुगीज, रोमन कैथलिक और मराठे—सम्मिलित होते। बहुत दिन नहीं बीते, देशी लड़कोंकी पढ़ाईके लिये उसने स्कूल स्थापित किये। दानापुरमें अपने देशभाई पुरुषों और सैनिकों के लिये प्रा ना करानेके अतिरिक्त उसने यह काम किया था।

१८०८ ई० में उसके कलकत्ताके मित्रोंने उसके सामने एक नए काम का सुझाव रक्खा। उन्हें जब मालूम हुआ, कि उसने बाइबलका हिन्दुस्तानीमें अनुवाद करने में बहुत सा समय लगाया है, तो उन्होंने मार्टिन के सामने सुझाव रक्खा, कि इस कामको जल्दी पूरा करो, और साथ ही बाइबलके फारसी अनुवादका काम भी हाथ में लो। मार्टिनने इस सुझाव को स्वीकार किया, और अपनी डायरीमें उस समय लिखा—"अनुवादके कामों में इतने आनन्दके साथ लगे रहते, बिना पता लगे ही समय भाग रहा है" इसी समय उसे दो नई परीक्षाओंमें से गुजरना पड़ा—उसे अपनी बहिनके मरनेकी खबर मिली, जिससे दिलको भारी धक्का लगा, और दूसरा था मिस ग्रेनफिलका पत्र, जिससे उसे भारी निराशा हुई। यद्यपि मरेजियानमें उसने मार्टिनके प्रस्तावको माननेसे इन्कार कर दिया था, लेकिन उससे उसका प्रेम कम होने की जगह बढ़ा ही था। और उसने फिर विवाहका प्रस्ताव किया था, जिससे ग्रेनेफिलने साफ इन्कार कर दिया था। इस पत्र को पढ़कर उसका दिल टूट-टूक हो गया, लेकिन पीछे वह यह समझनेकी कोशिश करने लगा, कि यह परीक्षा भी दूसरे रूपमें आशीर्वाद है, क्योंकि अब मैं अपने सारे समयको अपने काममें

लगा सकूंगा। इसी समय एक बनारसका मिर्जा तथा एक अरब साबत-दो विद्वान् अनुवादमें सहायता करनेके लिये कलकत्तासे उसके पास आये। अब उसका ध्यान अपने काममें इतना लग गया, कि अपना दुःख भूल गया।

महीने बीतते गये मार्टिन सदा अपने प्रभुके काममें लगा रहा। १८०६ ई० के अप्रैल में दानापुर छोड़ कानपुरकी छावनी में बदलकर जाना पड़ा।

अब तक मार्टिन मुख्यतः अनुवादका काम करता, काफिरोंको उपदेश देने का काम बहुत कम ही कर पाता था। अब उसे इच्छा हुई, कि समय आ गया है, जब मुझे धर्म-प्रचारके काममें और भी तत्परताके साथ लगना है। उसकी इच्छा यद्यपि पूरी हुई, लेकिन उस मात्रामें नहीं, जिस मात्रा में कि वह चाहता था।

जिस समय अप्रैलमें वह कानपुर पहुँचा, उस समय गर्मी इतनी अधिक थी, कि वहां पहुँचनेके बाद ही वह मूर्छित हो गया। इस समयके बाद अक्सर उसे बुखार आने लगा। यद्यपि इस प्रकार वह रोगसे पीड़ित था, तो भी वह अपने चैपलिनके कर्त्तव्यको सामग्रह पूरा करता रहा, और साथ ही साबतकी सहायतासे फारसीमें बाइबलके अनुवादमें भी लगा रहा। पहले सालके अन्त तक वह देशियोंकी सभा में भी उपदेश करने लगा, जो समय-समयपर उसके घरके बाहर की घासपर हुआ करती थी। इस सभामें कितनी ही बार ८०० तक श्रोता मौजूद रहते, जिनमें कितने ही भिखमंगे भी होते। उन्हें मार्टिनके उपदेशसे उतना काम नहीं था, जितना कि उसकी दी हुई भिक्षासे। पर मार्टिनके लिये उनकी उपस्थिति सच्चे आनन्दका कारण थी। उसके कामका फल बहुत अच्छा होता, यदि उसे कानपुरमें रहने दिया गया होता। मार्टिन के कारण ही अब्दुल मसीह ईसाई बना जो कि पीछे चर्च मिश्नरी सोसायटीका पहला देशी पादरी हुआ।

१८१० ई० में मार्टिन में तपेदिक के चिन्ह दिखाई पड़नेलगे। यह उसके परिवारमें खानदानी रोग था। वह अब समझने लगा, कि मुझे अब विश्राम लेना चाहिये। कुछ ही दिनों बाद उसकी तन्दुरुस्ती इतनी खराब हो गई, कि उसे इंगलैण्ड जाने की सलाह दी गई, और आशा की गई, कि समुद्र-यात्रासे उसे लाभ होगा। यद्यपि सलाह मान ली गई, पर उसे काममें नहीं लाया गया। इस ईसाई वीरने इसी समय एक नई पुकार सुनी, जिसके कारण उसकी सारी योजनायें बदल दी गईं।

उसे कलकत्तासे यह सुनकर बहुत खेद हुआ, कि यद्यपि बाइबलके मेरे हिन्दी अनुवाद को पूर्णतया असफल बतलाया गया है, लेकिन सावतकी सहायतासे नवीन सुसमाचारका जो अनुवाद मैंने किया है, उसे तुरन्त प्रकाशन करनेसे पहले कितने ही सुधारों की आवश्यकता होगी। योग्य निर्णायकोंने उसे प्रचारके अयोग्य समझा, क्योंकि जिन लोगोंके लिए वह अनुवाद किया गया था, वह उसे समझ नहीं पायेंगे। मार्टिनके लिये यह बड़ा धक्का था। लेकिन उसने तुरन्त अपने मनको तैयार कर लिया। मैं इङ्गलैंड न जाकर ईरान जाऊँगा, और वहाँके विद्वानोंकी राय लेकर नवीन सुसमाचारका फिरसे अनुवाद वहाँ रहकर करूँगा। उसने इसके बाद अरबमें जाकर अपने अपूर्ण अरबी अनुवादको भी पूरा करने का निश्चय किया।

सैनिक अधिकारियोंकी अनुमति पाकर जनवरी १८११ ई० के आरंभ में हेनरी मार्टिन बड़ी प्रसन्नताके साथ ईरानके लिये रवाना हुआ। "मैं नहीं जानता, वहां किन दिक्कतोंका सामना करना पड़ेगा, लेकिन मुझे पूरा विश्वास है, कि मैं जहां भी जाऊँगा, वहां सदा भक्तवत्सल भगवान् और प्राणकर्ता मेरे साथ रहेंगे...और भारतमें आनन्ददायक कामके लिये फिर लौटाकर लायेंगे।"

भारत छोड़नेके बाद मईके अन्तमें मार्टिन ईरानके बन्दरगाह बुशहर में पहुँचा। ईरानी भेस बदलकर वह फारसी शिक्षाके प्रसिद्ध केन्द्र सीराज के लिए रवाना हुआ। यात्रामें कितनेही समय इतनी असह्य गर्मी होती

थी, कि भींगे तौलियेसे सिर और गर्दन लपेटे बिना वह यात्रा नहीं कर सकता था। दूसरे समय पहाड़ों की हवा इतनी सर्द होती, कि कपड़ोंके अच्छी तरह ढांकनेके बाद भी वह सर्दीके मारे कांपने लगता। कितनी ही बार पहाड़में उसका रास्ता ऐसी जगहसे जाता, जहां एक भी गलत कदम पड़ते ही वह अपने घोड़े सहित गिरकर चकनाचूर हो जाता। इन कठिनाइयोंके भीतरसे यात्रा करते वह शीराज पहुँचा।

उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, तो भी जरा सी भी देर किये बिना मार्टिन अपने काममें लग गया। उसे जान पड़ता था, मेरे दिन अब गिने-चुने रह गये हैं। इसलिये देशियोंकी सहायतासे उसने सुसमाचारका नया अनुवाद करना शुरू किया। इस कामके खतम कर लेनेके बाद उसने "साम" के फारसी अनुवादमें हाथ लगाया। इसी बीच विद्वान् मुसलमानों और दूसरोंके साथ वह ईसाइयतके बारेमें बहस करता। लोग तरह तरहसे उसका अपमान करते, और कितनीही बार उसपर पत्थर भी फेंकते, लेकिन ईसाके सन्देशको पहुँचानेके किसी अवसरको उसने हाथसे जाने नहीं दिया।

बारह महीने इस प्रकार बीत गये। उसका काम खतम हो गया। उसे अब यह साफ मालूम होने लगा कि जिन शारीरिक तकलीफोंसे मैं गुजर रहा हूँ, वह मेरे सारे जीवनको खतम कर रही हैं। उसने अब इंगलैंड लौटनेका निश्चय किया। लेकिन, अभी उसकी एक इच्छा बच रही थी। वह नवीन सुसमाचारके फारसी अनुवादको ईरानके शाहको भेंट करना चाहता था। इस कामको स्वयं नहीं कर सका। इस कामके लिये तब्रेजमें स्थित अंग्रेजी राजदूत सर गोर औसलीके पास शाहके लिये परिचय-पत्र प्राप्त करनेके वास्ते गया, वहां भारी बुखारका आक्रमण हुआ, और उसे अंग्रेजी राजदूतके इस वचनसे संतोष करना पड़ा, कि मैं स्वयं शाही दरबारमें इस बहुमूल्य हस्तलेखको भेंट करूंगा।

पीछे जब औसलीने इस हस्तलेखको शाहके सामने पेश किया, तो उसने खुले तौरसे इसकी प्रशंसा की। पीछे ब्रिटिश राजदूतने हस्तलेखको

रूसकी राजधानी पिटर्सबर्गमें भेजा, जहांसे वह छपकर प्रकाशित हुआ।

दो महीने तक हेनरी मार्टिन बुखारमें पड़ा रहा। इस सारे समय ब्रिटिश राजदूत और उसकी पत्नीने मार्टिनकी सुश्रूषा की। फिर मार्टिन ने कस्तन्तुनियाके रास्ते १३०० मीलकी यात्रा कर अपनी जन्मभूमिकी ओर लौटनेको कदम बढ़ाया। यह स्वाभाविक ही था, कि इस समय उसका ध्यान कार्नवालके उस भूभाग पर जाता, जिसको भारतवर्षके सारे एकान्त-वासमें भी वह प्रिय मानता रहा। ईरान छोड़ते वक्त उसने फिर मिस ग्रेन-फेलको लिखा। यह उसका अन्तिम पत्र था, जिसके पढ़नेसे मालूम होता है कि उसे अब भी विश्वास था, कि मुलाकात होनेपर वह उसे राजी कर लेगा और फिर दोनों मिशनके कामके लिये सहायकके तौरपर जुट पड़ेंगे। २ सितम्बर १८१२ ई० को दो आर्मेनियोंके साथ वह रवाना हुआ। मुख्य स्थानोंके राज्यपालों के लिये ब्रिटिश राजदूतने परिचय-पत्र दिये थे। लेकिन, बहुत दिन नहीं बीते, कि भय होने लगा, कि वह इस यात्रा को और अधिक समय तक जारी नहीं रख सकेगा। शीराजके रास्ते में जो तकलीफें उसे सहनी पड़ी थीं, उससे कहीं अधिक कठिनाइयोंका सामना अब उसे करना पड़ रहा था। दिन-पर-दिन वह कमजोर होता गया। ६ अक्तूबरको अन्तिम बार उसने अपनी डायरी लिखी। दस दिन बाद सुरक्षित तौरसे वह क्षुद्र-एशियाके तोकात स्थान पर पहुँचा, जहां उस समय जोरका प्लेग फैला हुआ था। शायद उसके कारण या अपने बुखारके कारण वहीं उसने अपने शरीरको छोड़ दिया।

हेनरी मार्टिन केवल ३२ वर्षका था, जबकि उसका जीवन समाप्त हुआ। तोकातमें अवस्थित उसकी कब्र पर लार्ड मेकाले द्वारा लिखित निम्न पंक्तियां उत्कीर्ण हैं—

> यहां शहीद, पौरुष अपने आरंभिक कलियोंमें पड़ा है,
> ईसाई वीरको एक काफिर कब्र मिली,
> धर्म, अपने प्रिय पुत्रके प्रति सदाके लिए शोक करता,

उन यशस्वी निधियोंको दिखला रहा है, जिन्हें उसने जीता,
सनातन निधियां, हत्याकी लालीके साथ नहीं,
निराश बन्दियोंके गिरते आंसुओंसे कलुषित नहीं,
बल्कि सलीबनकी निधियां, उस प्रिय नामके लिये,
हरेक प्रकारके खतरे, मृत्यु और अपमानको सहते,
वह एक अधिक आनन्ददायक तटकी ओर बढ़ा,
जहां खतरा, मृत्यु और अपमान फिर कभी नहीं देखे जाते।

---

## ३—अलेक्जेण्डर डफ (१८०६-७८ ई०)

एक छोटा सा लड़का अपने हाइलैण्डके घरके पास बहती छोटी सी नदी के किनारे स्वप्न में लीन था। वह स्वप्न देख रहा था, दूर कहींपर सूर्य से भी अधिक चमकीली रोशनी चमक रही है। धीरे-धीरे उस महान् प्रकाशसे एक भव्य रत्नजटित सुनहला रथ घोड़ों द्वारा खींचा जाता उसके पास आता दिखाई पड़ा। इस तेज से वह भयभीत हो गया। अन्तमें वह दिव्य रथ उसकी बगलमें आ गया। उसके खुले दरवाजेसे सर्वशक्तिमान भगवान्ने उसकी ओर देखकर अत्यन्त कोमल शब्दोंमें कहा: यहां आ, मेरे पास तेरे लिये काम है। लड़का आश्चर्यचकित हो उठा।

जिस छोटे से लड़केने इस अद्भुत स्वप्नको देखा था, वह था अलेक्जेण्डर डफ, जो उस समय करीब आठ वर्षका था।

अलेक्जेण्डर डफ २५ अप्रैल १८०६ ई० में पैदा हुआ था। स्काट-लैण्डके ग्राम्पियनके सुन्दर दृश्योंके बीच उसका आरम्भिक जीवन बीता। अभी वह तरुण ही था, जबकि उसके मां-बाप उस स्थानको छोड़कर पर्थशायर के मौलिन गांवके पास बल्नेकेलीकी जमींदारीके एक सुन्दर बंगले (कुटीर) में एक छोटे से फार्मको मालगुजारी पर लेकर रहने लगे। अपने थोड़ेसे खेतोंमें डफ-दम्पतिको सारी जान लगाकर काम करना पड़ता, और दूसरे स्काट किसानोंकी तरह अपनी मेहनत और मितव्ययिताके कारण उनका दिन आपेक्षाकृत अच्छी तरह कट जाता था। और बातों में भी यह घर खुशहाल था। पति-पत्नी भक्त ईसाई थे। बिल्कुल लड़का ही था, तभी अलेक्जेण्डर जिस धर्मसे प्रभावित था, उसे देखकर मां-बाप बहुत प्रसन्न थे, और उसे मन और आचारसे धार्मिक बनानेकी शिक्षा देते थे। पीछे डफ ने लिखा है—"पिताने भगवान्के भक्तकी तरह मुझमें भारी सम्मान और प्रेमकी भावना बचपन हीमें भर दी।" बापने लड़केका भग-वान्की ओर बढ़नेमें ही पथ प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि डफके अनुसार

"आधुनिक मिशनोंके उद्देश्यों और प्रकृतिके साधारण ज्ञानका परिचय अत्यन्त बालपनमें सम्माननीय पिता द्वारा ही मुझे प्राप्त हुआ।" वह बड़े उदार भावसे ईसाई चर्चकी भिन्न-भिन्न शाखाओंके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न देशोंमें बाइबल की जो विजय हुई है, उसको बतलाता था। वह जगन्नाथ और दूसरे काफिर देवताओंके चित्रोंको अंकित करके उसकी पूरी ऐसी व्याख्या करता था, जिससे मूर्ति-पूजाके प्रति भारी घृणा और बेचारे अन्धे मूर्ति-पूजकोंके प्रति दयाका भाव पैदा होता था। इसके साथ वह ईसाकी करुणाकी बातें भी बतलाता।

इन शिक्षाओंसे बालक अलेक्जेण्डरमें और भी जोश भर जाता, जबकि हाइलैण्डके उन पंवाड़ों और कविताओंको सुनता, जिन्हें गेलिक भाषामें उसके बाप और दूसरे गाते थे। इन सबमें उसको सबसे प्रिय थी "कयामतका दिन" की कविता। इसे सुनकर एक बार वह इतना भयभीत हो गया, कि जान पड़ा, प्रलयका दिन अब नजदीक ही है। स्वप्नमें मानों वह देखने लगा : दिव्य भगवान्के सिंहासनके सामने भारी संख्यामें लोग बुलाये गये हैं। उन्हें फैसला सुनाया गया। कुछको सदाके लिये नर्कका दण्ड दिया गया, और कुछ को सनातन आनन्द का इनाम मिला। "उसे अकथनीय भय लगने लगा। मालूम नहीं था, कि उसके अपने भाग्य मे क्या बदा है। दुविधा इतनी भयंकर थी, कि उसका शरीर कांपने लगा। जब उसकी बारी नजदीक आई, तो वह सपनेसे जाग उठा। उसकी देह बड़े जोरसे कांप रही थी। यह अनुभव उसके दिमागपर अमिट छाप छोड़ गया। यह घटना उस समय घटी, जब कि अलेक्जेण्डर सात और आठ साल के बीचमें था। इससे थोड़े ही दिनों बाद उसी तरहका एक दूसरा भी अनुभव हुआ, जब कि उसने इस कथाके आरंभमें उल्लिखित स्वप्नको देखा।

घरकी शिक्षा समाप्त हुई। वह डनकेल्ड और पर्थके बीचमें अवस्थित एक स्कूलमें पढ़नेके लिये भेजा गया। पहले मौलिनके गिर्जा-सम्बन्धी पाठशालाओंमें उसकी पढ़ाई हुई। तीन साल में तेजीसे प्रगति करनेके

बाद उसे कर्क माइकेलके गिर्जा स्कूल में भरती किया गया, जहां वह अपने अध्यापकके साथ रहता था। इसके बाद बारह महीने तक उसकी पढ़ाई कर्क के ग्रामर (हाई) स्कूलमें हुई इस समय तक उसकी पढ़ाई इतनी आगे बढ़ चुकी थी, कि वह उसमें—खासकर लेटिन और ग्रीकमें—अपने साथियोंको पीछे छोड़ गया था। १५ वर्षकी उमरमें स्कूल छोड़ते समय वह उसका सबसे बड़ा छात्र था।

पर्थ छोड़नेके बाद तुरन्त ही उसने सेंट एण्ड्रू युनिवर्सिटीमें प्रवेश किया। खर्चके लिये बापने २० पौंड दिये। अगले जाड़ोंके सत्रमें उसे सर्वोच्च छात्रवृत्ति मिली, जिसके कारण उसे अब घरकी सहायताकी आवश्यकता नहीं थी। सहपाठियोंमें जल्दी ही वह अपनी योग्यताका परिचय देने लगा। जब डफ वहां पर पढ़ रहा था, उसी समय अति प्रसिद्ध डा० चामर्स वहां नैतिक दर्शनके अध्यापक नियुक्त हुआ, जिसकी शिक्षासे सबसे अधिक प्रभावित अलेक्जेण्डर हुआ। चामर्सके सुन्दर भाषणों से ही डफ ने लाभ नहीं उठाया, बल्कि अपने शिक्षकके पथ-प्रदर्शनमें उसकी धार्मिक भावना तेजीसे जगी, और मिशनके काममें उसकी दिलचस्पी बढ़ी। इस समय अपने जैसे कितने ही दूसरे विद्यार्थियोंके साथ अपने अवकाशके समय को डफ रविवासरीय स्कूलों में लगाने लगा, जिसके लिये वह गरीबोंके घरोंमें जाता, और उनमें उपदेश करता या पुस्तिकायें बाँटता। दूसरोंके साथ मिलकर उसने विद्यार्थी मिश्नरी सोसायटी कायम की। इस प्रकार सात वर्ष बीते, जिसमें अध्ययन के प्रायः सभी विषयों में उसने उच्चतम योग्यता प्राप्त की। अब वह समय आ गया, जबकि उसे अपने जीवनके लिये कोई रास्ता पसन्द करना था।

डफके घनिष्ट मित्र जान अर्कहार्डने पहले ही भारत में मिश्नरी काम-के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया था। उसके उदाहरण तथा डा० चामर्सकी शिक्षाओंसे प्रेरित हो कर काफिरोंमें धर्म फैलाने की इच्छा डफके हृदयमें भी पैदा हो गई। हर छुट्टियों में जब वह घर जाता तो अपने मां-बापसे अपने मित्रों और उनके कामोंके बारेमें बतलाता। लेकिन

उसने कभी भी उनसे अपनी इच्छाओंके बारेमें नहीं कहा। लेकिन, १८२७ ई० में जब वह घर गया, तो उसने अपने मित्रोंके प्रिय नामोंको मुँह से नहीं निकाला। इसपर बापने पूछा, "तुम्हारे मित्र अर्कहार्टका क्या समाचार है? अलेकजेण्डरने शोकके आवेगको रोकते हुये कहा- "आर्कहार्ट अब नहीं रहा।" फिर धीरेसे पर दृढ़ता पूर्वक यह भी कहा — "लेकिन, कैसा अच्छा हो, यदि उसके कंचुकको तुम्हारा पुत्र ओढ़ ले। तुम उस भावना को पसन्द करते थे, जिसने कि आर्कहार्डको इस दिशामें प्रेरित किया था। तुमने उसके उद्देश्य की सराहना की थी—कंचुक ले भी लिया है।

इस प्रकार घरमें उस शपथको बतलाया, जिसे उसने स्वयं लिया था और जिसके बारेमें उस समय तक उसने किसी से नहीं कहा था। उसके निर्णयको सुनकर यद्यपि माँ-बाप शोक-भारसे दबे जारहे थे, लेकिन उन्होंने स्वीकृति देनेमें आनाकानी नहीं की। उन्होंने भगवानकी इच्छा समझकर बल्कि उसके निर्णयपर खुशी जाहिर की।

स्काटलैण्ड चर्चने अभी तक काफिरोंके पास कोई मिश्नरी नहीं भेजा था। उसी साल, जबकि डफने इस पवित्र कार्यके लिये आत्म-अर्पण किया था, यह समझा गया, कि हमें भी ऐसे काममें हाथ लगाना चाहिये। कलकत्ता और भारतकी दूसरी जगहोंमें सबसे धनी अंग्रेज स्काटलैंड-निवासी थे। उन्होंने किसी योग्य प्रचारकको प्राप्त करनेकी कोशिश की, जिसमें वह पहले असफल रहे। जब कमेटीको मालूम हुआ, कि यह तरुण स्काट इस कामके लिये तैयार है, तो उन्होंने डफके पास लिखा। दीक्षा प्राप्त करनेके कालेजमें रहते १८२६ ई० में डफने कर्क—(चर्च) के निमंत्रणको स्वीकार किया, और वह [illegible] नियुक्त किया गया। उसने ऐसी किसी भी श[illegible]था, जिससे कि उसे देशियोंमें काम करनेसे रोका जा सके। उसने यह भी कहा, कि कलकत्तामें अपने धार्मिक कार्यको तब तक आरम्भ नहीं करूँगा, जब तक कि मैं देश और वहाँके लोगोंको अपनी आँखोंसे देख न लूँगा।

१६ सितम्बर १८२६ ई० को अपनी नवविवाहिता पत्नीकेसाथ अलेक्जेण्डर डफ लीथसे लन्दनके लिये रवाना हुआ। और अगले महीने पोर्टस्मोथसे "लेडी हालैण्ड" जहाज द्वारा भारतके लिये रवाना हुआ।

जहाज अभी मुश्किलसे कुछ ही दूर गये थे, कि विरोधी हवाने उन्हें वाइट द्वीपके सामने एक सप्ताह रुकनेके लिये मजबूर किया। तीन सप्ताह-तक यात्री मदेरामें उतरकर वहाँ रहनेके लिये मजबूर हुये, क्योंकि जहाज को तेज हवा समुद्रमें बहा ले गई थी। फिर समुद्री डाकुओंसे बाल-बाल बचकर "लेडी हालैण्ड" सबसे जबर्दस्त संकटमें पड़ी। १३ फर्वरी १८३० की रातको वह गुडहोप अन्तरीपसे करीब ४० मीलपर थे। कप्तान वहाँ जाना चाहता था। एकाएक चट्टानसे ठोकर खाकर जहाज उछला। ऐसी भयंकर स्थिति पैदा हो गई, कि पहले जान पड़ा, एक भी यात्रीको बचाया नहीं जा सकता। लहरें इतने भयंकर आघात कर रही थीं, कि जहाज वहीं डूब गया। डफ और दूसरे यात्री अपनी रातकी पोशाकमें दौड़ कर डेकपर आये, और उन्होंने कप्तानको बड़ी वेदनाके साथ कहते सुना "ओह वह चली गई, चली गई।" उसके बाद जो दृश्य सामने आया, वह इतना भयंकर है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो लम्बी नाव पानीपर उतारी गई थी उसपर चढ़कर यात्री डासन नामक एक छोटे द्वीपपर उतरे, जहांपर केवल भारी संख्यामें पेंगुइन चिड़िया रहती थी। इस जगहसे उन्हें गुडहोप अन्तरीपमें खबर भेजनेमें सफलता मिली। चार दिन वहाँ उन्हें सिर्फ पेंगुइनके अण्डोंपर गुजर करना पड़ा, जिसे सामुद्रिक सेवारसे जलाई आगमें पकाया जाता था।

डासनमें एक विचित्र घटना घटी। एक दिन एक नाविकने किसी चीज को किनारेपर लगी देखा। उठानेपर पता लगा कि वह डफकी बाइबल और स्काटिश सामकी पुस्तक है, जिसे उसके मित्रोंने सेंट एण्ड्रूज छोड़नेके पहले भेंट किया था। कहा जाता है, जब नाविक उसे उस गड्ढेमें ले गया, जिसमें यात्री शरण लिए हुए थे, तो सभी उससे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उसे भगवानका सन्देश समझा। डफके नेतृत्वमें समुद्रके तटपर

सिर झुका सबने भगवान्‌को धन्यवाद दिया। डफ अपने साथ जहाजमें ८०० जिल्द पुस्तकें ले गया था, जो ज्ञान की हरेक शाखाओं पर थीं। ४० को छोड़कर सभी समुद्रकी भेंट हुईं और इनमें भी सिर्फ दो ही लेई बनने से बच रहीं। उसकी डायरियाँ और बहुत सी दूसरी चीजें भी इसी समय नष्ट हो गईं।

डफ और उसके साथियोंके संकटोंका अन्त यहीं नहीं हुआ। एक सैनिक बजड़ेने उन्हें डासनसे केपटौन पहुँचाया। कुछ सप्ताह तक वहीं रुक जाना पड़ा, फिर उन्हें "म्वायरा" नामक जहाज मिला। उस समय मान-सूनके अनुसार ही समुद्र-यात्रा हो सकती थी, और यह उस ऋतु का अंतिम जहाज था। आगे चलनेपर विरोधी हवा चलने लगी और जहाजको रास्तेसे हटाकर दूर ले गई। जब वह मारशसके तटके पास पहुंच रहे थे, तो एक बड़े तूफानका सामना करना पड़ा, जिसने उन्हें खतरे में डाल दिया। इसको सह लेनेके बाद फिर जहाज आगे बढ़ा, और तब एक और खतरा सामने आया। भारतमें पहुंचनेके बाद अब हुगली नदीमें होकर उन्हें ऊपर जाना था। इसी समय बादलोंने सूर्यको ढांक लिया और एक आंधी उठी, जो जल्दी ही भयङ्कर तूफानके रूपमें परिणित हो गई। उसने "म्वायरा" पर बड़ा जबर्दस्त प्रहार किया और ढकेलकर सागर द्वीपके एक रेतीले तटकी सूखी जगहमें छोड़ दिया। तूफानके खतरोंके बीच यात्री जल्दी-जल्दी छाती भर पानीमें चलकर किनारे उतरे। उन्होंने एक काफिर मन्दिरमें शरण ली, जहाँ २२ घण्टे तक उन्हें रहना पड़ा। फिर कीचड़में लथपथ और थके-मांदे वह पैदल चलकर २७ मई १८३० ई०को कलकत्ता पहुंचे।

इस प्रकार स्काटलैंड चर्चका प्रथम मिशनरी बंगालके तटपर पहुंचा। जब अंग्रेजी अखबारोंने इस अद्भुत समुद्र-यात्रा और बार-बार जहाजके ध्वस्त होनेकी कहानी छापी, तो देशियोंने निश्चय ही कहा होगा "यह आदमी अवश्य देवताओंका प्रिय है, जिन्होंने भारतमें उत्तम कामके लिए उसकी जान बचाई।"

( भारतीय ऐसे आदमियोंको देवताओंका प्रिय नहीं, बल्कि भारी अभिशाप समझते हैं, यह हम पुराने यात्रियोंके वर्णनमें पढ़ते हैं । )

अपने काममें लगनेसे पहले डफने छः सप्ताह बड़ी तत्परतासे यह जाननेके लिए लगाया, कि कलकत्ता और उसके आसपास मिश्नरी और प्रचारक क्या कर रहे हैं । इसी समय उसने देशी भाषाका परिचय भी प्राप्त किया । इसके बाद वह दो निष्कर्षोंपर पहुंचा—"मेरा आरम्भिक और मुख्य क्षेत्र कलकत्ताको ही होना है, जहाँसे मैं भीतरी भूभागमें भी काम कर सकता हूँ, और मेरे कामका ढंग मेरे पूर्वगामियोंसे भिन्न होगा ।" उसने अब काम शुरू किया । वह जानता था, कि बहुत भारी संख्यामें देशी लोग अंग्रेजी पढ़ना चाहते हैं, जिसमें कि सरकारी और व्यापारी नौकरियां पाने योग्य हो सकें । उसने हर तरहकी उपयुक्त शिक्षा देनेका निश्चय किया । आरम्भमें छोटेसे रूपमें शुरू करके जैसे जैसे विद्यार्थी आगे बढ़े, वैसेही वैसे उच्च ज्ञान, जिसमें प्राकृतिक इतिहास और विज्ञान भी शामिल हैं—की शिक्षा देनी होगी । "संक्षेपमें प्रथम स्काच मिश्नरीकी योजना थी " एक ऐसी शिक्षाप्रणालीकी बुनियाद रखना, जो अन्तमें ज्ञानकी उन सभी शाखाओंको शामिल करले, जोकि ईसाई यूरोपके उच्चतर स्कूलों और कालेजोंमें सामान्य तौरसे पढ़ाई जाती है । लेकिन, इसके साथ ईसाई धर्म और सिद्धान्त आचार और प्रमाणका भी अटूट सम्बन्ध होना चाहिये, जोकि जीवन और आचारपर व्यवहारतः नियमन कर सके ।" डफ यह आशा रखता ही था, कि ईसाई धर्मकी सभ्यताको गम्भीरतापूर्वक जान लेनेके बाद काफिर हिन्दू विद्यार्थी ईसाई बनकर अपने काफिर बन्धुओंमें देशी शिक्षक और प्रचारक बन जायेंगे । तरुण स्काचकी दृष्टिमें यह बड़ा ही उच्च आदर्श था । इसीलिये अनुत्साहजनक परिस्थितिमें भी वह अपने कामपर दृढ़ रहा । जिन लोगोंसे डफ सहानुभूतिकी आशा रखता था, प्रायः वे सभी आरम्भसे ही उसे निरुत्साहित करने लगे । सिर्फ एक मिश्नरी विलियम कैरीने—जोकि अब जीवनकी संध्यामें पहुँच चुका था, मिलनेपर हाथ फैलाकर हार्दिक आशीर्वाद दिया, उसके कामका दिलसे समर्थन

किया। दूसरे या तो उससे अलग-अलग, या अधिकतर विरोध और अपमान प्रदर्शित करते रहे। एक समयकी बात है, अङ्गरेजी शिक्षाका आरम्भ जब उसने हाल हीमें किया था. एक मिश्नरीने उसके घरमें आकर अन्तिम घड़ीमें उसे अपने कामसे बाज आने के लिये कहा। जब देखा, कि उसकी बातका कोई प्रभाव नहीं हो रहा है, तो उठकर हाथसे डफको हिलाते उसके चेहरेकी ओर सहानुभूतिसे देखते बोला : "मुझे इस बातका बहुत खेद है, कि भारतमें आकर, जिस रास्तेपर तुम चल रहे हो, उसके कारण तुम्हारा आना आशीर्वाद नहीं अभिशाप सिद्ध होगा।" बिदा होते वक्त उसने अन्तमें गोली दागी "तुम कलकत्ताको गुण्डों और बदमाशों से भर दोगे।"

बाधाओंसे हिम्मत न हार डफ अपने काममें लगा रहा। उसके कामको देखकर राजा राममोहन राय—हिन्दू ही नहीं, बल्कि शिक्षित देशियोंके नेता—ने उसके स्कूलके काममें मित्रता और सहयोगका हाथ बंटाया। सिर्फ पांच विद्यार्थियोंसे इस स्कूलको डफने आरम्भ किया था। विद्यार्थियोंकी संख्या तेजीसे बढ़ने लगी। थोड़े ही समयमें इसकी प्रसिद्धि इतनी दूर तक फैल गई, कि इतनी संख्यामें विद्यार्थी आनेकी इच्छा प्रकट करने लगे, कि कोड़ियोंको लेनेसे इन्कार करना पड़ा। साथ ही डफके प्रति लोगोंका सम्मान और स्नेह बढ़ा। कितने ही सालों बाद डा० डफने लिखा था—"देशी अंग्रेजी पढ़नेके लिये बेकरार हैं। वह लगातार अंग्रेजोंकी दयाकी भिक्षा मांगते, और पौर्वात्य चापलूसी भरी भाषामें हमें कहते हैं : आप महानतम और अगाध अकल्पनीय उत्तमताओंके सागर हैं, जोकि गरीब अज्ञानी बंगालियोंको शिक्षा देने आये हैं।" फिर अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजीमें कहते हैं : मी, गुड ब्वाय, आ टेक मी (मैं अच्छा लड़का, आ मुझे ले लो) दूसरे कहते हैं : मी पूवर ब्वाय, आ, टेक मी (मैं गरीब लड़का, आ मुझे ले लो) कितने ही कहते हैं : मी वांट रीड यु गुड बुक्स, आ, टेक मी (मैं तुम अच्छी किताबें पढ़ना चाहता हूँ, आ मुझे ले लो)। फिर दूसरे कहते हैं : "मी नो योर कमांड

मैंट, दाउ शाल्ट हैब नो फादर गाडस बिफोर मी, आ : टेक मी—(मैं तुम्हारे धर्मवचनोंको जानता हूँ, मेरे सामने तुम दूसरे देवताओंको नहीं रक्खोगे, ओ मुझे ले लो)। और बहुतेरे अन्तिम प्रार्थना करते हैं : आ, टेक मी, एण्ड आई प्रे फार यू (ओ, मुझे ले लो, मैं तुम्हारे लिये प्रार्थना करता हूँ)।

डफ किस तरह अपनी शिक्षाका काम करते थे, इसका पता डा० जार्ज स्मिथके उस भद्र मिश्नरी और उसके विचित्र तरुण विद्यार्थियोंके इस वर्णनसे पता लगेगा—

"प्रतिदिन भगवानकी प्रार्थनासे काम शुरू होता था। जिसके बाद चमत्कारिक पुत्रकी सुन्दर कहावत कही जाती, फिर कोरिन्थियनोंको ईसा मसीहके शिष्यने जो शिक्षा दी थी, जिसे कि हम पितर दान कहते हैं, पढ़ी जाती। सारी पढ़ाईमें सभी विद्यार्थी ध्यान देते थे। कुछके मस्तिष्क में बहुत प्रभाव पड़ता था, जोकि उनकी चमकीली आंखों और चेहरेके रंग-रूपसे मालूम होता था, मानों उनके अन्दरके विचारों और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंको वह साफ तौरसे दर्पणमें प्रतिबिम्बित कर रहे थे। अन्तमें जब दानकी तस्वीर खतम होने लगती, तो जोरदार शब्द कहा जाता सभी बातोंको बर्दाश्त करो। उन तरुणोंमें से वही ब्राह्मण, जो कुछ दिनों पहले बाइबलके पाठका विरोध कर रहा था, अपनी जगहपर बैठे-बैठे पुकार उठा : आह साहेब, यह हमारे लिये बहुत अच्छा है। कौन इसके अनुसार कर सकता है ? कौन इसके अनुसार कर सकता है ? सभी परिस्थितियोंके देखने से भगवान्के पवित्र वाक्योंके स्वतः प्रत्यक्ष होनेका इससे बढ़िया उदाहरण सोचा नहीं जा सकता।...फिर पर्वतीय उपदेश पढ़ा जाता, जो उनके हृदयमें प्रविष्ट हो जाता।... इतना ही नहीं था, उन वचनोंकी सीधी सादी पढ़ाई से—जो उनको कल्याण-भागी बननेका वचन देते, जो अपने शत्रुके प्रति प्रेम करते और आशीर्वाद मांगते—प्रेरित हो एक तरुण दिव्य शक्षाके चरणोंमें आया, वह मिशनका चौथा ईसाई बना। दिनों और सप्ताहों तक वह तरुण हिन्दू यह चिल्लाये बिना

नहीं रहता था। "अपने शत्रुओंसे प्यार करो, जो शाप देते हैं, उन्हें आशीर्वाद दो। कितना सुन्दर, कितना दिव्य, अवश्य यह सत्य है।"

इस तरीकेसे स्कूलमें पढ़ाई चलती थी, और डफके परिश्रमका मूल्य जल्दी ही कलकत्ता और उससे बाहर भारतके दूरके भागोंमें प्रकट हो गया। लेकिन, इस सफलताने बहुत जल्दी ही नई कठिनाइयां पैदा कर दीं। जब देशी तरुण अपने घरोंमें बड़े सम्मान और उत्साहके साथ नये धर्म ग्रन्थके बारेमें कहते, जिसकी सत्यताकी शिक्षा डफ उन्हें दे रहे थे, तो उनके सम्बन्धी हिन्दू धर्मी डरने लगे। इसके कारण केवल एक साधारण असंतोष ही नहीं पैदा हुआ, बल्कि "हिन्दू धर्म खतरेमें" की आवाज उठने लगी। लेकिन, इससे डफ अपने उद्देश्य पर और दृढ़ हो गये। बहुत दिन नहीं बीते, कि क्लासोंमें पहलेसे भी ज्यादा भीड़ लगने लगी। फिर उसने एक व्याख्यानगृह ठीक किया। वहां ईसाई धर्मपर व्याख्यान होते, जिसमें उसके अपने विद्यार्थी तथा कुछ सालों पहले देशियों द्वारा स्थापित हिन्दू कालेजके विद्यार्थी उपस्थित होते।

इन उपदेशोंके कारण एक दिन सारे नगरमें हल्ला मच गया। "उस दिन हिन्दू कालेज प्रायः बिलकुल खाली हो गया। कई दिनों तक क्रोधमें पागल कट्टर नेता सरकारपर विश्वासघातका दोष लगाते रहे। क्या उसने वचन नहीं दिया था, कि हम तुम्हारे धर्ममें दखल नहीं देंगे? और अब उसने छलसे एक जंगली पादरी को कालेजके सामने तोपकी तरह लाके खड़ा कर दिया, कि वह हिन्दू धर्मके किलेको तोड़कर उसकी जगह ईसाई धर्मको स्थापित करे। तब उस समयके लिये व्याख्यान बन्द कर दिये गये। जब उत्तेजना दब गई, तो वह फिर होने लगे। डफ विद्यार्थियों द्वारा स्थापित वादविवाद सभाओंकी बैठकोंमें भी शामिल होते, और अखबारोंमें भी लिखते थे। उसका तुरन्त परिणाम यह हुआ, कि तीन-चार अत्यन्त तेज लड़कोंने धर्म-परिवर्तन कर बपतिस्मा लिया।

लगातार इस तरह मेहनत करते हुए पांच साल बीत गये। अब डफका स्कूल अच्छी तरह स्थापित हो चुका था। इसी समय एक जबर्दस्त

तूफान आया, फिर महामारी फैली, जिसके शिकार डफ भी हुए। मजबूर होकर वह अपने पुत्र और पत्नीके साथ इङ्गलैण्ड लौटे। हालमें ही उनके काममें शामिल होनेके लिये कलकत्ता आये डा० विलियम मैकीने उनके कामको संभाला। समुद्र-यात्रासे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ हुआ, और इङ्गलैण्ड पहुँचतेही अपने देशमें उन्होंने मिशनके कामको बढ़ावा देनेके बारेमें काम किया। सारे स्काटलैण्डकी उन्होंने यात्रा की। डफके भारी जोश और अद्भुत वाग्मितासे लोगोंमें बड़ा उत्साह पैदा हुआ।

१८४० ई०में फिर वह भारत लौटकर अपने काममें लग गये। उनकी अनुपस्थितिमें भी काम बराबर आगे बढ़ता रहा, और अब बहुत फैल गया था। अधिक संख्यामें देशी ईसाई बने। पर कई बड़ी कठिनाइयोंका सामना भी करना पड़ा, जिसमें एक था १८४३ ई०में स्काटलैण्ड चर्चके छिन्न-भिन्न होनेके कारण मिशनके मकानोंसे हाथ धोना। जब यह घटना घटी, तो डफ और उनके साथी मिशनरियोंने स्वतन्त्र चर्च पार्टीका पक्ष लिया। इसपर स्थापित चर्चने मकान और उसकी चीजोंपर दावा किया, और डफ और उनके साथियोंको उसे छोड़कर फिर नये तौरसे काम शुरू करनेकी जरूरत पड़ी। देशके चर्च और भारत तथा अमरीकाके सहानुभूति रखनेवालोंसे थोड़े समयके बाद डफ पहलेके समानही नये मकान और दूसरी चीजें खड़ी करनेमें समर्थ हुये। देशी लोगोंने मिशनरियोंके खिलाफ इस समय फिर नये सिरेसे विरोध करना शुरू किया था। उनके खिलाफ सार्वजनिक सभायें ही नहीं की जाती थीं, बल्कि यह भी अफ़वाह उड़ाई जाती थी, कि ईसाइयोंके अगुवाके तौरपर डफको मारने पीटनेके लिये योजना बनाई गई है। यह सब होते हुए भी डफका काम आगे बढ़ता रहा।

१८४६ ई०में यह समझा गया, कि डफ अगर फिर इङ्गलैण्ड जायँ, तो मिशनके कामके आगे बढ़नेमें सहायता मिलेगी। उन्होंने वहां जानेका निश्चय किया। लेकिन, ऐसा करनेसे पहले उन्हें भान होने लगा, कि जिस कामके लिये मैं देशमें लोगोंको समझाने जा रहा हूँ, वह और भी अच्छी

तरह हो सकेगा, यदि मैं कलकत्तासे बाहर काम करनेका व्यक्तिगत तजुर्बा भी रक्खूं। इस उद्देश्यसे उन्होंने भारतमें बड़े पैमानेपर यात्रा की।

देश लौटनेपर उन्होंने काफिरोंकी ओरसे बहुत जोर देकर लोगोंमें जोश पैदा किया। इतने हीसे सन्तोष न कर १८५४ ई०में उसी कामके लिये युक्त राष्ट्र अमेरिकाकी यात्रा करनेका निश्चय किया। इङ्गलैण्ड और अमेरिका दोनोंमें उनका बड़ा स्वागत हुआ, और उस यात्राका बहुत बड़ा सुफल रहा। जब १८५५ ई० में वह कलकत्ता लौटे, तब उन्हें यह देखकर बहुत सन्तोष हुआ, कि भारतमें मिशनके कामके प्रति ईसाई दुनियाके सभी लोगोंमें बड़ी दिलचस्पी बढ़ रही है।

अलेक्जेण्डर डफ करीब आठ साल और अपने आत्मत्यागके साथ काममें लगे रहे। उनका मिशनरी और शिक्षा-सम्बन्धी कार्य अधिकाधिक आगे बढ़ता रहा। देशियों और यूरोपियनों दोनों के विश्वासपात्र होनेसे उनका शासक और शासित दोनोंपर भारी प्रभाव था। कोई भी भलाईका आन्दोलन शुरू करनेकी जरूरत पड़ती, तो उनका समर्थन प्राप्त किया जाता। शिक्षा, करधारण, भूमिविधि और बहुतसे बिषयों में उनकी अधिकारी लोग सलाह बराबर लेते रहते।

फिर वह दिन आया, जबकि उनका स्वास्थ्य बिल्कुल खराब हो गया, और डफने भारतसे बिदाई ली। उनके ३३ सालके कामके परिणामके बारे में जिस जहाजमें वह इङ्गलैण्ड लौट रहे थे, उसमें रक्खी एक पुस्तिकाके निम्न वाक्योंसे पता लगता है—"आज सोमवार २१ दिसम्बर १८६३, मध्यान्हके करीब सागरद्वीप, वस्तुतः भारत, की अन्तिम झांकी पाई। मई १८३० ई०में जब पहले पहल मैंने इसपर नजर डाली थी, वह अब भी मुझे याद है। तब और अबमें मेरे भावोंमें कितना विचित्र अन्तर है। उस समय कुछ भी ज्ञान न रखते मैं एक नये अनुभूत काममें प्रविष्ट हो रहा था, लेकिन मुझे अटल आशा थी। भगवान चाहते, तो मैं भारतको बिल्कुल छोड़ना नहीं चाहता। लेकिन, दैवी घटनायें घटीं, जिनके कारण दो बार पहले भारत छोड़ना पड़ा, और अब तीसरी और अन्तिम बार छोड़ रहा हूँ।

"मैंने अपना काम १८३० ई० में, सचमुच बिना कुछ संबलके शुरू किया। मैं अपने बच्चे, सबसे बड़े और ईसाई दृष्टिकोणसे अत्यन्त सफल ईसाई संस्थाको भारतमें छोड़ रहा हूं : एक देशी गिर्जा, जो करीब-करीब स्वावलम्बी है, उसमें एक देशी पादरी, तीन दीक्षाप्राप्त मिश्नरी, इसके अलावा कितने ही देशी प्रचारक हैं। इनके अतिरिक्त चिनसुरा, बांसबरिया कलना, महानद इत्यादिमें अच्छी हालतमें मिशनकी शाखायें हैं।... मेरे कामका कुछ काल बहुत तूफानी था, खासकर पहले और दूसरे साल। पहले कालमें मेरा देशियोंके साथ लगातार संघर्ष होता रहा, जो मुझे निजी तौरसे और पत्रोंमें हद दर्जेकी गालियां देते, अपमानित करते और चरम पंथी यूरोपियनोंके विरोधका भी सामना करना पड़ा।...

"दूसरे कालमें बहुत सी बातोंमें देशियोंके सभी वर्गोंके साथ मेरा जबर्दस्त झगड़ा चल रहा था। एक समय वाद-विवादमें पराजित और ईसाइयतके खण्डन तथा ईसाई उद्देश्योंके नष्ट करनेके प्रयत्नमें असफल नीच गुण्डोंने मेरा जीवन लेनेकी कोशिश की। लठियल आदमियोंको रास्तेमें मुझे पीटनेके लिये पैसे देकर नियुक्त किया गया था। शिक्षाके सम्बन्धमें गवर्नर-जेनरल लार्ड आकलैण्डसे मेरा भारी झगड़ा हुआ। सभी सरकारी अफसर, धर्मनिरपेक्ष पत्रकार और दूसरी सांसारिक जमात एक होकर मेरे खिलाफ आवाज निकालने लगे, मुझे अपमानित और लांछित करनेकी कोशिश करने लगे। ..

"मेरे यहां रहनेका तीसरा समय कम गड़बड़ीका था। भगवानकी महिमा है, कि मैं इस सन्तोषके साथ भारत छोड़ रहा हूं, कि उसने मेरी अयोग्यतापर भी मुझे अपनी कृपाका पात्र समझा। उसने मेरे शत्रुओंको भी मेरे साथ शान्तिपूर्वक रहनेके लिये तैयार किया।"

भारतसे लौटनेके बाद अलेक्जेण्डर डफ स्काटलैण्डमें करीब चौदह साल तक जीवित रहे। वह अब भी कामसे विश्राम लेना नहीं चाहते थे, और स्वतन्त्र चर्चके विदेशी मिशनके मुख्य निर्देशकके कामके साथ-साथ एडिन्बर्गके नये कालेजमें धर्मदूतिक धर्मशास्त्रके प्रोफेसर भी रहे। इनके

अतिरिक्त मिश्नरी कामोंकी तरक्कीके लिये दूसरी तरहसे भी काम करते थे।

१२ फरवरी १८७८ ई० को ईसाके इस सिपाहीने अपने कामसे सदा के लिये छुट्टी ली। उस समय उसे यह विश्वास हो गया था, कि जिस अनर्थ बीजको बोनेके लिये मैंने अपने जीवनको लगाया, उसका फल साल-ब-साल अधिकाधिक समृद्ध होता जा रहा है।

(आज १९५६ ई० में डफकी जीवनीको पढ़ते गैर ईसाई भारतीय पाठकोंको बहुत आश्चर्य और डफके महा अज्ञानपर दया आयेगी। डफने अपने सारे जीवनमें हिन्दुओंको काफिर और सभी सांस्कृतिक गुणोंसे हीन समझा था। इसका कारण यही था, कि एक तो गोरी जातियोंका प्रभुत्व स्थापित होनेसे काली जातियोंको पूरा मानव नहीं समझा जाता था, दूसरे आधुनिक ज्ञान-विज्ञानका हिन्दुओंको न कोई पता था, और न अपनी कूपमंडुकताके कारण उसको समझानेकी वह कोशिश करते थे। लेकिन, आधुनिक विज्ञानका सागर जब भारतके तटसे टक्कर मारने लगा, तो बहुत दिनों तक वह ऐसे मनोभावको कायम नहीं रख सकते थे। डफके समकालीन राजा राममोहनराय थे, जो ईसाई और दूसरे धर्मोंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हुए भी पक्के हिन्दू थे। उन्होंने समयकी मांगको समझा था, और इसमें शक नहीं, कि उनके प्रयत्नने भारतीयोंको नींदसे जगानेमें जितना काम किया, उतना किसी दूसरेने नहीं किया। उसके बाद स्वामी दयानन्द और दूसरे भी सुधारक नेता पैदा हुए, लेकिन बंजर जमीनको पहलेपहल आबाद करनेकी जो कठिनाइयाँ होती हैं, उनको सबसे अधिक उठानेका काम राजा राममोहन रायको ही करना पड़ा था। जिस पूजाको डफ और दूसरे पुराने मिश्नरी शैतान और भूत प्रेतकी खुली पूजा कहकर घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, उसके चारों ओर एक नये दिव्य प्रभा मण्डल को तैयार करने वाले रामकृष्ण और विवेकानन्दके पैदा होनेमें अभी बहुत देर थी, और यूरोप और अमेरिकामें भी हजारोंकी तादादमें नर-नारियों को हिन्दू धर्म और वेदान्तके भक्त बनानेके कार्यके आरम्भमें तो अभी एक

शताब्दीकी देर थी। डफके समय ही सर विलियम जान्स और कुछ दूसरे युरोपीय संस्कृत भाषा और हिन्दू ग्रन्थोंकी तरफ आकृष्ट हुए थे। उन्होंने कुछ ग्रंथोंके अनुवाद भी किये थे। जब यह अनुवाद भारी परिमाणमें पश्चिमके लोगोंके सामने आये हैं, तो उन्हे मालूम होने लगा, कि यह काफिर मूर्तिपूजक हिन्दू उतनी घृणा या दया के पात्र नहीं हैं।

कट्टर ईसाई—विशेषकर पादरी स्त्री-पुरुष—आज भी बाइबलकी कहानियोंमें बच्चोंकी तरह विश्वास रखते हैं, और समझते हैं, कि दुनियां का कल्याण तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि वह इन कहानियों पर विश्वास न करे। यह सुनकर तो उन्हें सचमुच ही भारी धक्का लगता है, कि भगवानके पुत्र ईसा ही नहीं, बल्कि स्वयं भगवानके अभावमें भी बौद्ध धर्म जैसा एक महान् धर्म ढाई हजार वर्षोंसे मानवताकी सब तरहसे अच्छी सेवा कर सका।

यह सब होते हुए भी इससे कौन इन्कार कर सकता है, कि डफ और उनके सहयोगी दूसरे मिशनरी १६वीं शताब्दी के आरम्भमें सच्ची लगनसे तथा लोगोंके प्रति सहानुभूति और प्रेम रखते काम करते रहे। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञानका दीपक पहलेपहल इन्होंने ही भारतमें जलाया, जिसके लिये हम उनके सदा कृतज्ञ रहेंगे।)

॥ इति ॥